वर्ष १] सस्ती-प्रकीर्ण-माला [पुस्तक ७

गंगा गोविन्दसिंह

(ऐतिहासिक उपन्यास)



मूल लेखक

टामकाका की कुटिया, महाराज नंदकुमार की
फाँसी, आदि के रचयिता

श्रीयुत चण्डीशरण सेन

—:❀:—

अनुवादक

श्री गणेश पांडेय

[भू. पू. सम्पादक 'तरुण भारत']

प्रकाशक

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मंडल

अजमेर

प्रथम बार] १९२७ [मूल्य ॥=)

सजिल्द का मूल्य १)

प्रकाशक—
जीतमल लूणिया, मंत्री
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मंडल, अजमेर

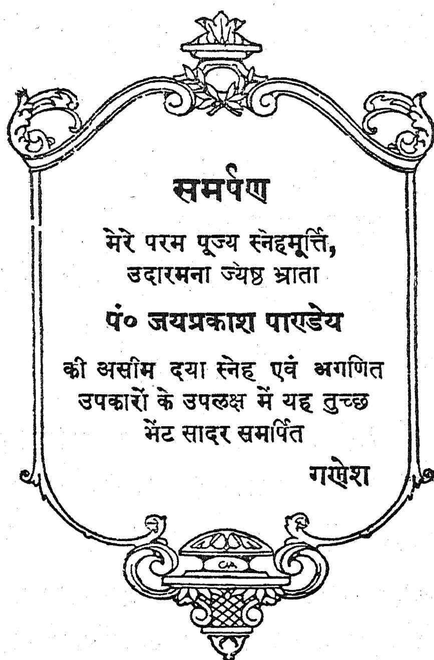
हिंदी प्रेमियों से अनुरोध

इस सस्ता-मंडल की पुस्तकों का विषय, उनकी पृष्ठ-संख्या और मूल्य पर ज़रा विचार कीजिये। कितनी उत्तम और साथ ही कितनी सस्ती हैं। मण्डल से निकली हुई पुस्तकों के नाम तथा स्थायी ग्राहक होने के नियम पुस्तक के अंत में दिये हुए हैं, उन्हें एकबार आप अवश्य पढ़ लीजिये।

* ग्राहक नम्बर

* यदि आप इस मंडल के ग्राहक हैं तो अपना नम्बर यहाँ लिख रखिये ताकि आपको याद रहे। पत्र देते समय यह नंबर ज़रूर लिखा करें।

मुद्रक
गणपति कृष्ण गुर्जर,
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी।



समर्पण

मेरे परम पूज्य स्नेहमूर्त्ति,
उदारमना ज्येष्ठ भ्राता

पं० जयप्रकाश पाण्डेय

की असीम दया स्नेह एवं अगणित
उपकारों के उपलक्ष में यह तुच्छ
भेंट सादर समर्पित

गणेश

लागत का ब्योरा

कागज़	२५५)	रुपया
छपाई	२६५)	,,
बाइंडिंग	४५)	,,
लिखाई, व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च	३३५)	,,
	६३०)	

कुल प्रतियाँ २०००

लागत मूल्य प्रति कापी ।≡)॥

वक्तव्य

स्वर्गीय बंकिम बाबू की तरह श्रीचण्डीचरणसेन भी बंगला के एक प्रसिद्ध उपन्यासकार और राष्ट्रीय भावों के ज़बर्दस्त प्रचारक, लेखक हो गये हैं। बंगला-भाषा-भाषियों में राष्ट्रीय भावों के भरने का अधिकांश श्रेय इन्हीं दोनों महारथियों को है। किन्तु किसी किसी का ऐसा मत है कि श्री चण्डीचरण सेन के उपन्यास अधिक प्रभाव पूर्ण एवं दिल पर अधिक असर करने वाले हैं। इसका कारण यह है कि इनके प्रायः अधिकांश उपन्यास ऐतिहासिक हैं और सो भी १८ वीं और १९ वीं शताब्दी की उन घटनाओं से सम्बन्ध रखते हैं, जो अंगरेज़ों के काले कारनामों और कुटिलता के परिचायक हैं।

लेखक ने अपने उपन्यासों में यह दिखाने का भली भाँति प्रयत्न किया है कि अंगरेज़ों ने किस प्रकार हमारी नैतिक, सामाजिक, तथा साम्प्रदायिक कमज़ोरियों से लाभ उठा कर भारत पर अपना शासनाधिकार जमाया, और हमारी गुलामी की बेड़ी को ख़ूब मज़बूती से जकड़ दिया। लेखक ने जगह-जगह पर हिन्दुओं के आडम्बर-पूर्ण आचारों, दाम्भिकता से भरे विचारों का—जो अब भी हमारे नस-नस में भरे हैं—ख़ब आलोचना की है, उनकी ख़ूब निस्सारता सिद्ध की है। साथही महात्मा ईसा के सच्चे अनुयायी बनने का दम भरने वाले, अपने को संसार में सभ्य होने का दावा रखने वाले अंगरेज़ों की कुटिलता तथा नृशंसता-पूर्ण कपट लीला का भण्डाफोड़ किया है, जिन्हें पढ़कर दिल मसोस कर रह जाना पड़ता है। अभी तक इस अमर लेखक के 'महाराजा नन्दकुमार को फ़ाँसी'

और 'टाम काका की कुटिया' इन दो उपन्यासा के हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं *। पहले उपन्यास में अंगरेज़ी राज्य के संस्थापक वारेन हेस्टिंग्स साहब की काली करतूतों का वर्णन है कि किस प्रकार छल-कौशल से उन्होंने एक सच्चे देशभक्त, निरपराध, कर्मनिष्ठ ब्राह्मण की जान ली। दूसरे उपन्यास में अफ्रीका की काली जातियों पर श्वेताङ्गों के क्रूरता पूर्ण व्यवहारों का रोमांचकारी वर्णन है।

आज पाठकों की सेवा में हम एक ऐसे ही उपन्यास के अनुवाद को लेकर उपस्थित हो रहे हैं। इसका नाम गंगा गोविन्द सिंह है। इनके नाम से हिन्दी-भाषा-भाषी प्रायः कम परिचित होंगे, किन्तु बंगाल का बच्चा-बच्चा तक इनके नाम को जानता है। इन्हें मीरज़ाफ़र का छोटा भाई कहा जाय तो कोई अनुचित न होगा। इस उपन्यास के पढ़ने पर पाठकों को पता चलेगा कि इन्हीं के समान कुलांगारों के बल पर अंगरेज़ों ने स्वर्ण-भूमि भारत पर देखते २ अधिकार जमा लिया और अब तक शान के साथ शासन कर रहे हैं।

साधारण इतिहास के पढ़ने वाले भी जानते हैं कि वारेन-हेस्टिंग्स के अत्याचारों, मनमानी कार्रवाइयों से केवल भारत में ही त्राहि-त्राहि नहीं मच गई थी, किन्तु सात समुद्र पार भी वह दर्दनाक आवाज़ पहुँची थी, जिसे सुनकर महामना वर्क जैसे सहृदय लोगों के धैर्य छूट गये थे। जिस समय इस महात्मा ने हेस्टिंग्स की कारवाइयों पर अद्वितीय भाषण दिया था, उस समय पार्लमेण्ट भवन करुणा से प्लावित हो गया था, पत्थर का हृदय पसीज उठा था।

---

* पहले का मूल्य २॥) और दूसरे का १।-)॥ है। दोनों ही सस्ता साहित्य मंडल, अजमेर में मिल सकते हैं।

किन्तु कहीं पर भी किसी अत्याचार का अन्त आत्म-त्याग और शुद्ध सेवा-भाव के बिना नहीं होता। इस उपन्यास में पाठक देखेंगे कि प्रेमानन्द ने अत्याचार से सब का पिण्ड छुड़ाने के लिये विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। कई लोगों की जानें गईं। प्रजा ने दृढ़ता से अपने नेताओं का साथ दिया। यह विद्रोह रंगपुर के विद्रोह के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है। इस विद्रोह ने अत्याचारियों की आँखें खोल दीं। उन्होंने देख लिया कि हमारे अत्याचार का घड़ा भर गया। अन्त में जांच के लिये एक कमीशन बैठा। इस कमीशन ने गंगा गोविन्दसिंह तथा देवीसिंह का जो वारेन हेस्टिंग्स के दहिने हाथ और विशेष कृपापात्र थे—भण्डा फोड़ किया। विलायत तक इस की ख़बर पहुँची और वहाँ की गवर्नमेण्ट ने वारेन हेस्टिंग्स की जगह पर लार्ड कार्नवालिस जैसे सहृदय हितैषी सज्जन को भेजा जिसने आते ही प्रजा के आर्तनाद पर ध्यान दिया। ज़मीन्दारों और प्रजा को तबाही से बचाने के लिये सारे बंगाल और बिहार में स्थायी प्रबन्ध कायम किया। इस तरह १२ वर्ष के वारेन हेस्टिंग्स के ज़ुल्मी अन्याय पूर्ण शासन के बाद प्रजा सुख की नींद सोने में समर्थ हुई।

इस उपन्यास में पाठक देखेंगे कि वारेन हेस्टिंग्स ने अपने शासन-काल में अपना मतलब सिद्ध करने के लिये अपने कृपा-पात्र लोगों की सहायता से स्वर्गभूमि बंगाल को किस प्रकार श्मशान में परिणत कर दिया था। इनके कृपापात्र गंगा गोविन्दसिंह और देवीसिंह प्रजा से मालगुजारी वसूल करने के लिये उन लोगों पर जिनके पास कल के लिये खाने के लिये न तो एक मुट्ठी अन्न बचा था और न पहनने को एक टुकड़ा वस्त्र—कैसे निर्दय-नृशंस और अमानुषिक अत्याचार किये,

बड़े सम्भ्रान्त पुरुषों के सामने ही उनकी बहू बेटियों की किस प्रकार इज़्ज़त ख़राब की। जिनके शरीर पर तिनके का भी आघात नहीं हुआ था, उन्हें काँटेदार बेल की डालियों से किस प्रकार पीटा, उसे पढ़ कर पत्थर का हृदय भी एक बार काँप उठेगा।

लेखक ने इस उपन्यास को आज से ४०–४५ वर्ष पहले लिखा था, किन्तु आज भी इसकी उपयोगिता कम नहीं हुई है। क्योंकि आज भी एक न एक रूप में हम पर दिन-रात अत्याचार हो रहे हैं, आज भी दिन-भर कठिन परिश्रम करने पर भी कई करोड़ लोगों को आधे पेट भोजन तक नहीं मिलता और आज सर्वस्व गँवा कर भी हम वैसे ही बे ख़बर हो, पड़े हुए हैं तथा सामाजिक और धार्मिक बन्धनों से वैसे ही जकड़े हुए हैं। इस पुस्तक का बंगला से हिन्दी में अनुवाद करने का मैंने इसीलिये दुस्साहस किया कि पाठक अपनी वर्तमान स्थिति से व्यथित हो, एक बार ग़ौर करें, अपनी कमज़ोरियों को महसूस करें और साथ मिलकर इस गुलामी के जंज़ीर को तोड़ें, जिससे सभ्य संसार के सामने मुँह दिखाने के योग्य बनें। यह मेरा प्रथम प्रयास है, अतः अनुवाद में बहुत कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं। इसके अतिरिक्त पुस्तक जल्दी में छपने से मैं इसका फ़ाइनल प्रूफ़ तक न देख सका जिससे प्रूफ़ सम्बन्धी कुछ भद्दी भूलें रह गई हैं अतएव हम इन त्रुटियों के लिये पाठकों और समालोचकों से क्षमा प्रार्थी हैं।

ता० १७—१—२७

गणेश पाण्डेय
दारागञ्ज—प्रयाग

विषय-सूची

गंगा गोविंदसिंह

मूल लेखक
श्रीयुत चण्डीशरण सेन

गंगा गोविन्दसिंह

पहला अध्याय

अवतरणिका

सन् १७७२ ई० का पाँचसाला बन्दोबस्त समाप्त होने पर है। देश के ज़मीन्दार, ताल्लुकेदार आदि लोगों के प्राण कण्ठगत हो रहे हैं। सभी चिन्तित हैं कि न जाने इस बार और कौन से नये २ नियम जारी होंगे। लोगों को भय है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी इस बार सभी ज़मीन्दारों की ज़मीन-दारी छीन कर न जाने क्या बन्दोबस्त करेगी।

देश के कर्ता, धर्ता, विधाता वारेन हेस्टिंग्स हैं। वे भला ज़मीन पर ज़मीन्दारों का किसी प्रकार का स्थायी स्वत्व क्यों कबूल करने लगे! जब तक उनकी अनुकम्पा प्राप्त न करेंगे, तब तक कोई भी ज़मीन्दारी का सुख न भोग सकेगा।

वारेन हेस्टिंग्स बड़े स्वेच्छाचारी मनुष्य ठहरे। वे देश के आचार, व्यवहार एवं कानून के अनुसार चलने को कौन कहे, कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स तक की परवा नहीं करते। सदा मन-माना काम करते हैं। दस बीस हज़ार रुपये देने पर उनकी रज़ामन्दी सहज ही प्राप्त की जा सकती थी।

इसके पहले अधिकांश मेम्बर उनके विरुद्ध थे। इसलिये अधिकांश मेम्बरों के मतानुसार उन्हें भी काम करने पड़ते थे। किन्तु विपक्ष दल वालों में कर्नल मान्सन की मृत्यु हो गई थी। इस समय फिलिप फ्रांसिस एवं जनरल क्लेवरिंग ही उनके विपक्ष में रह गये थे। इधर रिचार्ड बारवेल छाया की तरह इनका अनुसरण करते थे। ये सर्वदा इनके मत का समर्थन किया करते थे। कौंसिल में किसी विषय पर मतभेद होने पर दो व्यक्ति एक तरफ़ हो जाते और दो व्यक्ति दूसरी ओर। इस प्रकार वारेन हेस्टिंग्स—जो गवर्नर एवं सभापति थे—जिस तरफ होते, उसी पक्ष के मतानुसार काम होता। कौंसिल में इन्हीं की प्रधानता थी।

इसी समय लार्ड नार्थ इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री थे। हेस्टिंग्स की मनमानी कार्रवाइयों तथा क्रूरता-पूर्ण व्यवहारों की ख़बर उन तक भी पहुँची। निराश्रित रोहिला-रमणियों का करुणा-क्रन्दन और आर्तनाद इङ्गलैण्ड तक भी पहुँचा। लार्ड नार्थ गुस्से में भर कर बोल उठे—"ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों ने सुसभ्य अङ्गरेजों के नाम को कलङ्कित कर दिया है। इन कर्मचारियों तथा उनकी अधीनस्थ सेना ने निरपराधिनी रोहिला-महिलाओं के नाक-कान काट कर, उनके स्वर्णाभूषणों को छीन लिया है। यहाँ तक कि उनके पहनने के कपड़े तक भी उतरवा लिये हैं और उन्हें नंगो करके ज़बर्दस्ती पकड़ कर सुजाउद्दौला के तम्बू में लाये। अर्थ-लोलुप ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से देश के शासन की बागडोर लेने के लिये बड़े दिन (२५ दिसम्बर) के पहले ही पार्लियामेण्ट की बैठक करना होगी।"

हेस्टिंग्स के इंगलैंड स्थित एजेण्ट (आम मुख़्तार) माक-

लिन साहब ने देखा कि यह तो बड़ी भारी विपत्ति आना चाहती है। हेस्टिंग्स ने पहले ही से अपने एजेण्ट माकलिन साहब को कह रखा था, "गड़बड़ी देखने पर शीघ्र ही हमारी ओर से त्यागपत्र दे देना।"

माकलिन साहब ने हेस्टिंग्स की ओर से कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के आफ़िस में इस्तिफ़ा दाखिल कर दिया। डाइरेक्टर भी बहुत डर गये। उन्होंने देखा कि हेस्टिंग्स की कार्रवाइयों से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य-शासन की क्षमता एकबारगी जाती रहेगी। इसलिये इन लोगों ने इस्तिफ़े को फ़ौरन मंजूर कर लिया। उन्होंने डुइलार साहब नामक एक चतुर व्यक्ति को गवर्नर मनोनीत किया; उधर भारतवर्ष में यह लिख भेजा कि जब तक डुइलार साहब वहाँ न पहुँचें, तब तक जेनरल क्लेवरिंग ही गवर्नर जनरल का काम सँभालें।

कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स का पत्र भारतवर्ष में पहुँचा। हेस्टिंग्स 'किंकर्तव्यविमूढ़' हो गये। इस समय धन-सञ्चय करने का अच्छा मौका हाथ लग रहा था। विशेषतः कर्नल मान्सन की मृत्यु से वे जो चाहते, वही कर सकते थे। फिर इस समय क्यों कर पद-त्याग किया जा सकता था? बहुत देर तक सोचने विचारने के बाद बोले—"मैंने अपने आप मुख़्तार माकलिन साहब को त्याग-पत्र देने के लिये हर्गिज़ अख़्तियार नहीं दिया है। मैं गवर्नर जनरल का पद नहीं छोड़ूँगा।"

किन्तु जेनरल क्लेवरिंग ने हेस्टिंग्स की बातों को नहीं सुना। उन्होंने तत्क्षणात् हेस्टिंग्स से खजाने तथा क़िले की चाबियाँ मांगी। हेस्टिंग्स ने चाबियाँ नहीं दीं। दोनों में खूब वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ। जेनरल क्लेवरिंग ने आईन के

अनुसार अपने को गवर्नर जेनरल समझ कर, फिलिफ़ फ्रान्सिस को ले कौंसिल-भवन के एक कमरे में कार्य आरम्भ कर दिया। उधर वारेन हेस्टिंग्स वारवेल साहब को लेकर दूसरे कमरे में कौंसिल का काम करने लगे। इन्होंने सब लोगों से जेनरल क्लेवरिंग का हुक्म अस्वीकार करने के लिये अनुरोध किया।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अन्यान्य कर्मचारियों ने हेस्टिंग्स का पक्षावलम्बन किया। वे लोग जानते थे कि जेनरल क्लेवरिंग के गवर्नर होने पर किसी को भी घूँस-रिश्वत द्वारा लूट खसोट करने की सुविधा न मिलेगी; न देशी लोगों पर अत्याचार ही करने पायेंगे। इसलिये ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सभी स्वार्थपर कर्मचारियों एवं देशी कुलांगारों ने जेनरल क्लेवरिंग के विरुद्ध आचरण करना आरम्भ कर दिया। अन्त में हेस्टिंग्स के प्रस्तावानुसार जेनरल क्लेवरिंग एवं उनके दर्मियान इस विषय के निपटारे का भार सुप्रीमकोर्ट के जज को दिया गया। सुप्रीमकोर्ट के प्रधान जज इलइजा इम्पे थे। ये हेस्टिंग्स के घनिष्ठ मित्र थे। इनके विचारानुसार हेस्टिंग्स की ही जय रही। इन्होंने यह कह कर क्लेवरिंग को हरा दिया कि हेस्टिंग्स के आम मुख़्तार के दिये हुए इस्तिफे को मंजूर करके कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स ने महा अन्याय किया है। अस्तु। "हेस्टिंग्स की कायदे के अनुसार पदच्युति नहीं हुई है।"

इस प्रकार हेस्टिंग्स का पद रह गया एवं इनकी क्षमता तथा प्रभुत्व दिन २ बढ़ने लगा।

इस घटना के कुछ काल बाद जेनरल क्लेवरिंग भी परलोक को सिधारे। इस कारण हेस्टिंग्स का एकाधिपत्य और भी दृढ़ हो गया। इधर ज़मीन के नये बन्दोबस्त का समय भी आ पहुँचा।

देश के प्रधान प्रधान ज़मीन्दार एवं तालुकेदार लोग अपने अपने नायब, गुमाश्तों और आम मुख्तारों को पैरवी, सिफ़ारिश करने के लिये कलकत्ता भेजने लगे। कलकत्ते के राज-कर्मचारियों के घर लोगों के कोलाहल से गूँज उठे। खालसा-डिपार्टमेण्ट की राय अपनी ओर करने के लिये वे लोग इन कर्मचारियों के घर में चक्कर लगाने लगे।

किन्तु ज़मीन्दारों के भेजे हुए आदमियों ने बहुत जल्द इस बात का पता लगा लिया कि सब बन्दोबस्त का भार हेस्टिंग्स के ही हाथों में है। इसलिये हेस्टिंग्स के प्रिय-पात्र लोगों को वश में किये बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। हेस्टिंग्स का विशेष प्रियपात्र कौन था?

दूसरा अध्याय

हेस्टिंग्स का प्रियपात्र कौन था?

सन् १७७८ ई० के जुलाई मास में एक दिन प्रातःकाल एक पदस्थ राज-कर्मचारी अपने कलकत्ते के भवन में बैठा हुआ, बहुत से कामों की देख-भाल कर रहा था। नज-राने के रुपये अपने २ हाथों में लेकर सैकड़ों ज़मींदार उनके सम्मुख खड़े थे। जो उपस्थित न हो सके, उनके गुमाश्ते तथा आम मुख़्तार अपने २ स्वामियों की ओर से पत्र एवं नज़राने के रुपये लेकर हाज़िर थे। इस उच्च पदस्थ राजपुरुष के सम्मुख बैठने की भी किसी की हिम्मत नहीं होती थी। इन सब लोगों के बीच में महाराजा कृष्णचन्द्र का भेजा हुआ एक ब्राह्मण हाथ में एक पत्र लिये खड़ा था। 'महाराज की

जय हो'। ऐसा कह कर उसने इस राजपुरुष के हाथ में उस पत्र को दिया। पत्र के शिरोभाग पर यह लिखा हुआ था:—

"दरबार असाध्य है—पुत्र अबाध्य है, ऐसी दशा में केवल गंगा गोविंदसिंह ही का भरोसा है।"

इस उच्च पदस्थ राज-कर्मचारी का नाम दीवान गंगा गोविंदसिंह है। पाठकों की जानकारी के लिये इस स्थान पर इनका परिचय संक्षेप में दिया जाता है।

सन् १७६६ ई० के पहले ये समय समय पर अपने बड़े भाई राधा गोविंद की जगह पर बंगाल के नायब सूबेदार महम्मद रज़ाख़ाँ के अधीन क़ानूनगो का कार्य करते थे। रज़ाख़ाँ के पदच्युत किये जाने पर जब ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ने कर वसूली का भार अपने हाथों में लिया, तब गंगा गोविंद-सिंह यह पद पाने की आशा से कलकत्ते में आकर रहने लगे। हेस्टिंग्स साहब उस समय बंगाल के गवर्नर थे। उसके समय में गंगा गोविंदसिंह के समान चतुर एवं कार्यदक्ष लोगों के लिये उच्च पद पाने की बहुत कुछ संभावना रहती थी। देशी लोगों पर अत्याचार एवं धोखेबाजी के कामों में, ये हेस्टिंग्स के छोटे भाई थे। अस्तु, हेस्टिंग्स ने शीघ्र ही गंगा गोविंदसिंह को खालसा डिपार्टमेण्ट के आम मुख़्तार राजा राजवल्लभ के अधीन डिप्टी दीवान के पद पर नियुक्त कर दिया। गंगा गोविंद के हाथ में धीरे २ राजस्व-विभाग के सब कामों का भार चला आया। इसके अतिरिक्त वे हेस्टिंग्स के निजी कामों के लिये घर के दीवान भी बन गये। गंगा गोविंद सिंह की कार्य प्रणाली को देख कर हेस्टिंग्स बहुत सन्तुष्ट हुए, एवं अन्त में १७७० ई० में इन्हें कलकत्ते को राजस्व कौंसिल का दीवान बनाया। किन्तु इस विपत्ति एवं दुर्घटना

पूर्ण संसार में सभी को समय समय पर कष्ट एवं यन्त्रणायें सहनी ही पड़ती हैं। हेस्टिंग्स के विपक्ष दल ने सन् १७७५ ई० के मई मास में घूस लेने के अपराध में गंगा गोविंदसिंह को पदच्युत किया। हेस्टिंग्स तथा वारबेल, सैकड़ों चेष्टायें करने पर भी गंगा गोविंदसिंह को दीवान के पद पर बहाल न रख सके। किन्तु १७७६ ई० में कर्नल मान्सन की मृत्यु हो जाने पर हेस्टिंग्स के विपक्ष दल का प्रभुत्व एकदम लोप हो गया। इस समय हेस्टिंग्स एवं बारवेल दोनों ने पुनः गंगा गोविंदसिंह को दीवान पद पर नियुक्त किया। सन् १७७६ ई० के ८वीं नवम्बर को ये फिर से दीवान नियुक्त हुए और लगान वसूली के विभाग में फिर पूरी क्षमता के साथ कार्य करने लगे। फिर क्या था, देश के ज़मीन्दार एवं तालुक़ेदार सदा हाथ जोड़ कर इनके सामने खड़े रहने लगे। आज भी सैकड़ों ज़मीन्दार, तालुक़ेदार जमीन्दारों के नायब गुमाश्ते एवं आम मुख्तार, हाथ में नज़राने लेकर उनके सामने खड़े थे।

जब उपस्थित ज़मीन्दार आदि सभी लोग क्रमशः विदा लेकर अपने २ स्थानों पर चले गये, तब प्रायः बीस पचीस सभासदों को साथ में लिये तथा मूल्यवान वस्त्रों से सुसज्जित एक कृष्ण वर्ण वाला लम्बा मनुष्य घर में आया। उसके घर में प्रवेश करते ही दीवान गंगा गोविन्दसिंह ने नम्रतापूर्वक खड़े होकर उनको आगत स्वागत किया और अपने पास में बैठा कर नाना प्रकार की बातें करने लगे। इन लोगों की आपस में बातचीत आरंभ होने पर दूसरे व्यक्ति वहाँ से चले गये।

बहुत बातचीत होने के बाद इस नवागत, कृष्णकाय पुरुष ने कहा—"आप के द्वारा मेरा इतना अनिष्ट होगा, ऐसा

कभी मेरे विचार में भी न आया था। आप ही मेरे एक मात्र बल भरोसा हैं।"

"मेरे द्वारा आपका अनिष्ट हुआ है! यह कैसे?"

"पदच्युत हो गया था, यह क्या अनिष्ट नहीं है? (कुछ मुस्कुरा कर) "पदच्युत हो जाने पर फिर मुक़र्रर भी तो हो गये?"

"फिर मुक़र्रर तो हो गया, किन्तु नाम पर धब्बा जो लग गया!"

"महाशय, इस धब्बे का लगना ही अच्छा, आवश्यकता पड़ने पर इसी धब्बे को दिखा कर फिर मुक़र्ररी हो जाती है। इसी धब्बे के कारण तो मुर्शिदाबाद की राजस्व-समिति के आप दीवान हुए हैं।"

"आप कहते हैं कि कलंक का लगना ही अच्छा है। किन्तु पहले एक बार बरख्वास्त होने के कारण ही तो राजस्व-समिति हमको फिर बरख्वास्त करना चाहती है।"

"प्रादेशिक राजस्व-समिति शीघ्र ही उठा दी जायगी। आप इस विषय में कोई चिन्ता न करें।"

"समिति के उठा देने पर भी हमारा कौन सा उपकार होगा?"

"नया बन्दोबस्त होने पर एक न एक सुविधा तो आपको होगी ही।"

"मुझे कोई सुविधा होगी, इसे आप कैसे जानते हैं?"

"आप जाने हुए लोगों में हैं। वारेन हेस्टिंग्स साहब यह अच्छी तरह से जानते हैं कि आप अत्यन्त कार्य-दक्ष एवं उपयुक्त कर्मचारी हैं। आपको भला वे कैसे छोड़ सकते हैं?"

"आपकी इन बातों का मैं कुछ भी अर्थ नहीं समझ सका। यदि गवर्नर मुझको कार्य-दक्ष व्यक्ति समझते, तो १७७२ ई०

की जाँच के समय मुझे पदच्युत क्यों कर दिया था। मैं तो प्राण-पण से सरकारी काम बजाता हूँ। सन् १७७० ई० के घोर दुर्भिक्ष-काल में भी कर वसूली में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं की थी।"

"गवर्नर साहब इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं कि लगान वसूल करने में आप जैसा कार्य-चतुर व्यक्ति दूसरा नहीं मिल सकता।"

"यदि ऐसा समझते थे तो बरख्वास्त क्यों कर दिया था?"

"उन्होंने क्या अपने मन से बरख्वास्त कर दिया था। विलायत की सभ्यता के अनुरोध से—ईसाई धर्म के अनुरोध से—उस समय आपको बरख्वास्त किये बिना काम भी चलने वाला नहीं था। इसीसे उन्होंने आपको बरख्वास्त कर दिया था।"

"आपकी बात मेरी समझ में जरा भी नहीं आती। विलायत की सभ्यता के अनुरोध से कैसे—इसे ज़रा समझा कर कहें।"

"पूर्णिया के लोगों ने आप के विरुद्ध बड़ा भारी अभियोग चलाया था। कर वसूल करने के लिये सैकड़ों ज़मीन्दारों एवं तालुकेदारों की स्त्रियों तक को आपने माल कचहरी में नंगी करके रखा था। स्त्रियों को मारना अथवा उन्हें नंगी करना विलायत के लोग बहुत अन्याय-पूर्ण समझते हैं; इन सब बातों के प्रकट हो जाने पर यदि गवर्नर जनरल आप को बरख्वास्त नहीं करते तो स्वयं उन्हीं पर दोष आता। इसी से बाध्य हो कर उन्होंने आप को बरख्वास्त कर दिया था। किन्तु आप निश्चय जानें कि आप भी उनके प्रियपात्रों में एक विशेष प्रियपात्र हैं।"

"उस साल ज़मीन्दारों एवं तालुकेदारों की स्त्रियों को पकड़ कर लाये बिना, मालगुजारी का एक पैसा भी वसूल न होता। उस समय तो आपके हाथ में मालगुज़ारी वसूल करने का भार नहीं था। मुहम्मद रज़ाखां नायब सूबेदार थे। वे बार बार मेरे पास हुक्म भेजते थे। "जिस तरह से हो, पूर्णिया की मालगुजारी वसूल करनी होगी। उधर घोर दुर्भिक्ष पड़ा हुआ था। ज़मीन्दार तालुकेदार प्रजा से एक रुपये को कौन कहे, एक पैसा तक भी वसूल करने में समर्थ न होते थे। उन्हें अपने पूर्व सञ्चित-धन से मालगुजारी देनी पड़ी। किन्तु घर का रुपया कोई सहज ही में थोड़े निकालता है? इसलिए विशेष कष्ट के साथ मुझे कर वसूल करना ही पड़ा।"

"किन्तु पूर्णिया उसी साल से जन-शून्य भी हो गया है। पूर्णिया की मालगुजारी इसी कारण से कम हो गयी है।"

"पूर्णिया के लोक-शून्य होने से मैं क्या करूँ? मैंने तो लोगों के प्राणहरण नहीं किये। बहुत से ज़मीन्दारों एवं तालुकेदारों की स्त्रियों को माल कचहरी में पकड़वा मँगाया था, इसीसे वे जाति-च्युत कर दिये गये। सुतराम् वे देश छोड़ कर भाग गये। मारने से लोग मरे ही कितने! मैं तो समझता हूँ कि दो एक सौ से अधिक लोग नहीं मरे होंगे! इसमें भी मेरा कौन दोष है? ये सब लोग बेतों की मार से भी मालगुज़ारी देना स्वीकार नहीं करते थे। तब मैं बेलवृक्ष की काँटेदार डालियों से मारने का हुक्म देता था। इसीसे बहुत से मर गये थे। परन्तु ऐसा न करता तो किस प्रकार मालगुजारी वसूल होती?"

"इन बीती हुई बातों को लेकर तर्क-वितर्क करने से क्या लाभ? आपको कोई भय नहीं है। हेस्टिंग्स साहब आप जैसे

कार्य-दक्ष व्यक्ति को कभी नहीं छोड़ सकते। प्रान्तिक कौंसिल के मेम्बर सैकड़ों चेष्टायें करने पर भी आपका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। प्रान्तिक कौंसिल को तोड़ देने के लिये गवर्नर जनरल ने कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स के निकट पत्र भेजा था पर कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर ने अपने ४थी जुलाई सन् १७७६ ई० के पत्र में हेस्टिंग्स साहब के प्रति विरक्ति प्रकट की। उनका अभिप्राय कोई नूतन परिवर्तन करने का नहीं है।"

"कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स गवर्नर जनरल के ऊपर विरक्त क्यों हुआ?"

"उसने अनेक विषयों में विरक्ति प्रगट की है।"

"किन किन विषयों में विरक्ति प्रकट की है?"

"मैं बरखवास्त होकर जो पुनः मुकर्रर हुआ हूँ उससे मालूम होता है कि अब तक बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स इस बात को जानता नहीं। मेरे हाथ में राजस्व-विभाग का कारोबार रहने से उसने अत्यन्त असन्तोष प्रकट किया। *इसके अतिरिक्त मनोहर मुकर्जी के मुकद्मे के कागजापत्र एवं थेकार साहब की करतूतों को देख कर वे (डाइरेक्टर) हेस्टिंग्स एवं बारवेल साहब के ऊपर अत्यन्त विरक्त हो गये।"

"मनोहर मुकर्जी का मुकद्मा कैसा है?"

"मनोहर मुखोपाध्याय बेटमैन साहब के आम मुख्तार थे। बेटमैन साहब मुँगेर के कलक्टर थे। मुँगेर एवं खड्गपुर इन दोनों महालों को बेटमैन साहब ने धान्दू बहादुर एव कृपाराम—इन दो नामों से इजारे में ले लिया था। धान्दू बहादुर नाम का कोई व्यक्ति नहीं था, कृपाराम मनोहर का एक

---

* देखो परिशिष्ट नं० १

परिचित मनुष्य था। बेटमैन के आदेशानुसार मनोहर धान्दू बहादुर एवं कृपाराम के ज़ामिन हुए थे। उन्होंने इन दो स्थानों के जमीन्दारों को उखाड़ कर स्वयं महाल को इजारे में लिया था। किन्तु महाल से जो कुछ आय होती थी, उसका कुल का कुल स्वयं हजम कर जाते थे। इस प्रकार कम्पनी की प्राप्य आय में १३००० रु० की घटी पड़ गई। रिपोर्ट करने पर जाँच आरम्भ हुई। उस समय रुपयों के लिये मनोहर को पकड़ने पर उसने दरख्वास्त दी कि धान्दू बहादुर नाम का कोई व्यक्ति नहीं है। बेटमैन साहब धान्दू बहादुर एवं कृपाराम के नामों की मुहर बनवा कर अपने पास रखते थे। वे ही इन दोनों महालों के इजारादार थे एवं उनके कथनानुसार मैं वह जामिन हुआ था। †

"यह क्या कोई नयी बात है? ऐसा तो सर्वत्र होता है? श्री हट्ट में क्या हुआ है?"

"श्री हट्ट के गोलमाल में स्वयं बारवेल साहब तक सम्मिलित थे, ऐसा कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स को सन्देह हुआ है। राजस्व-परिदर्शन समिति ने (Committee of curcuit) श्री हट्ट की ज़मीन्दारी मालगुजारी के बदले ३१ हाली लेने का बन्दोबस्त किया था। किन्तु जिस व्यक्ति के नाम से इजारादारी पट्टा कबूलियत लिखा गया था, उस नाम का कोई व्यक्ति श्री हट्ट में नहीं था। श्री हट्ट के रेज़िडेण्ट थेकारे साहब ने एक कल्पित नाम पर इन सब महालों को इजारे ले लिया था। पर इन्होंने हाथियों के मूल्य के बाबत परिदर्शन-समिति से ३३००० रु० पेशगी लिये थे। बाद में कुछ हाथी भेजे जो रास्ते में ही

† देखो परिशिष्ट नं० २

मर गये। केवल १६ हाथी पटना पहुँच सके। श्री हट्ट के इस गोलमाल के सम्बन्ध में कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने हेस्टिंग्स एवं वारवेल दोनों को डांट फटकार बतलाई है।"

ये सब गोलमाल शीघ्र ही दूर हो जायँगे। अँगरेज़ लोगों को तो सात खून माफ़ हैं। किन्तु मैं आप के पास एक बात कहने के लिये आया हूँ। आप प्रतिज्ञा करें कि आप मेरा कोई अनिष्ट करने की चेष्टा नहीं करेंगे। और मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं आपका कोई अनिष्ट साधन नहीं करूँगा। आप मुझ पर जिस कारण से असन्तुष्ट हुए हैं, उसे मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। वे स्त्रियाँ भाग गयी हैं। कहीं भी उनका पता नहीं चलता।"

"मैं कभी भी आपका अनिष्ट नहीं करूँगा। इस बात में आप बिल्कुल निश्चिन्त रहें। इस समय प्रान्तिक कौन्सिल के उठ जाने ही से अच्छा होगा। दो तीन वर्ष में नये नये परिवर्तन न होने, नये नये क़ानून जारी न होने से सरकारी काम करने वालों को कोई लाभ नहीं हो सकता। आप कुछ काल तक यहाँ पर निवास करें और देखें कि अगले दिन कौंसिल में कौन कौन से नियम निर्धारित होते हैं। इसके बाद जो होना होगा, उसे हमलोग परामर्श करके स्थिर करेंगे।"

"तो आज बिदा होता हूँ। आज से आपके साथ यही बात चीत रही—आप भी मेरे अनिष्ट की चेष्टा न करेंगे, मैं भी आपके अनिष्ट की चेष्टा नहीं करूँगा। उन स्त्रियों का मैं अबतक भी अनुसन्धान कर रहा हूँ।"

यह कह कर दूसरा व्यक्ति दीवान गंगा गोविन्दसिंह के पास से विदा ग्रहण कर अपने वासस्थान को चला गया।

इस दूसरे व्यक्ति का नाम राजा देवीसिंह था। जिस

समय मुहम्मद रज़ाखाँ नायब सूबेदार थे, उस समय राजा देवीसिंह, को पूर्णिया की मालगुज़ारी वसूल करने का भार दिया गया। किन्तु इनके अत्याचार से पूर्णिया प्रायः जनशून्य हो गया था। सुतराम् मुहम्मद रज़ाखां की पदच्युति के बाद सन् १७७२ साल में जिस समय वारेन हेस्टिंग्स साहब परिदर्शन-समिति के सभापति हुए थे, उन्होंने राजा देवीसिंह को पद-च्युत कर दिया था। किन्तु सन् १७७३ ई० में जब कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, वर्दवान, ढाका, पटना एवं दिनाजपुर की माल-गुजारी की वसूली के लिये, एक एक प्रान्तिक कौंसिल संस्था-पित हुई, उस समय फिर हेस्टिंग्स ने राजा देवीसिंह को मुर्शिदाबाद की कौंसिल का दीवान बनाया। कौंसिल के मेम्बर मालगुजारी वसूल करने की पेचीदी बातों को कुछ नहीं समझते थे। मुर्शिदाबाद कौंसिल की सारी कारवाई देवीसिंह अपनी इच्छा के अनुसार करते थे। अनेकों ज़मीन्दारों को उनके महाल से उखाड़ कर कल्पित नामों से अपने लिये इन सब महालों को इजारा ले लेते थे। इसके अतिरिक्त देवीसिंह अँगरेज़ों को खुश करने के लिये एक चाल चलते थे। वे हमेशा दस बारह स्त्रियों को इकट्ठा करके साथ में रखते थे। प्रान्तिक कौंसिल के अँगरेज़ कर्मचारियों को प्रयोजन पड़ने पर, इन में से दो एक स्त्रियों को उनके निकट भेज देते थे। इससे अंगरेज कर्म-चारी देवीसिंह से विशेष सन्तुष्ट रहते थे।

किन्तु किसी की चिरकाल तक एक तरह से नहीं बीतती। सन् १७७८ ई० के कुछ पहले मुर्शिदाबाद की प्रान्तिक कौंसिल, देवीसिंह के प्रति अत्यन्त असन्तुष्ट होकर उन्हें बरखास्त करने को उद्यत हुई। देवीसिंह और किसी भी तरह से उन्हें सन्तुष्ट करने में समर्थ नहीं हुए। सुताराम् इस समय

हेस्टिंग्स साहब का आश्रय ग्रहण करने के इरादे से कलकत्ता आये हुए हैं एवं हेस्टिंग्स साहब के विशेष प्रिय-पात्र गंगा गोविन्द सिंह के शरणागत हुए हैं।

तीसरा अध्याय

मालगुज़ारी की वसूली या डकैती

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बङ्गाल, बिहार एवं उड़ीसे की दीवानी पाने पर, मालगुज़ारी वसूल करने के लिये अंगरेज़ लोगों ने भिन्न २ श्रेणी के भूम्याधिकारियों पर जिस प्रकार के अत्याचार एवं निष्ठुर व्यवहार किये, उनका संक्षिप्त रूप में उल्लेख न करने से इस उपन्यास में लिखित घटनायें पाठकों को सहज में हृदयंगम नहीं हो सकतीं।

सन् १७६५ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बंगाल, बिहार तथा उड़ीसे की दीवानी की सनद प्राप्त की थी। किन्तु माल-गुज़ारी वसूली का भार नायब सूबेदार मुहम्मद रज़ाँख़ाँ के हाथ में ही था। कापुरुष मुहम्मद रज़ाँख़ाँ अधिक मालगुज़ारी वसूल करके अंगरेज़ों की प्रसन्नता प्राप्त करने के अभिप्राय से, प्रजा पर अत्यन्त अत्याचार करने लगा। उसीके अधिकार काल में राजा देवीसिंह ने पूर्णियावासी प्रजा एवं ज़मीन्दारों के ऊपर खूब अत्याचार किये थे। वह सम्भ्रान्त ज़मीन्दारों एवं तालुके-दारों के परिवार की स्त्रियों तक को पकड़वा कर कचहरी में मँगवाता। किन्तु निष्ठुर अत्याचारी का पद व प्रभुत्व कभी भी चिरस्थायी नहीं हो सकता। अत्याचार ही राजविप्लव का एक मात्र मूल कारण होता है।

सन् १७७० ई० के दुर्भिक्ष के बाद ही मुहम्मद रज़ाँखाँ पदच्युत किये गये। बंगाल के गवर्नर वारेन हेस्टिंग्स ने मालगुज़ारी का भार अपने हाथों में लिया। किन्तु दुर्भिक्ष के समय बङ्गाल के प्रायः तिहाई कृषक मृत्यु को प्राप्त हो गये थे। सुतराम् बङ्गाल की मालगुज़ारी क्रमशः घटने लगी थी। वारेन हेस्टिंग्स मालगुज़ारी की वृद्धि के अभिप्राय से जमीन्दारों की ज़मीन्दारी की जमा-वृद्धि करना आरम्भ करने लगे। जमीन्दारों की पैत्रिक जमीन्दारी जब्त करके बहुत से दुष्ट-चरित्र गुमाश्तों एवं अन्यान्य दुष्ट लोगों को, उनकी जमीन्दारी का इज़ारा देना आरम्भ कर दिया। वे इज़ारादार प्रजा का सर्वनाश करके उनका सर्वस्व लूटने लगे।

पुराने ज़मीन्दारों में बहुत से ऐसे भी थे जो अपनी रैयतों को अपनी सन्तान समझ कर उनकी देखभाल करते थे। वे अपनी रैयतों पर प्रायः अत्याचार नहीं करते थे। वे अच्छी तरह से जानते थे कि रैयतों के नष्ट हो जाने पर उनकी जमीन्दारी कभी रक्षित नहीं रह सकती। किन्तु जिन अर्थ-गृद्ध बनियों एवं महाजनों को हेस्टिंग्स साहब पुराने ज़मीन्दारों की जमीन्दारी इजारे में देने लगे, वे प्रजा की भलाई बुराई की कुछ भी चिन्ता नहीं करते थे। दो एक वर्ष के लिये वे एक एक परगने की ज़मीन्दारी इजारे में लेते थे। सुतराम् अपने इजारे की मियाद ख़तम हो जाने के पहले ही प्रजा से छल, बल, कौशल से जितना धन वसूल हो सकता था, वसूल करते थे। किसी ग्राम के दो चार घरों के भाग जाने पर अवशिष्ट लोगों को भागे हुए लोगों के बदले ख़जाना चुकाना पड़ता था। इन सब इजारादारों के अत्याचार से देश हाहाकार से परिपूर्ण हो गया था। इजारादारों के प्रहार से लोगों के प्राण पखेरू प्रयाण करने लगे।

कोई कोई इजारादार जमीन्दारी की आशा से इतनी अधिक रकम स्वीकार करके इजारा लेते थे कि वे गवर्नमेण्ट की माल-गुज़ारी तक वसूल नहीं कर सकते थे। इसलिये उनके पास से कम्पनी का प्राप्य राजस्व दिन दिन और भी कम होने लगा। इस बार कम्पनी के राजस्व की वसूली के लिये हेस्टिंग्स साहब ने तत्कालीन परिवर्तित नियमानुसार जिन अंगरेज़ कर्मचारियों को नियुक्त किया, वे तो और भी प्रजा-पीड़क हो उठे।

१४ मई सन् १७७२ ई० के नियमानुसार पाँच साल की मियाद पर देश की सभी ज़मीन बन्दोबस्त कर दी गई। इजारा-दारों के साथ ही अधिकाँश ज़मीन का बन्दोबस्त हुआ। हेस्टिंग्स साहब ने स्वयं परिदर्शन कमेटी के अध्यक्ष बनकर, भिन्न भिन्न ज़िलों की ज़मीन को सब से अधिक दाम पर बन्दो-बस्त कर दिया। इस बन्दोबस्त के बाद प्रत्येक ज़िले में एक एक अङ्गरेज़ कर्मचारी को कलक्टर की उपाधि प्रदान कर, मालगुजारी वसूल करने का भार प्रदान किया।

किन्तु किसी किसी ज़िले के कलक्टर, पुराने जमीन्दारों को नष्ट करके उनकी ज़मीन्दारी कल्पित नामों से स्वयं इजारे में लेने लगे; एवं ऐसी ज़मीन्दारी से जो कुछ मालगुजारी वसूल होती, उसे स्वयं हड़प जाते। ये ईस्ट इण्डिया कम्पनी को प्राप्य मालगुजारी तक भी नहीं देते थे, इससे भी कम्पनी की बहुत सी मालगुजारी बाकी पड़ने लगी। हेस्टिंग्स साहब स्वयं रिश्वत लेते थे। इसलिये ऐसे कलक्टरों को कुछ बोलने की उनकी हिम्मत नहीं होती थी। उन्हें वैसा करने से रोकने पर स्वयं उनके दोष प्रकट हो जायँगे, इसी आशंका से उन्हें चुप-चाप रहना पड़ता था। इसके बाद अनन्योपाय होकर कलक्टर का पद उठा दिया गया। मालगुजारी वसूल करने के भार

फिर बङ्गालियों के हाथ में दिये गये; एवं इन सब बङ्गाली कर्मचारियों के कार्य की देख-रेख के लिये पटना, मुर्शिदाबाद, बर्दवान, दिनाजपुर, ढाका एवं कलकत्ते, इन छः ज़िलों में छः प्रोविन्शियल कमेटी यानी प्रदेशीय राजसमिति संस्थापित कर दी। पूर्व अध्याय में लिखित राजा देवीसिंह मुर्शिदाबाद के प्रादेशिक कौंसिल के दीवान नियुक्त हुए; और गंगा गोविन्द सिंह कलकत्ते की कौंसिल के दीवान हुए। ये ही दो व्यक्ति हेस्टिंग्स के विशेष प्रियपात्र थे। किन्तु पाँच साला बन्दोबस्त की मियाद खतम हो जाने पर नये बन्दोबस्त का समय आया। प्रोविन्शियल कौंसिल के संस्थापित करने के समय ज़मीन के बन्दोबस्त करने का अधिकार भी उन्हीं के हाथ में रहेगा, ऐसा निर्द्धारित हुआ था। किन्तु उनके हाथ में ज़मीन का बन्दोबस्त रहने से गवर्नर साहब को कोई लाभ नहीं था। इसलिये इस समय प्रोविन्शियल कौंसिल को उठा देने के लिये हेस्टिंग्स बार २ बोर्ड आफ डाइरेक्टर को लिखने लगे। किन्तु बोर्ड आफ डाइरेक्टर ने इनकी एक न सुनी। *

प्रोविन्शियल कमेटी के उठा देने का एक और भी विशेष कारण था। सितावराय के पुत्र कल्याणसिंह ने पटना प्रान्त की बहुत सी ज़मीनों को एक आदमी के साथ बन्दोबस्त करने के लिये गवर्नमेण्ट को लिखा। इधर कल्याणसिंह के कर्मचारी बाबू खेलाराम ने कलकत्ते में आकर दीवान गंगा गोविन्द सिंह के द्वारा हेस्टिंग्स को चार लाख रुपये घूस देने का प्रस्ताव किया। किन्तु पटने की कौंसिल ने लिख भेजा था कि कल्याणसिंह ने जो मालगुजारी देना स्वीकार किया है, उससे अधिक दाम पर ज़मीन बन्दोबस्त हो सकती है। इससे

* परिशिष्ट नं० ४ देखो।

हेस्टिंग्स साहब बड़ी विपत्ति में पड़ गये। कल्याणसिंह के साथ बन्दोबस्त न करने से चार लाख रुपये योंही चले जाँयगे।

हेस्टिंग्स के विपक्षियों में दो व्यक्ति के मर जाने पर भी फ्रान्सिस फिलिप एवं ड्डइलार साहब सदा हेस्टिंग्स साहब के कामों का प्रतिवाद करके कौंसिल के कार्य विवरण में समय समय पर जो मन्तव्य लिख डालते थे, उसे देख कर डाइरेक्टर सहज ही इनकी असदूभिसन्धि को जान जाते थे।

किन्तु दुश्चरित्र लोग प्रायः निर्लज्ज होते हैं। कौंसिल के दूसरे मेम्बर हेस्टिंग्स को स्पष्ट शब्दों में कितनी ही बार रिश्वत लेने वाला कह कर अपमानित भी किया करते थे *। किन्तु इतने पर भी हेस्टिंग्स को ज़रा भी लज्जा न लगती थी। पाँच साला बन्दोबस्त की मियाद ख़तम होते ही ये प्रांतिक कौंसिलों को उठा देने की चेष्टा करने लगे। किन्तु किस कुशलता से इन कौंसिलों का उठा दिया जाय, इसका वे कुछ निश्चय नहीं कर सके। अन्त में अपने प्रियपात्र गंगा गोविन्दसिंह के साथ परामर्श करके १७७६ ई० में पुनः मुफ़-स्सल जाँच के लिये एण्डोरसन साहब एवं बोगेल साहब को नियुक्त किया। हेस्टिंग्स ने सोचा कि इनकी जाँच को देख कर के प्रान्तिक कौंसिलों को उठा देने की चेष्टा करूँगा।

हेस्टिंग्स के विपक्षी उसे रिश्वत लेने वाला एवं पक्षपात करने वाला कह कर घृणा करते थे। इनके ऐसा कहने के बहुत से कारण थे। सन् १७७२ ई० के रेगुलेशन द्वारा यह नियम हो गया था कि अंगरेज़ कलक्टर तथा उनके अधीनस्त कोई कर्मचारी इजारा नहीं ले सकेंगे। किन्तु हेस्टिंग्स के गुमाश्ते, कान्त पोद्दार ने २६ परगने इजारे पर ले लिये थे। इन सब

* परिशिष्ट नं० ५ देखो।

परगनों से, पहले के ज़मीन्दारों को पैतृक ज़मीन्दारी से रहित कर दिया गया। मुंगेर के कलक्टर वेटमैन साहब ने मुंगेर एवं खड़गपुर परगने की ज़मीन्दारी अपने नाम पर इजारे पर ले ली थी। थेकरे साहब ने श्रीहट्ट की जमीन्दारी एक कल्पित नाम से इजारे पर ले ली थी। थेकरे साहब के इस घृणित कार्य में कौंसिल के सर्वोच्च मेम्बर वारवेल साहब तक का हाथ था।

थेकरे के कुकृत्य को गुप्त रखने के लिये गवर्नर जनरल ने एवं वारवेल ने कितनी चेष्टायें की थीं, यह कोर्ट आफ डाइरेक्टर के पत्रों से साफ प्रकट होता है। बर्दवान की रानी एवं राजसाही की रानी भवानी के प्रति हेस्टिंग्स एवं वारवेल साहब ने अत्यन्त अनुचित व्यवहार किये थे।* वारवेल साहब ने अपने दोषों पर परदा डालने के लिये बर्दवान की रानी के नाम पर विलायत में नाना प्रकार के मिथ्यापवाद लगाने तक की चेष्टा की थी। नितान्त कापुरुष की तरह इन्होंने बर्दवान की महारानी को जघन्य वेश्या कह कर के अभिहित किया था; परम धार्मिक राजा रामकृष्ण को मिथ्यावादी तक कहा था।†

वस्तुतः ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भ ही से सर्वदा इस देश के अच्छे लोग, बुरे लोग कहे जाते हैं एवं देवीसिंह के समान दुश्चरित्र लोग ही सरकार में विशेष प्रतिपत्ति प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

हेस्टिंग्स की कौंसिल के सर्वोच्च मेम्बर फिलिफ फ्रान्सिस ने देश के पुरातन जमीन्दारों के साथ भूमि का स्थायी बन्दोबस्त करने के लिये बारम्बार अनुरोध किया, किन्तु उस समय हेस्टिंग्स ने इनकी बातों पर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया। किन्तु

---

* देखो परिशिष्ट नम्बर ६।   † देखो परिशिष्ट नम्बर ७।

कालक्रम से फ्रान्सिस के मतानुसार ही भावी गवर्नर जनरल लार्ड कार्नवालिस को काम करना ही पड़ा। इस घटना के बारह चौदह वर्ष के बाद सन् १७९३ ई० में लार्ड कार्नवालिस ने ज़मीन्दारों के साथ ज़मीन का चिरस्थायी बन्दोबस्त कर दिया। ज़मीन के चिरस्थायी बन्दोबस्त ही से अंगरेज़ों का राज्य दृढ़ हुआ। इसी समय से लोगों का अंगरेज़ों पर विश्वास जमने लगा।

चौथा अध्याय

श्वसुर व पुत्रबधू

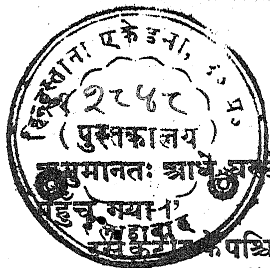
माघ का महीना है। प्राणनगर के रास्ते के बगल के खेतों से होकर तीन किसान अपने अपने सिर पर एक एक बोझ लेकर घर की ओर जा रहे हैं। रास्ते के दोनों बग़ल में सुविस्तृत मैदान पड़ा हुआ है। किन्तु खेत की अधिकांश ज़मीन ३ वर्ष से आबाद नहीं होती है। जगह जगह पर केवल दो एक खण्ड ज़मीन में धान के पौदे दिखाई पड़ते हैं। चार वर्ष पहले इन खेतों से होकर असंख्य कृषक, दल बाँध कर गाते हुए अपने अपने घरों को लौटते थे। किन्तु प्राणनगर इस समय प्रायः जन शून्य हो रहा है। रास्ते के पश्चिम प्रान्त में दो एक किसानों की टूटी फूटी झोंपड़ी दिखाई पड़ती है। आज केवल तीन किसान इन्हीं झोंपड़ियों की ओर जा रहे हैं। वे चुपचाप चले जा रहे हैं। सब के मुँह विषाद से पूर्ण हैं। जिस प्रकार धीरे धीरे जा रहे हैं, उससे ज्ञात होता है कि इनके शरीर में किञ्चित् मात्र भी बल नहीं है। अन्न के बिना शरीर जीर्ण शीर्ण हो गया है।

ये किसान जिस रास्ते को पार कर के अपने अपने घरों को जाते थे, वह रास्ता दिनाजपुर शहर से बराबर प्राणनगर के जंगल में होते हुए ठाकुर गाँव तक चला गया है। इसमें कई किसानों का घर प्राणनगर के उत्तर में है। किसान रास्ते के पूर्व के खेतों से आकर पश्चिम के खेता से होते हुए घर जाते हैं। तीनों किसानों में एक अत्यन्त वृद्ध है, जो दो अन्य व्यक्तियों से पीछे रह गया है। दो व्यक्ति जो आगे जा रहे हैं, वे रास्ते को पार कर के पश्चिम वाले खेतों में प्रवेश कर रहे हैं। वृद्ध कृषक रास्ते पर पहुँचते ही देखता है कि एक वृद्ध वैष्णव बड़ी तेजी के साथ भिक्षा की झोली को कन्धे पर रख कर दक्षिण दिशा से उत्तर दिशा की ओर जा रहा है। वैष्णव को देखते ही वृद्ध कृषक बोल उठा,—"गोसाईं महाराज! शीघ्र अपनी कुटी को चले जाइये, आज कम्पनी के पाँच बरकन्दाज़ों को उत्तर तरफ़ जाते हुए देखा है।"

वृद्ध त्रस्त होकर बोला,—"रास्ते में और एक आदमी ने भी मुझ से यही बात कही है, इसी से लपके हुए जा रहा हूँ। बरकन्दाज़ों को किस रास्ते से जाते देखा है?"

कृषक—"सीधे रास्ते से गये हैं। आप इन खेतों से होकर चले जाइये, तभी उनसे पहले घर पर पहुँच सकेंगे। इधर जो अभी आये हैं, वे आप की तलाश में ही आये हैं।"

वृद्ध वैष्णव अब मुहुर्त मात्र भी विलम्ब न कर के द्रुत वेग से आगे बढ़ने लगा। चारों तरफ़ अन्धकार छाने लगा किन्तु वृद्ध तब भी क्षिप्त की तरह चारों तरफ़ आँख फाड़ फाड़ कर ताकता जाता था। "हा परमेश्वर! पुत्र गया, प्राण गया, धन गया, तब भी पापी प्राण नहीं जाता," यह कहते हुए



अनुमानतः आधे घण्टे के उपरान्त एक पर्णकुटि के द्वार पर पहुँच गया।'

इस कुटीर के पश्चिम की तरफ़ दो और कुटियाएँ थीं। इन तीन कुटियों के चारों तरफ़ जंगल था। कुटीर में प्रवेश करने के लिये जंगल से होकर आना पड़ता था, किन्तु कुटीर जंगल के बाहर से दिखाई नहीं पड़ते थे।

कुटीर के द्वार पर पहुँचते ही वृद्ध ने भय के साथ बेटी 'बेटी' कह कर पुकारा। फौरन एक रमणी भीतर से आकर द्वार पर खड़ी हो गई। मालूम पड़ता था कि रमणी ने दो तीन मास पहले मुण्डन कराया था, इसी से उसके बाल अन्य स्त्रियों की तरह बड़े बड़े न होकर बालकों की भाँति छोटे छोटे हैं। पुरुष का पहिनावा पहनने पर वह १४ वर्ष के बालक के समान जान पड़ती थी। इसका शरीर कृश था, मुख पर बालिका की तरह सरलता टपकती थी। एक बार ज़रा ध्यानपूर्वक देखने से ज्ञात होता था कि अपने शारीरिक सौन्दर्य्य राशि को गुप्त रखने के लिये यह सर्वदा चेष्टा किया करती है। किन्तु इस चेष्टा द्वारा इसका सौन्दर्य्य सौ गुणा बढ़ गया है। इसकी सुदीर्घ नाक, विशाल आँखें एवं चित्रांकित दोनों भौंहों से परिशोभित मुखमण्डल से एक अपूर्व लावण्य टपकता था। यदि सौन्दर्य का मूल केवल अंग सौष्ठव होता है तो विषाद्, दारिद्र्य, रोग, एवं वार्द्धक्य से वह सौन्दर्य विनष्ट हो जाता है, किन्तु जो सौन्दर्य आभ्यंतरिक सौन्दर्य की छाया मात्र होता है, वह कारण विशेष से विकृति को प्राप्त नहीं हो जाता। इस रमणी का सौन्दर्य्य इसके हृदयस्थ सद्भावों का परिणाम है; इसलिये वह चिरस्थायी सौन्दर्य है।

इस परम सुन्दरी रमणी की अवस्था २५ वर्ष से कुछ

अधिक हो गई है, किन्तु वह देखने पर बालिका सी जान पड़ती थी। रमणी के द्वार पर आते ही, वृद्ध बोल उठा।

"बेटी, सर्वनाश हो गया। दुरात्मा देवीसिंह ने मालूम होता है—पुनः हम लोगों के अनुसन्धान के लिये आदमियों को नियुक्त किया है। आज भीख माँग कर लौटा आ रहा था तो रास्ते में सुना कि इधर को चार पाँच बरकन्दाज आ रहे हैं।"

"इसके लिये आप इतने भयभीत क्यों हो गये हैं? हम लोगों का तो सर्वस्व हरण कर लिया। अब वे हमारा क्या कर लेंगे?"

"पकड़ कर कैद कर लेंगे।"

"कैद करलें, कारागारही में रहेंगे। सुख, सम्पत्ति, सम्मान सभी चला गया। इस समय केवल धर्म को रक्षा करनी होगी।"

"बेटी! देवीसिंह कैसा नर-पिशाच है, तुम जानती नहीं। उसके हाथ में पड़ने से क्या किसी युवती की धर्म-रक्षा की संभावना रह सकती है? मुझ को कैद करके रखना चाहता है, इसका मुझे कुछ भी भय नहीं है; किन्तु यदि तुम को पकड़ करके ले जायगा, तो मेरा लोक, परलोक दोनों नष्ट हो जायगा। इसी से मैं यह अच्छा समझता हूँ कि मैं अपने को पकड़वा दूँ, और तुम रूपा, जगा एवं बुड्ढी दासी को साथ लेकर जहाँ तक जल्द हो सके, जंगल में भाग जाओ।"

वृद्ध की बात सुनकर युवती ज़ोर ज़ोर से रोने लगी। रोती हुई वृद्ध के पैरों को पकड़ कर बोली—

"मैं आप को छोड़ कर कहीं नहीं जाऊँगी। आप को जहाँ पर कैद रखेंगे, मैं भी वहाँ पर कैद रहूँगी। ऐसा होने पर अन्ततः आप के पास रह सकूँगी। आप जिस समय अत्यन्त तृषार्त होंगे, उस समय एक बिन्दु जल देकर के मैं कारागार

में रहने पर भी अपने को सुखी समझूँगी। किसके लिये यह पापी जीवन धारण करूँ? विधवा का जीवन विड़म्बना मात्र है। किन्तु इस विपत्ति के बीच, जिस समय भूख लगने पर थोड़ा सा अन्न राँध कर देती हूँ, प्यास लगने पर चुल्लू भर जल देती हूँ, आप थके मांदे घर लौटते हैं, उस समय आप के पास बैठ कर जिस समय हवा करती हूँ, उस समय मुझे बड़ा ही सन्तोष होता है। इन बारह वर्षों से लगातार मैं आपके पास रहती आई हूँ, इस समय आपको छोड़ कर दूसरी जगह में एक मुहूर्त भी नहीं ठहर सकती। आप को मैं अब ससुर नहीं समझती। माता के निकट जिस प्रकार कन्या अपने मनोगत सब भावों को व्यक्त करती है, उसी प्रकार मैं अपने मन की सब बातों को कहती हूँ। आप मेरे ससुर नहीं है, पिता भी नहीं हैं, आप मेरी मां हैं।"

"बेटी, तुम कैदखाने में जाओगी, क्या यह मुझसे कभी देखा जायगा ? तुम्हारा यह अपमान पुत्रशोक से अधिक मेरे हृदय में ज्वाला पैदा करेगा। तुम इसी क्षण वृद्धा को साथ लेकर भाग जाओ।"

"अब इस समय मेरे मानापमान का क्या भय ? इस समय मुझे लोक लज्जा का भय ही क्या रहा ? हम लोगों का मान, मर्य्यादा, सम्पत्ति सर्वस्व सभी तो चला गया। इस समय कोई भय है तो केवल धर्म का ! जिस प्रकार धर्म की रक्षा होगी, उसी के लिये चेष्टा करूँगी। यदि ईश्वर की आखों में हम लोग निर्दोष होंगे, तो उसकी भी रक्षा होगी। हम लोगों की जैसी अवस्था है, ऐसी हालत में लोक लज्जा के भय को मन में स्थान देने का यह समय ही नहीं है। आप के आज पकड़े जाने पर मैं भी कैदखाने में साथ साथ चलूँगी।

"बेटी, यदि मेरे साथ तुमको भी पकड़ ले चलेंगे, तो तुम्हें

मेरे पास रहने नहीं देंगे। यदि तुम को कद करके रखेंगे तो दूसरी जगह रखेंगे। किन्तु तुम को पकड़ लेने पर देवीसिंह अवश्य ही तुम्हें किसी अंगरेज़ के पास भेजेगा। देवीसिंह बहुत से कामासक्त अंगरेज़ों की कृपा प्राप्त करने के लिये भद्रकुल की महिलाओं को पकड़कर उनके पास भेज देता है। अब एक महूर्त की भी देरी न करके रूपा, जगा एवं वृद्ध दासी को साथ में ले इस स्थान से भाग करके काशीधाम चली जाओ।"

युवती ने समझा कि वृद्ध के साथ चली जाने पर भी उस के पास नहीं रह सकूँगी। तब निराश हो, मुख नीचा करके आँखों से आँसू बरसाने लगी। कुछ समय के बाद वाष्पावरुद्ध कण्ठ से बोली—

"साथ ही मर जाना उचित था। आप के पुत्र की सभी बातें इस समय ठीक हो रही हैं। आपने उस समय कुछ नहीं विचार किया था, मैं तो गंवार स्त्री ही ठहरी। मैं तो उन बातों को कुछ समझती ही नहीं थी, इस समय भी कुछ नहीं समझती।"

"बेटी, पुत्र की उन बातों को जब स्मरण करता हूँ तो ज्ञात होता है कि स्वयं भगवान् किम्बा अन्य कोई महापुरुष आ कर के मेरे घर में जन्मे थे। नहीं तो, भविष्य में क्या होगा, इसे वह कैसे जान सकता? बेटा जो जो बातें कह गया है, वे सभी बातें घटित हो रही हैं। मैं उसके कहने के मुताबिक नहीं चलता था, इसी से, ज्ञात होता है, वह हम लोगों को छोड़ कर चला गया! तुम्हारी सास परम साध्वी थी। मालूम होता है उन्हीं के पुण्य फल से स्वयं भगवान ने जन्म ग्रहण किया था। बेटा मुझे बारबार कहता था, आपके भाग्य में बहुत कष्ट हैं, आपका सदाव्रत, आप की अतिथिशाला, आपका दान-धर्म,

इस विनाशपथ से आप को कभी भी रक्षा न कर सकेगा। हाय! हाय! बेटे की कही हुई सभी बातें सच निकलीं।"

"आपको छोड़कर हम लोगों को काशीधाम जाने को आवश्यकता नहीं। हम लोग जङ्गल ही में कई दिन तक रहेंगे। यदि चार पाँच दिन में वे आपको छोड़ देंगे, तो आपके यहाँ आ जाने पर सब कोई साथ ही काशीधाम चलेंगे। और यदि यह सुनेंगे कि आप भी इस लोक को छोड़ कर चल बसे, तो स्वामी का कुशा-पुत्तल बना कर उसके साथ निश्चय ही चितारोहण कर जाऊँगी। साथ मरने के अतिरिक्त मेरे लिये अन्य मार्ग नहीं है।"

"बेटी! मैं अब तुझे एक मुहुर्त के लिये भी दीनाजपुर की सीमाके भीतर नहीं रहनेदे सकता। क्या देवीसिंह नहीं जानता कि मेरे पास अब धन सम्पत्ति नहीं? उसने तो सर्वस्व हरण कर ही लिया है। तब इस समय मुझे किस लिये पकड़ रहा है, क्या तुम इसे नहीं समझती? हा परमेश्वर! पूर्व जन्म में कितने पाप किये थे। क्या मनुष्य से इतना सहन हो सकता है?"

"अब किस लिये पकड़ना चाहता है?"

वृद्ध बोला—"किसी दुष्ट से—ज्ञात होता है—उसने सुना है कि तुम परम सुन्दरी हो। इसी से तुम्हें पकड़ने के लिये वह इतना जाल फैला रहा है। मैंने सुना है कि मुर्शिदाबाद के किसी भट्टाचार्य की विधवा स्त्री को पकड़ कर देवीसिंह ने गंगा गोविन्दसिंह को देना स्वीकार किया था। किन्तु उस ब्राह्मण कन्या ने देवीसिंह के घर से भागकर अपने धर्म की रक्षा की। इस समय तुम्हें उसी ब्राह्मण कन्या के बदले गंगा गोविन्दसिंह के पास भेजेगा। तुम यहाँ पर एक मुहूर्त के लिये भी न ठहरो। अभी चली जाओ।"

बहू—(क्रोध पूर्वक) "देवीसिंह अथवा गंगा गोविन्दसिंह किसी में ऐसी सामर्थ्य नहीं, जो मेरे धर्म को नष्ट कर सके। आपके पुत्र मुझ से बराबर कहा करते थे कि यदि स्त्री स्वेच्छा से अपने धर्म का परित्याग न करे, तो जगत में कोई ऐसा पुरुष नहीं, जो उसके धर्म को नष्ट कर सके। मैं उस समय इस बात पर विश्वास नहीं करती थी। उनके साथ मैं कितना तर्क किया करती थी। श्वे साहब के आदमियों के साथ विवाद करने से भी मना करती थी। उस समय वे विरक्त होकर और कुछ नहीं बोलते थे। किन्तु इस समय समझती हूँ कि उस समय जो जो बातें वे कहते थे सभी सत्य थीं। गत १२ वर्षों से नाना प्रकार की विपत्तियों का सामना करते २ मैंने स्वयं देख लिया कि स्त्री जाति के धर्म की रक्षा का भार स्वयं भगवान् अपने हाथ में रखते हैं। केवल ईश्वर ही दुर्बलों के बल हैं, इसमें अणु-मात्र भी सन्देह नहीं। स्वेच्छा से धर्म न त्यागने पर किसमें इतनी सामर्थ्य है जो मेरे धर्म को नष्ट कर सके? किन्तु मेरे लिये विशेष दुःख की बात तो यह हो रही है कि आपको पकड़ने पर न जाने आपको कितना मारेंगे।"

रमणी के इतना कहते कहते शोकावेग से उसका गला रुन्ध गया। वह मूर्च्छित होकर ज़मीन पर गिर पड़ी। वृद्ध ब्राह्मण ने उसे पकड़ कर अपनी गोदी में उठा लिया। कुछ समय के उपरान्त युवती सचेत होने पर फिर बोलने लगी।

"हा परमेश्वर! इस हतभागिनी के लिये इस परम धर्मात्मा वृद्ध को इतनी लाञ्छना सहनी पड़ेगी! इस अभागिनी को इतना रूप एवं सौंदर्य क्यों प्रदान किया? जिसके लिये नारी जाति का रूप—जिसके लिये सौंदर्य्य—वह तो हम को छोड़ कर चले गये, अब इस रूप और सौंदर्य्य से प्रयोजन क्या रहा? इसी

घड़ी मैं अपना नाक कान काट डालूँगी। शरीर को क्षत विक्षत कर लूँगी।"

ऐसा कह करके वह रमणी अपने मस्तक के बालों को छिन्न करने लगी, ज़ोर २ से अपने ललाट को हाथों से पीटने लगी।

वृद्ध स्नेहपूर्वक उसके हाथों को पकड़े रहा। 'आत्म-घातिनी बनने का प्रयोजन नहीं', 'आत्म-घातिनी बनने का प्रयोजन नहीं' ऐसा कह कर उसे सान्त्वना देने लगा।

रमणी कुछ शान्त होकर फिर पूर्ववत् कहने लगी—

"हा परमेश्वर! मैं साथ ही क्यों न मर गई? उसी समय मर जाने से सब यन्त्रणाओं–सब कष्टों–से छुटकारा पा जाती।"

फिर ससुर की ओर देखकर बोली,—"वह भी तो आप ही का दोष था। आप के पुत्र ने जो २ बातें कही थीं, उसमें से एक बात भी मिथ्या नहीं हुई। हा परमेश्वर! मैंने देवता पति पाया था। किन्तु उस समय उसे पहचान नहीं सकी। वे सदा सावधान करते थे कि 'कर्म्म फल को कोई मेट नहीं सकता। कर्म्म फल सभी को भोगना पड़ेगा।' आपने उस समय मुझे मरने नहीं दिया था। इस समय उसी कर्म का फल आपको भोगना पड़ेगा।"

वृद्ध—"बेटी! ये सब यन्त्रणायें, हमारे ही कर्मों का फल है, इसमें संदेह नहीं। किन्तु उस समय मैं किस के मृत शरीर के साथ चितारोहण करने के लिये तुमसे कहता? दुरात्मा देवीसिंह के आदमियों के प्रहार से रोज़ ही बीस तीस आद-मियों की मृत्यु होती थी, वे काँटेदार बेल की डालियों से मार मार सबों के प्राण संहार कर डालते थे। जिन लोगों के मुँह पर चोटें लगती थीं, उनके मृतक शरीर को पहचानना असंभव

होता था। क्योंकि उनकी मुखाकृति विकृत हो जाती थी। मैं अपने बच्चे की मृत देह को सैकड़ों चेष्टायें करने पर भी पहचान नहीं सका। दामाद की मृत-देह देख कर पहचान लिया; इस लिये जब प्राणों से प्यारी, स्वर्ण प्रतिमा प्रभावती ने साथ में जल मरने के लिये इच्छा प्रकट की तो मैंने सहर्ष अनुमति दे दी। यदि बच्चे की मृत देह बाहर निकाल सकता तो तुम्हें भी प्रसन्नता पूर्वक स्वामी के साथ स्वर्गारोहण करने की अनुमति दे देता। क्या ऐसी यन्त्रणा को भोगने के लिये तुम्हें इस संसार में कभी रखता? तुमको देख कर पुत्र शोक से मेरी छाती फटने लगती है, पुत्रशोकानल सौगुणा ज्वलित हो उठता है। बेटी! पुत्रशोक कैसा होता है, इसे तू किस प्रकार जान सकती है? तुझे तो कभी सन्तान हुई ही नहीं? पुत्रशोकानल बुझता नहीं। ज्ञात होता है कि यह शोकानल चितानल के साथ मिल कर जिस समय इस शरीर को जलायगा, उसी समय इस शोक को भूल सकूँगा।"

युवती—"यदि मुझे साथ ले करके उनके मृत देह का अनुसन्धान किया होता, तो मैं निश्चय पूर्वक उनके शरीर को खोज कर बाहर निकाल लेती। उनका एक हाथ मात्र देख कर मैं जान लेती कि यह हाथ उनका है। उनके शिर का एक केश तक सैकड़ों पुरुषों के केशों से पहचान कर अलग निकाल लेती। उनके हाथ की एक अँगुली देख कर मैं जान जाती कि यही उनकी अँगुली है।"

वृद्ध—"यह असंभव बात है। सब लोगों की अँगुलियाँ प्रायः एक प्रकार की होती हैं। मुखाकृति देखे बिना मनुष्य को किस प्रकार पहचाना जा सकता है?"

युवती—"मैं निश्चय पूर्वक कहती हूँ कि उनके हाथ की

एक अँगुली मात्र देखकर बतला देती कि यह अँगुली किस की है। केवल मैं ही क्यों? जहाँ तक मेरा अनुमान है, प्रत्येक पतिप्राण स्त्री स्वामी के एक गुच्छ केश को अन्य पुरुषों के शिर के केशों से पहचान कर अलग कर सकती है।"

वृद्ध—"बेटी, तब क्या पितृ-स्नेह की अपेक्षा पत्नी-प्रेम की दृष्टि सूक्ष्म होती है? क्या मातृ-पितृ प्रेम, पत्नी-प्रेम के निकट परास्त है?"

युवती—"मातृ-पितृ प्रेम की अपेक्षा साध्वी का प्रेम अधिक होता है या नहीं, सो तो मैं नहीं जानती। किन्तु आप के पुत्र ने एक दिन कहा था कि साध्वी का निःस्वार्थ प्रेम दो स्वतंत्र आत्माओं का सम्मिलन मात्र है। इसलिये पुण्यवती माता के निःस्वार्थ प्रेम की नाईं, साध्वी का प्रेम किसी अवस्था में भी रूपान्तरित नहीं होता। वे सर्वदा कहते थे कि मातृप्रेम एवं पत्नी-स्नेह ही में ईश्वर के अस्तित्व का बोध होता है।"

वृद्ध—"बेटा क्या तुम्हारे सामने ये बातें कहता था? हा! मेरा बेटा सदा शास्त्रालाप एवं धर्म की आलोचना किया करता था। इतनी ही अवस्था में कितने शास्त्रों का अध्ययन कर लिया था!"

युवती—"वे सदा मेरे सामने शास्त्रों की चर्चा किया करते थे। किंतु मैं उनकी एक बात भी नहीं समझती थी। और न मन लगाकर सुनती ही थी। कभी कभी तो न समझने पर तर्क वितर्क किया करती थी। इसके कारण मेरे विषय में उनकी धारणा अच्छी नहीं होती थी। किन्तु इसके कारण मुझे वे कभी कष्ट नहीं देते थे, कभी एक कड़ी ज़बान तक न कही थी।"

वृद्ध—"मेरे बच्चे ने कभी भी किसी को कष्ट नहीं दिया

था। दूसरे का कष्ट, विपत्ति देख कर उसकी आँखों से आंसुओं की धारा बह चलती थी। हा परमेश्वर! क्या ऐसे सुपुत्र का शोक भी कोई सह सकता है! मैं स्वयं क्यों न मर गया? जिस समय देवीसिंह के आदमी मुझे पकड़ने के लिये आये उस समय मैं भाग गया। बेटा स्वयं हाज़िर होकर बोला, मेरे वृद्ध पिता को पकड़ने की चेष्टा करने पर जान से हाथ धोना पड़ेगा, मेरा नाम प्रेमानन्द गोस्वामी है, मैं स्वयं हाज़िर होता हूँ।"

अहा, मेरा बेटा कितना साहसी था! यदि उस समय मैं हाजिर हो गया होता तो मेरे पुत्र की जान न जाती। बेटी! आज मैं अपने पुत्र की ही तरह काम करूँगा। मैं अपने आप को पकड़वा दूँगा। तुम जल्दी से भाग जाओ।

श्वसुर की बात सुनकर रमणी कुछ समय तक तो चुपचाप रही। बाद में बहुत कुछ सोच विचार कर भागना ही स्थिर किया। जिस कुटीर में बैठ कर श्वसुर एवं पुत्र-वधू बातचीत कर रहे थे, उसके पास ही पश्चिम की तरफ दो और कुटीर थे। उनमें से एक कुटीर में एक वृद्धा दासी रहती थी, दूसरी में अन्य दो मनुष्य। वृद्धा को सभी लोग "स्वरूप की माँ" कह कर पुकारते थे। उन मनुष्यों में एक का नाम जगा, दूसरे का नाम रूपा था। जगा एवं रूपा भोजन बनाने के लिये लकड़ी लाने के लिये गये थे। वृद्धा घर के अन्य कार्यों में व्यस्त थी। वृद्ध वैष्णव के बुलाते ही वह आकर खड़ी हो गई। तब वृद्ध ब्राह्मण ने इसे सारा हाल कह सुनाया। वृद्ध की बातों के खतम हो जाने पर स्वरूप की मां ने युवती, जगा, एवं रूपा को साथ लेकर जंगल में प्रवेश किया। इधर वृद्ध ब्राह्मण कुटीर से बाहर होकर धीरे धीरे प्राणनगर के रास्ते पर आ पहुँचा। रास्ते पर

पहुँचकर वह उच्च स्वर से हरिसंकीर्तन गाने लगा। इसके हरि-संकीर्तन के शब्द को सुनते ही चार पांच आदमी "आज इसे साले को पा लिया—साला इस जंगल के बीच किसी स्थान में था" ऐसा कहते हुए बड़े उल्लास के साथ दौड़े और उन्होंने वृद्ध को घर लिया एवं "किधर धन छिपा कर रखा है, दिखा दो" ऐसा कह कर धमकाने लगे।

पाँचवाँ अध्याय

रामानन्द गोस्वामी

पूर्व अध्याय में लिखित वृद्ध ब्राह्मण का नाम रामानन्द गोस्वामी है और जिस स्त्री के साथ वे बातचीत करते थे, उसका नाम सत्यवती है। सत्यवती देवी रामानन्द की पुत्रवधू है। मालदा ज़िले के अन्तर्गत गौड़ नगर में रामानन्द गोस्वामी का पैतृक निवासस्थान था। मालदा, दिनाजपुर, रंगपुर, पुर्णिया इन चारों ज़िलों के अधिकांश ज़मीन्दार एवं समृद्धिशाली व्यक्ति इनके शिष्य थे। इन चार ज़िलों में रामानन्द की बहुत सी ब्रह्मोत्तर ज़मीन थी। इन कुल ब्रह्मोत्तर ज़मीनों को वार्षिक आय पचास हज़ार रुपये से कम नहीं थी। रङ्गपुर, दिनाजपुर एवं पुर्णिया आदि के ज़मीन्दार एवं धनी-मानी लोग रामानन्द गोस्वामी का बड़ा सम्मान करते थे। बहुत से ज़मीन्दार एवं धनी विवाह तथा श्राद्ध इत्यादि के उपलक्ष में रामानन्द गोस्वामी को अपने घर लाने के लिये दस बारह हाथी, आठ नौ घोड़े, एवं बीस पचीस नौकर इनके घर भेजते थे। किन्तु रामानन्द गोस्वामी को इतना अवकाश नहीं मिलता था कि सब के निमन्त्रण पर उपस्थित हो सकें। उनके बहुसंख्यक शिष्य थे।

प्रत्येक वर्ष एक एक बार भी कुल शिष्यों के घर पहुँचने में समर्थ न होते थे।

रामानन्द गोस्वामी क्या स्वदेश में, क्या विदेश में, सर्वत्र एक परम धार्मिक पुरुष समझे जाते थे। इनके मकान में एक बड़ी अतिथिशाला थी। इनकी उदारता एवं दानशीलता से मालदा में कोई कभी अन्न-कष्ट नहीं पाता था। देश में किसी दुखी-दरिद्र को अन्न-कष्ट होने पर, परमवैष्णव रामानन्द गोस्वामी, उसके भरण-पोषण का भार स्वयं ग्रहण करते थे।

रामानन्द की स्त्री सुनीतिदेवी अत्यन्त सदाचारिणी थीं। ये अच्छी संतान के लिये सदा व्रत एवं सदनुष्ठान किया करती थीं। भद्रासन से एक कोस के बीच में किसी के भूखे रहने पर उसे अन्न दिये बिना सुनीति देवी स्वयं जल तक ग्रहण नहीं करती थीं। भद्रासन से एक कोस की दूरी में कोई दीन-दुखी अन्नाभाव से बिना खाये तो नहीं रह गया, इसके अनुसंधान के लिये प्रतिदिन दो पहर दिन चढ़े तक दस बारह दास-दासी चारों तरफ भेजे जाते। विशेष अनुसन्धान के बाद जब वे सब दास-दासी वापस लौट कर कहते कि उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम एक कोस के मध्य में कोई भूखा आदमी नहीं है, तथा जो बिना खाये पीये थे, उन्हें अन्न बाँट दिया गया है; तब सुनीतिदेवी अपने हाथों से हविष्यान्न रन्धन करके स्वामी को आहार करातीं। बाद में स्वामी के बचे हुए जूठन को स्वयं खातीं। परमवैष्णव रामानन्द गोस्वामी मांस नहीं खाते थे। अस्तु, सुनीतिदेवी पातिव्रत धर्म के कारण आहार के सम्बन्ध में भी पति का अनुसरण करती थीं।

रामानन्द गोस्वामी को दो सन्तानें हुईं। एक पुत्र और एक कन्या। पुत्र का नाम प्रेमानन्द गोस्वामी और कन्या का नाम

प्रभावतीदेवी था। रामानन्द गोस्वामी ने स्वयं बहुत शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया था, किन्तु इनके पुत्र प्रेमानन्द गोस्वामी ने २० वर्ष की अवस्था तक पहुँचते पहुँचते साहित्य, न्याय, दर्शन प्रभृति सभी शास्त्रों में विशेष पारदर्शिता प्राप्त कर ली। श्रीमद्भागवत के पहले पृष्ठ से लेकर अन्तिम पृष्ठ तक के सभी श्लोक उनको कण्ठस्थ थे।

किन्तु चिर-काल तक किसी की भी चैन से नहीं कटती। विपत्ति के बादल अदृश्य रूप में सब के मस्तक पर मँड़राते रहते हैं। वे कब किसके सिर पर गिरेंगे, यह कोई कह नहीं सकता। तब लोगों के मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि मंगलमय परमेश्वर ने इस प्रकार के धार्मिक परिवार की भी विपत्ति से क्यों न रक्षा की? ऐसे धार्मिक परिवार को भी यदि घटना-स्रोत में पड़ कर विपत्ति-सागर में निमग्न होना पड़ा तो किस प्रकार से परमेश्वर को मंगलमय कहा जा सकता है? इस प्रश्न का उत्तर हम यह देते हैं कि विज्ञानचक्षु से जो मानव-जाति के इतिहास का अध्ययन करेंगे, उनके मन में ऐसे सन्देह के पैदा होने की अधिक सम्भावना नहीं होगी।

रामानन्द गोस्वामी ने बड़े समारोह से अपने पुत्र एवं कन्या की शादी की थी। किन्तु इनके पुत्र की शादी होने के दो वर्ष के बाद ही, १७६० वा १७६१ ई० में उनकी सहधर्मिणी की मृत्यु हो गई। सुनीतिदेवी के मृत्यु-काल में प्रेमानन्द की अवस्था १८ वर्ष की थी। प्रभावती की भी अवस्था १४ वर्ष से अधिक नहीं थी। प्रभावती भी अपने स्वामी के साथ पिता के घर पर ही रहने लगी। एवं माता की मृत्यु हो जाने पर घर का सारा भीतरी प्रबन्ध उसी के हाथ में आ गया।

इस सुखी परिवार की जीवन-नौका अब तक भी अनुकूल

शान्ति-वायु द्वारा परिचालित होकर आनन्द-स्रोत में बहती हुई क्रमशः अमृत-सागर की ओर जा रही थी। किन्तु एक एक मनुष्य का जीवन इस संसार के अन्य जन-साधारण की जीवन-घटनाओं के साथ इतने घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है कि दूसरे के मंगलामंगल का फल, अन्यान्य लोगों के सदसद् कार्यों के फलाफल, प्रत्येक मनुष्य के जीवन में परिवर्त्तन कर देते हैं।

रामानन्द गोस्वामी की वर्त्तमान दुरवस्था किस प्रकार समुपस्थित हुई, उसकी मीमांसा करने पर कई ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख करना उचित है।

सिराजुद्दौला के सिंहासन-च्युत होने के बाद बङ्गाल में अंगरेज़ों का प्रभुत्व अच्छी तरह से संस्थापित हुआ। रोम साम्राज्य के अन्तिम समय में जिस प्रकार प्रेटरियान गार्ड नामक सैनिकदल रोम का कर्त्ता, हर्ता एवं विधाता हो गया था, उसी प्रकार अंगरेज़ लोग भी बङ्गाल के प्रेटरियान गार्ड हो गये। रोम राज्य के अन्तिम दिनों में रोम राज्य का राजा मनोनीत करने की क्षमता भी प्रेटरियान गार्ड ने अपने हाथों में कर ली थी। बङ्गाल में भी नवाब मुकर्रर करने एवं बरखास्त करने की क्षमता अंगरेज़ों ने अपने हाथों में कर ली। मुर्शिदाबाद का कायर नवाब मीरजाफ़र अंगरेज़ों के भय से सदा शंकित रहता था। अंगरेज़ लोग भी ऐसा सुयोग देख कर देश को लूटने लगे। वाणिज्य की ओट में वे देश-वासियों पर घोर अत्याचार करने लगे।

ग्रे नामक एक जघन्य-कर्मा अंगरेज़ ईस्ट इण्डिया कम्पनी की मालदावाली कोठी का अध्यक्ष था। मालदावासी रामनाथ नामक एक दुश्चरित्र नर-पिशाच ग्रे साहब के गुमाश्ते के पद पर नियुक्त हुआ। अंगरेज़ लोग देश के किसी भी सच्चरित्र

व्यक्ति को कभी गुमाश्ते के काम पर नियुक्त नहीं करते थे। इस देश के लोगों में प्रवञ्चना, प्रतारणा, व्यभिचार, नरहत्या इत्यादि किसी प्रकार के पाप कर्मों के करने में जो जरा भी नहीं हिचपिचाते थे, सब प्रकार के कुकार्यों को जो प्रसन्न मुख से करते थे, ऐसे ही व्यक्तियों को अंगरेज़ लोग विशेष कार्यदक्ष समझते, एवं उन्हें ही वाणिज्य-कोठी के गुमाश्ते के पद पर नियुक्त करते थे।

मालदा ज़िले में रामनाथ के समान द्रव्यप्रवञ्चक एवं धूर्त लोग बहुत कम थे। इसलिये ग्रे साहब ने रामनाथ को ही अपने गुमाश्ते के पद पर नियुक्त किया।

इस समय कम्पनी की कोठियों के साहब कम्पनी के लिये विलायत में तथा चीन में भेजने के लिये बंगाल के बनियों से कोई वस्तु खरीद कर बेचने वाले को नक़द मूल्य नहीं देते थे।* कम्पनी के हिसाब में रुपये का खर्च दिखा कर, इन्हीं रुपयों से कोठियों के साहब स्वयं अपने २ व्यापार के लिये पण्य-द्रव्य† खरीदते; इन्हीं पण्य-द्रव्यों पर ड्योढ़ा दुगुना मुनाफ़ा रखकर मूल्य स्वरूप पूर्वोक्त विक्रेता को देते। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के पुराने कागजातों में इस प्रकार के व्यवहार को "गछान प्रथा" लिखा गया है। इस गछान प्रथा के निबन्धन ने बङ्गाल के सैकड़ों व्यवसायियों को बेरोजगार कर दिया था। भला इस प्रथा से वे दाने-दाने के लिये मुहताज़ क्यों कर न होते? ईस्ट इण्डिया कम्पनी को एक अंगरेज़ी कोठी के अध्यक्ष ने एक जुलाहे से एक हज़ार रुपये का वस्त्र ख़रीदा। किन्तु उसे एक पैसा भी नक़द न देकर उसी रुपये से अध्यक्ष साहब ने अपने वाणिज्य के लिये

---

* परिशिष्ट नम्बर ९ देखो। † जो बाजार में आकर बिकता हो।

हज़ार मन तमाकू खरीदी। बाद में उसी एक हज़ार मन तमाकू पर दो हज़ार मन का मूल्य रख कर जुलाहे को दिया। इसके बदले में बिचारे जुलाहे को एक हज़ार रुपये का वस्त्र एवं नक़द एक हज़ार रुपये देने पड़े और भी किसी व्यक्ति को इस प्रकार तमाकू देने पर यदि नक़द मूल्य मिलने में दो एक महीने का विलम्ब होता, तो अंगरेज़ी कोठी के गुमाश्ते शीघ्र साथ में सिपाही लेकर जाते एवं उसके घर-बार को लूट कर उसके घर की स्त्रियों का सतीत्व नष्ट करते।

नवाब के कर्मचारी, अंगरेज़ों के इन अत्याचार पूर्ण कार्रवाइयों को नहीं रोक सकते थे। उधर अंगरेज़ी कोठियों के साहब कहते कि इस प्रकार के "गछान सुप्रथा" से देशी लोगों का विशेष उपकार होने की संभावना है। इसका कारण वे यह दिखलाते कि इसके द्वारा उन्हें विविध विषय के वाणिज्य-व्यवसाय का ज्ञान प्राप्त होगा। एक जुलाहा यदि केवल कपड़े का व्यवसाय करता है तो उसे तम्बाकू देने से अनायास तम्बाकू के व्यवसाय की भी शिक्षा मिल जाती है। इस प्रकार खृष्ट-धर्मावलम्बी सर्व देश एवं सर्वजन हितैषी अंगरेज़ महात्मा गण, निःस्वार्थ प्रेम द्वारा परिचालित होकर जुलाहों को तम्बाकू का व्यवसाय सिखाते, तम्बाकू के व्यवसायिकों को नमक का व्यवसाय सिखाते और नमक के व्यापारियों को चांवल का व्यवसाय सिखाते थे। किन्तु इस शिक्षा-प्रदान के निबंधन से देश के एक एक वाणिज्य के नाश होने का उपक्रम हुआ।

इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे भी अंगरेज़ थे जो देशी लोगों से पण्य द्रव्यों को खरीद कर उसका मूल्य एक दम नहीं देते। यदि देशी बनिये उन चीज़ों को अंगरेज़ों के हाथ

बेंचने से अस्वीकार करते तथा फ्रांसिसियों वा पुर्तगीज़ों के हाथ कोई द्रव्य बेंचते तो अंगरेज़ लोग उसका समुचित दण्ड-विधान करते, उनकी स्त्रियों को बेइज़्ज़त करके उन्हें जाति से च्युत करवा देते।

मालदा के ग्रे साहब एवं उनके गुमाश्ते इसी तरह से देशी बनियों का सर्वनाश करने लगे। किन्तु मूल धन न होने पर किस प्रकार से वाणिज्य-व्यापार किया जाता है, इसकी शिक्षा का भार जानस्टन, हे एवं बोल्टसाहब ने ग्रहण किया। इन तीन महात्माओं के वाणिज्य के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापार का कुछ सम्बन्ध नहीं था। जानस्टन, हे एवं विलियम बोल्ट ने मिल कर पूर्णिया ज़िले में व्यापार करने के लिये दूकान खोली। इन लोगों के गुमाश्ता रामचरन दास देशी बनियों से प्रायः उधार दाम पर चीज़ें खरीदता। इसकी वाणिज्य-प्रणाली और भी चमत्कार-पूर्ण थी। यह किसी जुलाहे से उधार दाम पर एक हज़ार रुपये का वस्त्र खरीदता, बाद में उसी वस्त्र का मूल्य डेढ़ हजार करके किसी तम्बाकू के व्यवसायी को देता और उससे उसी क्षण डेढ़ हज़ार रुपये वसूल करता। उस डेढ़ हज़ार रुपये में से एक हज़ार रुपये मुनाफ़े के तौर पर रख कर पाँच सौ रुपये पूर्वोक्त जुलाहे को देता और फिर दो हज़ार रुपये के वस्त्र उसीसे उधार खरीद कर लाता। इस प्रकार की प्रथा से मूल धन न होने पर भी वाणिज्य चलाने में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती थी। मूल धन न होने पर भी किस प्रकार से व्यवसाय किया जाता है, जानस्टन एवं बोल्टसाहब की कृपा से पूर्णिया के अधिवासी गण भलीभांति उसकी शिक्षा पाने लगे।

इसके पहले लिखा जा चुका है कि रामानन्द गोस्वामी की

ब्रह्मोत्तर ज़मीन प्रायः पूर्णिया एवं मालदा इन्हीं दो ज़िलों में अधिक थी। रामानन्द गोस्वामी के ब्रह्मोत्तर ज़मीन के लोगों में बहुत से वाणिज्य-व्यवसायी लोग थे। रामानन्द गोस्वामी अत्यन्त प्रजा-वत्सल भूम्यधिकारी थे। अंगरेज़ सौदागरों के ऐसे अत्याचारों से अपनी प्रजा की किस प्रकार से रक्षा करें, इसी की वे चेष्टा करने लगे। इन्होंने ग्रे साहब के गुमाश्ता रामचरन दास को बहुत घूस-रिश्वत देकर के अपने अधिकार में कर लिया। वे लोग रामानन्द की प्रजा पर विशेष अत्याचार नहीं करते थे। इस प्रकार से रामानन्द गोस्वामी अपनी प्रजा की अंगरेज़ों के अत्याचारों से कुछ दिन तक रक्षा करने में समर्थ हुए। किन्तु इनके बीस पचीस प्रजा को छोड़ कर पूर्णिया एवं मालदा ज़िले के दूसरे हज़ारों लोग ग्रे साहब एवं इसके गुमाश्ता रामनाथ, तथा जान्स्टन, हे, बोल्ट एवं इनके गुमाश्ता रामचरनदास के अत्याचार से बरबाद हो गये। कितने लोग जाति-भ्रष्ट हुए, इनकी तो कोई गिनती ही नहीं।

रामानन्द गोस्वामी के पुत्र प्रेमानन्द अपने देश-वासियों को इस प्रकार के अत्याचार से पीड़ित देख कर सदा आँखों से आँसू बहाया करते। जिस प्रकार की सहृदया, सदाचारिणी, शान्ता, सुशीला माता के गर्भ से, इन्होंने जन्म-ग्रहण किया था, उससे प्रेम-नन्द का हृदय इस प्रकारके अत्याचारों को देख कर विकलित होता होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की कोठी के लोग आज किसी के घर को लूटते, कल एक ग़रीब जुलाहे की स्त्री का सतीत्व नष्ट करते; इस प्रकार के भीषण व्यापार को देख कर प्रेमानन्द ने इन अत्याचारों को रोकने के लिये दृढ़-संकल्प किया। किन्तु इनके

पिता इन्हें कोठी के लोगों से झगड़ा नहीं करने देते। रामानन्द बोलते, "बेटा! कम्पनी के आदमी हमारी प्रजा पर तो किसी प्रकार का अत्याचार नहीं करते, मैंने बहुत प्रयत्न करने के बाद ग्रे साहब और रमानाथ को अपने वश में किया है। इस समय तुम दूसरे के लिये उनसे झगड़ा करके अपने पैरों में आप कुठार मारना क्यों चाहते हो?"

पिता की इस बात को सुन कर प्रेमानन्द बोला, "इस देश-व्यापी अत्याचार के निवारण का यत्न न करने से, यह अत्याचार क्रम से दावाग्नि की तरह प्रज्वलित होकर सभी को भस्मीभूत कर देगा। आज दूसरे दस लोगों पर अत्याचार हो रहे हैं, दो दिन के बाद हमारे ऊपर भी ऐसे ही अत्याचार होने लगेंगे। विशेषतः निरपराध अत्याचार-निपीड़ित लोगों की अत्याचारियों के हाथ से रक्षा न करने पर मनुष्यों की धर्म-रक्षा न होगी।"

रामानन्द ने कहा, "हमारे ऊपर ग्रे साहब अथवा रमानाथ कभी भी अत्याचार न करेंगे। मैंने बहुत प्रयत्न करके इन्हें वश में कर लिया है। इस समय यदि दूसरे के लिये रमानाथ के साथ शत्रुता करोगे, तो वे कल ही से हमारे ऊपर भी अत्याचार करना आरम्भ कर देंगे। दूसरों के लिये तुम अपना सर्वनाश न करो। पिता की इस बात को सुन कर आँखों में आँसू भर कर के प्रेमानन्द बोला—"इस देश के प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य है कि अपने अपने प्राणों की बाज़ी लगा कर के भी इस अत्याचार को रोके। इस समय इस अत्याचार के बीज को समूल नष्ट करने की चेष्टा न करने से यह भीषण अत्याचार क्रमशः वृद्धि पाता जायगा, एवं युगान्तर में सर्वत्र व्याप्त होकर जन-साधारण को पीस डालेगा। अंगरेज़ लोग अत्यन्त अर्थ-

लोलुप हैं; देश का सारा धन ये शोषण कर लेंगे। इस लिये मैंने यह निश्चित कर रक्खा है कि यदि रमानाथ दास फिर किसी बनिये के घर को लूटने जायगा, उस समय मैं अपने कई लठैत आदमियों को साथ लेकर जाऊँगा और रमानाथ की खबर लूँगा, और निराश्रित ग़रीबों की इनके अत्याचारों से रक्षा करूँगा।"

रामानन्द अपने पुत्र की ऐसी बात को सुनते ही चौंक कर बोल उठे, "बेटा, क्या तू पागल तो नहीं हो गया है? कम्पनी बहादुर के साथ युद्ध करेगा?"

प्रेमानन्द बोला, "कम्पनी बहादुर के साथ युद्ध होने की कोई सम्भावना नहीं। ये लोग अन्याय करके लोगों के ऊपर अत्याचार कर रहे हैं। इन लोगों को कभी ऐसा आचरण करने न दूँगा।"

रामानन्द किसी प्रकार भी अपने पुत्र की बातों से सहमत न हुए। वे अत्यन्त क्रोधित होकर बोले, "बेटा, तुम्हारे द्वारा हमारी सम्पत्ति, मान-प्रतिष्ठा सभी का नाश होने वाला है, इसीसे तुम्हारे हृदय में ऐसी दुर्बुद्धि पैदा हुई है। कम्पनी बहादुर से स्वयं नवाब जाफरअली खां तक अत्यन्त भयभीत हो कर चलते हैं। फिर क्या तू उसी कम्पनी के लोगों के साथ झगड़ा करने जायगा! निश्चय ही तू पागल हो गया है। तुझे घर के भीतर बाँध रक्खूँगा।"

पिता द्वारा इस प्रकार अपमानित होकर प्रेमानन्द कुछ क्रुद्ध हो कर बोल उठा, "आप मेरे पिता हैं—मेरे लिये साक्षात् ईश्वररूप हैं—यदि आप एक बार मेरे सिर पर चरण-प्रहार करेंगे, तो मैं फिर भी आप के पैरों तले सिर नवाऊँगा। कभी भी आप को कोई कड़ी बात न कहूँगा, किन्तु मैं इस बात को निश्चय

रूप से कहता हूँ कि आपके भाग्य में बहुत कष्ट, अनेक यन्त्र-णायें लिखी हुई हैं। कम्पनी के लोगों के द्वारा निरपराध बन्धु-बान्धव-विहीना जिन रमणियों का धर्म नष्ट हो रहा है, उन्हीं रमणियों के अश्रुजल से दावाग्नि समुत्पन्न होकर इसदेश के सभी लोगों को भस्मी-भूत कर देगी। इनकी क्रन्दन-ध्वनि एवं हाहाकार शब्द इस देश के प्रत्येक व्यक्ति को सहायता करने के लिये आह्वान कर रहा है। जो कोई मनुष्य इनको सहायता पहुँचाने से विमुख होगा, उसे निश्चय पूर्वक इस देशव्यापी अत्याचार की दावाग्नि में जल कर मरना होगा। आपका सदा-व्रत, आपकी अतिथि-शाला, आपका दान धर्म कभी भी इस विनाश के पथ से—इस समाज-व्याप्त दावाग्नि से—रक्षा न करेगा। आप जिसे आत्म-रक्षा का मार्ग कहते हैं, वह वास्तव में आत्म-विनाश का पथ है। आप नर-पिशाच रमानाथ को रिश्वत दे कर के उसे और अत्याचार करने के लिये उत्साह प्रदान करते हैं। मैं फिर भी कहता हूँ कि इस अत्यचार का अभी से मूलोच्छेदन करने की चेष्टा न करने से युग-युगान्तर में यह देश भर में फैल जायगा।

जो मनुष्य घोर मोहान्धकार में पड़े रहते हैं, भोगासक्ति जिन्हें एकदम से अन्धा बनाये रहती है, अज्ञान के कारण सत्-असत् का विचार करने में, जो सर्वथा अक्षम हैं, उनके हृदयों को भी, हृदय की भाषा स्वर्गीय ज्योति की नाईं—विद्युत् के आलोक की नाईं—कम से कम क्षण भर के लिये उद्वेलित एवं आलोकित कर सकती है। प्रेमानन्द की बात को सुनकर रामानन्द गोस्वामी चौंक उठे। सुप्तोत्थित व्यक्ति की नाईं वे आश्चर्य के साथ पुत्र के मुँह की ओर ताकते रह गये। क्षण भर के लिये उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि प्रेमानन्द जो कह रहा है,

वे सभी बातें ठीक हैं। इसलिये कुछ समय तक सिर को नीचे करके कुछ सोचने के बाद वे बोले, "बेटा, तब तुम क्या करना चाहते हो?"

प्रेमानन्द बोल उठा, "हम लोग कम्पनी बहादुर के साथ युद्ध थोड़े ही करेंगे। कम्पनी की कोठी के साहब अथवा उनके गुमाश्ते जिस समय किसी ग़रीब मनुष्य पर अत्याचार करना आरम्भ करेंगे, उस समय हम लोग अपने आदमियों को संग्रह करके इनके अत्याचार से उन ग़रीबों की रक्षा करेंगे। दो तीन घटनाओं पर यदि उस कोठी के गुमाश्ते तथा प्यादों की मरम्मत करके डरा दिया जायगा, तो फिर ये लोग अत्याचार करने का साहस न करेंगे। विशेषतः आप इस देश के प्रधान व्यक्ति हैं। यदि आप इस प्रथा का अवलम्बन करेंगे, तब देश के अन्यान्य व्यक्ति भी आ करके हम लोगों में मिल जाँयगे। देश के सभी लोगों की इच्छा है कि इनकी कोठियों को गङ्गाजी में डुबो दिया जाय।"

पुत्र की बात समाप्त होने पर रामानन्द बोले—"इस पर यदि कम्पनी के साहब कलकत्ते से सिपाही मँगाकर युद्ध करना आरम्भ कर देंगे, उस समय क्या किया जायगा?"

प्रेमानन्द बोला—"मैं नहीं समझता कि इन दो चार बङ्गाली गुमाश्तों के मरने से सिपाही आ करके युद्ध करेंगे; किन्तु यदि मान लीजिये कि ऐसा हो भी, तो इस अत्याचार के निवारण न करने पर देश के सब लोगों को चिरकाल के लिये अत्याचार सहन करना ही होगा। इस समय जैसा भयानक अत्याचार हो रहा है, उसे आजीवन सहने की अपेक्षा युद्धक्षेत्र में अग्रसर होना ही भला है। उन्होंने अभी तक आपके घर की कुल-बधुओं का अपमान नहीं किया है, इसी के कारण आप इस

मार्ग का अवलम्बन करने से अनिच्छा प्रकट कर रहे हैं। किन्तु सोचिये तो. आपकी कुल-वधुओं का अपमान करने के लिये उद्यत होने पर भी क्या आप युद्ध करने से बाज़ आवेंगे?"

युद्ध की बात सुनकर रामानन्द बहुत त्रस्त हुए। प्रेमानन्द की पहली बात को सुनकर उनका मन जो बदल गया था, वह भाव अब नहीं रहा। रामानन्द बोले, "पुत्र पागल हो गया है? कम्पनी के साथ युद्ध! नवाब सिराजुद्दौला तक को कम्पनी ने हरा दिया है। बेटा! तुम इन सब चिन्ताओं को छोड़ दो। हमारी प्रजा पर तो अभी तक अत्याचार नहीं हो रहे हैं। जिस समय हमारी प्रजा पर अत्याचार होंगे, उस समय जो होगा, किया जायगा।"

प्रेमानन्द एक लम्बी आह भरते हुए बोले, "आपकी प्रजा ही पर क्यों अत्याचार करेंगे? पाँच सात वर्ष के भीतर तो यह अत्याचार देश भर में व्याप्त हो जायगा। आज इन जुलाहों, तम्बाकू के व्यवसायियों एवं सोनारों आदि की स्त्रियों के ऊपर जो अत्याचार हो रहे हैं, पांच सात वर्ष के बाद ठीक इसी प्रकार के अत्याचार स्वयं आपके घर की स्त्रियों को सहन करने पड़ेंगे।"

यह कहकर वे दूसरी जगह चले गये। इसके बाद और भी दो तीन दिन तक पिता के साथ उनका वाद-विवाद हुआ किन्तु इस वाद-विवाद का परिणाम केवल यही निकला कि रामानन्द मन में यह समझने लगे कि प्रेमानन्द संसार के व्यवहार को कुछ समझ नहीं सका है। रामानन्द के सभी आत्मीय स्वजन प्रेमानन्द को पागल समझने लगे।

× × × ×

प्रेमानन्द की स्त्री सत्यवती इस समय प्रायः १२ वर्ष की

अवस्था को पहुँच गई थी। वह भी अपने स्वामी को पागल समझती थी। इसलिये प्रेमानन्द ने मालदा ज़िले के घर को छोड़ कर किसी दूसरी जगह जाकर रहने का विचार मन ही मन में स्थिर किया। घटना-क्रम से उन्हें मालदा छोड़ने का एक अच्छा मौका भी हाथ लगा। इनके पिता ने उन्हें पूर्णिया को ब्रह्मोत्तर ज़मीन की मालगुजारी, ख़जाने में जमा कराने के लिये पूर्णिया भेजा।

इसके पहले लिखा जा चुका है कि इसी समय हे, जान्स्टन एवं बोल्टसाहब पुर्णिया में व्यापार करते थे। मूल धन न होने पर भी किस प्रकार व्यापार किया जा सकता है, इस विषय की शिक्षा बंगालियों को देने के सदुद्देश्य से इन तीनों महात्माओं ने पुर्णिया में आदर्श वाणिज्यालय (Model Farm) संस्थापित किया था। इनके गुमाश्ता रामचरन दास पुर्णिया के लोगों से सभी पण्य-वस्तुओं को उधार दाम पर ख़रीदते किन्तु कोई मनुष्य इस आदर्श वाणिज्यालय से अपनी चीज़ का मूल्य नहीं पाता। मूल्य किस प्रकार से पाता ? मृत्यु के बाद भी मृतात्मा अनन्त काल तक विचरण किया करता है। जान्स्टन, हे एवं बोल्टसाहब खृष्ट-धर्मावलम्बी पुरुष थे। इस लिये उन्होंने मन में विचार किया कि ये बंगाली लोग हाथ में रुपये पाते ही उड़ा डालेंगे; इसलिये पुण्य द्रव्यों के मूल्य के कुल रुपये एक बारगी परलोक ही में दे देंगे। वहाँ पर इन बंगालियों को अपने २ रुपयों का अपव्यय करने का मौक़ा नहीं मिलेगा। ये अंगरेज़ लोग थे। इनके उद्देश्य सदा अच्छे होते हैं। ज्ञात होता है इसी उद्देश्य से ये चिज़ों का मूल्य नहीं देते थे। उस समय के बंगाली इनके इस महदुद्देश्य को समझ नहीं सकते थे।

प्रेमानन्द ने पुर्णिया में पहुँचते ही उस स्थान के बंगाली एवं हिन्दुस्तानी सौदागरों की दुरवस्था का हाल सुना। इनके दुःख और यन्त्रणा को देख कर उनका हृदय विदीर्ण हो गया। जो व्यापारी जान्स्टन, हे एवं बोल्टसाहब के गुमाश्ते को उधार चिज़ें देना अस्वीकार करते, उनके माल असबाब को गुमाश्ते उनके घर में प्रवेश कर के बलपूर्वक उठा ले जाते। प्रेमानन्द ने पुर्णिया में पहुँचने के दो दिन के बाद वहाँ के सूबेदार शेरअली खाँ से मुलाकात की। प्रेमानन्द युवक होने पर भी अत्यन्त शास्त्रज्ञ एवं बुद्धिमान थे। शेरअली खाँ बहादुर इसके साथ बातचीत करके बहुत ही सन्तुष्ट हुए। शेरअली खाँ खुद जान्स्टन, हे एवं बोल्टसाहब के इस प्रकार के वाणिज्य के बहुत विरोधी थे। किन्तु इन्हें निकाल बाहर करना उनके सामर्थ्य के बाहर था। इसी से वे चुपचाप बैठे थे।

प्रेमानन्द ने शेरअली खाँ से कहा,—आप नवाब कासिम-अली को इन सब अत्याचारों का विवरण लिख कर दें तो मैं स्वयं पत्र लेकर जाऊँगा।

शेरअली ने प्रेमानन्द की बात से सहमत होकर जान्स्टन, हे एवं बोल्टसाहब के गुमाश्तों के सब अत्याचारों का विवरण लिख कर इन्हें नवाब के पास मुंगेर भेजा। प्रेमानन्द ने मुंगेर पहुँच कर मीर कासिम से साक्षात् किया। नवाब कासिमअली ने शेरअली खाँ के पत्र को पाकर शीघ्र ही यह हुक्मनामा भेजा, 'पूर्णिया की सारी प्रजा के घर-घर इस आशय का परवाना जारी किया जाय कि अंगरेज़ों के हाथ कोई पण्य-वस्तु उधार नहा बेचें। यदि नवाब के इस परवाने को अमान्य करके कोई व्यक्ति अंगरेज़ों के पास कोई चीज़ उधार मूल्य पर बेंचेगा, तो बिकी हुई चीज़ नवाब की सरकार में कुर्क होगी

और बेंचने वाले को इसके अतिरिक्त जुरमाने भी देने पड़ेंगे।"

पुर्णिया में इस समय जान्स्टन, हे एवं बोल्टसाहब के अतिरिक्त और कोई अंगरेज़ सौदागर नहीं था। इसलिये बोल्ट साहब ने इस परवाने के जारी होने की ख़बर सुन कर अत्यन्त क्रुद्ध हो शेरअली खाँ को धमकाते हुये एक पत्र* लिखा। इस घटना के १२ वर्ष के बाद जब बोल्टसाहब ने गवर्नर वेरेलस्ट के विरुद्ध मुकदमा चलाया, उस समय बोल्टसाहब के इस पत्र को लेकर बड़ा आन्दोलन हुआ था। और मीर-कासिम के इस परवाने के जारी करने की बात को दिखा कर हे एवं जान्स्टन साहब ने इस बात का बड़ा प्रयत्न किया कि अंगरेज़ों के साथ मीर कासिम का कलह आरम्भ हो जाय। इन सब ऐतिहासिक घटनाओं के साथ इस उपन्यास का कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिये प्रेमानन्द ने इसके बाद जो कार्रवाइयाँ कीं; उन्हीं का यहाँ पर उल्लेख किया जाता है।

इस परवाने के जारी होने पर हे, जान्स्टन एवं बोल्टसाहब का आदर्श वाणिज्यालय पुर्णिया से उठ गया। प्रेमानन्द ने देखा कि चेष्टा करने पर बहुत से अत्याचारों का निवारण किया जा सकता है। इसीलिये उन्होंने मन में यह निश्चय किया कि मालदा लौट कर और फिर वहाँ से कलकत्ते जाकर रमानाथ के विरुद्ध गवर्नर वान्सिहार्ट के विरुद्ध मुक़दमा पेश करूँगा। किन्तु वे ज्योंही मालदा को वापस आये, इतने ही में मीर क़ासिम के साथ अगरेज़ों को लड़ाई ठन गई। इस समय कलकत्ता जाने से कोई उपकार नहीं होता। लाचार होकर प्रेमानन्द दो वर्ष तक घर ही पर रहे। इनके आत्मीय लोग

* देखो परिशिष्ट नं० १०।

अब भी इनको पागल ही समझते थे। इनकी स्त्री सत्यवती भी समय समय पर इनका तिरस्कार कर बैठती थी।

× × × ×

मीरक़ासिम के सिंहासन-च्युत होने पर मीरजाफ़र पुनः सिंहासन पर बैठे। उस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अत्याचार सौगुना बढ़ गया। बंगाल के वाणिज्य व्यवसायियों एवं अन्यान्य लोगा की यन्त्रणाओं की सीमा नहीं रही। किन्तु मालदा कोठी के अध्यक्ष ग्रे साहब के अनेक कुकृत्यों के कारण बोर्ड आफ़ डाइरेक्टर्स की दृष्टि तीव्र हो रही थी, इसलिये इनको शीघ्र ही विलायत भागना पड़ा। ग्रे साहब बंगकुलांगार रामनाथ के प्रधान पोषक थे। इसलिए ग्रे साहब के विलायत चले जाने पर १७६५ ई० में प्रेमानन्द ने कलकत्ता जाकर लार्ड क्लाइव साहब के निकट रामनाथ के विरुद्ध अभियोग चलाया। किन्तु अभियोगों पर विचार करने के पूर्व ही लार्ड क्लाइव को विलायत लौट जाना पड़ा। वेरलस्ट साहब बंगाल के गवर्नर नियुक्त हुए। बेरेलस्ट साहब के साथ रामनाथ का पहले ही से झगड़ा चल रहा था। इसलिये रामनाथ के विरुद्ध मुकदमा चलाये जाने के साथ ही, बेरेलस्ट साहब ने इसे अपराधी ठहरा कर मुर्शिदाबाद के जेल में भेज दिया। *रामनाथ ने विविध अत्याचारों एवं अवैध उपायों से जो कुछ रुपये पैसे कमाये थे, उनका अधिकांश उसे नवकृष्ण मुन्शी को रिश्वत के रूप में देना पड़ा। इस प्रकार थोड़े ही काल में पापात्मा रामनाथ धन और प्राण दोनों से हाथ धो बैठा।

प्रेमानन्द ने समझा कि मालदा एवं पूर्णिया से अब अत्याचार क्रमशः घटता जायगा। किन्तु उनको यह आशा व्यर्थ

* परिशिष्ट नंबर ११ देखो।

थी। एक ग्रे साहब के विलायत चले जाने पर दस ग्रे साहब आकर के उपस्थित हो गये। एक रामनाथ के मर जाने अथवा जेल जाने पर बंगभूमि ने और सैकड़ों रामनाथ को पैदा कर दिया।

ईस्ट-इण्डिया कम्पनी का अत्याचार कम होने की कौन कहे, वह तो दिन प्रति दिन बढ़ने लगा। विशेषतः कम्पनी के बंगाल बिहार की दीवानी पाने पर अँगरेज़ों की शक्ति और भी दृढ़ हो गई। उस समय इनके अत्याचार के स्रोत को कौन रोकता!

प्रेमानन्द कलकत्ते से मालदा आकर अनुमानतः चार पांच वर्ष तक अपने पिता के मालदा वाले घर ही पर रहे। इन्हें सभी पागल समझते। औरों की बातें तो अलग रहीं, खुद इनकी स्त्री सत्यवती तक इनके कार्यों का अनुमोदन न करती। प्रेमानन्द ने इरादा किया कि अपनी स्त्री को अन्ततः अपने मत पर लाऊँगा। इस अभिप्राय से वे १७६८ से १७७० पर्यन्त मालदा में निवास करने के समय अपनी स्त्री के साथ समय समय पर अनेकों शास्त्रों पर बातचीत करते। इसी समय में सत्यवती को अपने स्वामी से अनेक शास्त्रों की शिक्षा मिली।

× × × ×

सन् १७७० ई० में बंगाल में घोर दुर्भिक्ष पड़ा। सब से पहले पुर्णिया ही में दुर्भिक्ष का आक्रमण हुआ। रामानन्द गोस्वामी अत्यन्त प्रजावत्सल ज़मीन्दार थे। वे अपने पुत्र, पुत्रवधू, कन्या एवं जामाता को साथ लेकर पुर्णिया चले गये। पुर्णिया में इनकी ज़मीन्दारी की कचहरी थी जिसमें परिवार के लोगों के रहने योग्य मकान आदि थे। वे यहाँ आकर रहने लगे। इन्होंने जो कुछ निजी द्रव्य पास में था उसे प्रजा

के प्राणों की रक्षा के लिये ख़र्च कर डाला। कभी २ रुपये पैसे की कमी होने पर अपने शिष्यों से सहायता ले लिया करते थे। किन्तु इस वर्ष शिष्यों के पास भी सहायता करने की सुविधा न रही।

× × × ×

इस दुर्भिक्ष के दो वर्ष पहले ही देवीसिंह ने पुर्णिया के अन्तर्गत प्रायः सभी परगनों का इजारा ले लिया था। पुर्णियाकी मालगुज़ारी वसूल करने का भार भी देवीसिंह के ही हाथ में था। सन् १७७० ई० के दुर्भिक्ष के कारण कोई ज़मीन्दार प्रजा से एक पैसा भी मालगुजारी का वसूल करने में समर्थ न हुआ। वरन् प्रजा के प्राणों की रक्षा के निमित्त प्रत्येक ज़मीन्दार को अपने अपने पूर्व सञ्चित धन द्वारा सहायता करनी पड़ी। किन्तु देवीसिंह ईस्ट इण्डिया कम्पनी की मालगुजारी की वसूली के निमित्त जमीन्दारों तथा तालुकेदारों को कचहरी में पकड़वा कर कैद करने लगा। ज़मीन्दारों के पास रुपया बिलकुल भी नहीं था। बहुत मारने पीटने पर भी देवीसिंह इन लोगों से एक पैसा भी वसूल न कर सके। अन्त में इन तालुकेदारों तथा ज़मीन्दारों के परिवार की कुल-कामिनियों तक को पकड़कर कचहरी में लाने को उसने हुक्म दिया। देवीसिंह के प्यादे तथा बरकन्दाज़ इन कुल कामिनियों के सोने के गहनों को उतारने लगे। किसी किसी ज़मीन्दार को अपमान करने के निमित्त उसके परिवार की स्त्रियों को निःवस्त्र करके कचहरी में खड़ा कर देते! जिन हिन्दू-कुल-कामिनियों ने अभी तक चन्द्र-सूर्य के मुख तक का दर्शन नहीं किया था, ऐसी स्त्रियों पर बङ्गकुलांगार देवीसिंह ईस्ट इण्डिया कम्पनी का आश्रय पाकर इस प्रकार के भीषण अत्याचार करने लगा।

रामानन्द की सभी ज़मीन निष्कर ब्रह्मोत्तर थी। किन्तु देवीसिंह ने रामानन्द से भी खज़ाना तलब किया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गवर्नर हेस्टिंग्स साहब किसी को भी निष्कर ज़मीन भोग करने देना स्वीकार नहीं करते थे। रामानन्द गोस्वामी ने देवीसिंह के डर से राजशाही की रानी भवानी से ५०००० पचास हज़ार रुपये कर्ज़ लेकर गत तीन वर्षों की मालगुजारी चुकती कर दी। किन्तु १७७१ ई० में फिर देवीसिंह ने एक वर्ष की मालगुजारी मांगी। किन्तु इस समय इनके पास एक पैसा भी मालगुजारी देने की सामर्थ्य नहीं थी। कई दिन के बाद देवीसिंह ने रामानन्द को पकड़ने के लिये कचहरी से प्यादे तथा बरकन्दाज़ भेजे। रामानन्द इस समय भी सपरिवार अपनी कचहरी में ही ठहरे हुए थे। इस बात को सुनते ही कि देवीसिंह के प्यादे हमको पकड़ने के लिये आये हैं, वे भय एवं त्रास से हतबुद्धि हो गये। इस समय प्रेमानन्द इन्हें साहस देते हुए बोले, 'आप कोई भय न करें, मैं स्वयं हाज़िर हो जाऊँगा। आप मेरे लिये कोई चिन्ता न कीजिये। किन्तु इस समय क्षण मात्र भी विलम्ब न करके शीघ्र ही अपनी पतोहू एवं कन्या को साथ में ले रंगपुर के किसी शिष्य के घर में जा कर आश्रय ग्रहण कीजिये।"

पिता को इस प्रकार आश्वासन देकर प्रेमानन्द स्वयं घर से बाहर निकले। इनके घर से बाहर निकलने के पहले ही देवीसिंह के आदमियों ने इनके भगिनी-पति को पकड़ लिया था। प्रेमानन्द देवीसिंह के बरकन्दाज़ों को सम्बोधन करके बोले—"मेरा नाम प्रेमानन्द गोस्वामी है। मैं स्वयं हाज़िर होता हूँ। अभी कचहरी चल कर देवीसिंह का जो कुछ बाकी होगा, उसे चुकता करूँगा। किन्तु यदि तुम लोग मेरे वृद्ध पिता को पकड़ने के लिये चेष्टा करोगे, तो निश्चय करके अपनी जान

से हाथ धो बैठोगे। थोड़ी देर ठहर जाओ, मैं तुम लोगों के साथ साथ चलता हूँ।"

यह कह कर प्रेमानन्द घर में जा एक सुतीक्ष्ण छुरी कपड़े में छिपा कर साथ में ले चले। इन्होंने मन में स्थिर कर लिया कि इस तेज़ छुरी से देवीसिंह के प्राणों का विनाश करके इस अत्याचारी के हाथ से वंग देश को छुड़ाऊँगा।

× × × × × ×

देवीसिंह के प्यादे एवं बरकन्दाज़ों ने प्रेमानन्द एवं इनके भगिनी-पति राधाकृष्ण अधिकारी को माल कचहरी में लाकर देवीसिंह के सामने खड़ा किया।

देवीसिंह तकिये के सहारे एक तख़्त पोश के ऊपर गद्दी लगाकर बैठा हुआ था। पेचवान से तम्बाकू पी रहा था। तहसील कचहरी के अमला नीचे बिछौने के ऊपर उसके दाहिनी ओर बैठ कर हिसाब-किताब तैयार कर रहे थे। बाहर घर के सामने तीस बत्तीस ज़मीन्दारों को देवीसिंह के आदमी खूब पीट रहे थे। किसी के हाथ टूट गये थे किसी के शरीर क्षत विक्षत होकर लहू-लुहान हो रहे थे। किसी में उठने तक की शक्ति न रह गई थी, ज़मीन पर बेहोश होकर पड़े हुए थे, किन्तु इतने पर भी देवीसिंह इन लोगों को मारने का हुक्म देता जाता था। दो एक बार और मारने पर संसार की सारी यन्त्रणाओं से छुटकारा पाने की संभावना थी। घर के भीतर बैठे पापात्मा देवीसिंह के ठीक सामने उसके सिपाही कैसा भीषण अत्याचार कर रहे थे! क्या मनुष्य कभी इतना अत्याचार कर सकता है? किसी ज़मीन्दार के घर की सात आठ भद्र महिलाओं को नंगी करके अपमान कर रहे थे। स्त्रियों ने हाथों से आंखों को मूँद लिया था। उनकी आँखों से आँसू निकल कर उनके वक्ष-

स्थल को भिगो रहे थे। देखते ही देखते इन में चार पाँच स्त्रियाँ लज्जा के मारे एक बारगी बेहोश हो मृत प्राय हो गईं।

× × × × ×

इस भयानक दृश्य को देखते ही प्रेमानन्द उन्मत्त की तरह हो गये। इन्होंने घर से छुरी इसी अभिप्राय से ले ली थी कि मालगुजारी चुकाने तथा नजर देने के बहाने देवीसिंह के पास जाकर यह छुरी उसकी छाती में घुसेड़ दूंगा। किन्तु इन स्त्रियों की ऐसी दुरवस्था देख कर वे अपने आपको अब न रोक सके। वे शरविद्ध-व्याघ्र की तरह गरजते हुए "नर पिशाच! अबला स्त्रियों पर इतना अत्याचार–अभी तेरा प्राणान्त करूंगा" ऐसा चिल्लाते हुए कूद कर ज्योंही देवीसिंह के पास पहुँचे; त्योंही पीछे से तथा आगे से चार पाँच आदमियों ने आकर पकड़ लिया। तब फिर हाथ उठाने की सामर्थ्य न रही किन्तु अब भी देवीसिंह को गाली देते रहे। वे अत्यन्त उत्तेजित होकर बोलने लगे, "निर्लज्ज नर पिशाच! जितने दिन में होगा, मैं अवश्य तेरा प्राण लूंगा। यह तीक्ष्ण छुरी तेरे ही लिये लाया हूँ।"

ऐसा कह कर प्रेमानन्द ने वस्त्र में छिपाई हुई छुरी को बाहर निकाला। देवीसिंह प्रेमानन्द के हाथ में छुरी देख कर चौंक उठे; एवं तत्क्षण प्रेमानन्द को स्वतंत्र कारागार में ले जाने का इशारा किया। इस इशारे का अर्थ यह था—जल्दी इसे ख़तम कर डालो। अन्यान्य क़ैदियों को सिपाही लोगों ने सायंकाल के समय साधारण कैदखाने में रखा।

× × × ×

इसके दूसरे दिन प्रातः काल प्रायः बीस पचीस कैदी देवीसिंह के आदमियों के प्रहार से मर गये। रामानन्द गोस्वामी

ने लोगों के मुह से सुना कि देवीसिंह के आदमियों के पीटनें से उनके पुत्र प्रेमानन्द गोस्वामी तथा दामाद राधाकृष्ण अधिकारी भी मर गये। तब इन्होंने उन लोगों के मृत-शव को लाकर के अन्त्येष्टि-क्रिया करना स्थिर किया। राधाकृष्ण अधिकारी की मृत-देह तो पाई गई। किन्तु प्रेमानन्द की मृत-देह पहचानी न जा सकी। बहुत से लोगों की देह मारने पीटने से अत्यन्त विकृत हो गयी थी। सब लोग कहने लगे कि प्रेमानन्द को अधिक मारा है, इसी से इनकी मृतदेह को पहचान करके बाहर निकालना सम्भव नहीं।

प्रेमानन्द की बहन प्रभावती देवी अपने पति के साथ चितापर बैठ कर जल गई। रामानन्द गोस्वामी अपनी पुत्र-बधू को साथ लेकर कृष्णगंज होते हुए रंगपुर की ओर पैदल ही चल पड़े।

छठा अध्याय
देवीसिंह

रामानन्द गोस्वामी अपनी पतोहू, एक वृद्धा दासी और तीन चार विश्वस्त प्रजा को साथ में लेकर बहुत कष्ट के बाद रंगपुर पहुँचे। रंगपुर के बहुत से ज़मीन्दार इनके शिष्य थे। इन्होंने एक शिष्य के घर में आश्रय लिया। शिष्य इन्हें अत्यन्त आदर पूर्वक अपने घर में रखकर यत्न पूर्वक इनकी सेवा शुश्रूषा करने लगा। किन्तु पुत्र और कन्या के शोक से ये बहुत अधीर हो रहे थे।

इधर देवीसिंह के अत्याचार से पूर्णिया प्रायः जनशून्य हो गया। सन् १७७२ ई० के सेप्टेम्बर मास में बंगाल के गवर्नर

वारेन हेस्टिंग्स ने परिदर्शन कमेटी (Committee of curcuit) के अध्यक्ष के रूप में स्वयं पुर्णिया आकर देवीसिंह के कार्य-कलाप का परिदर्शन किया। परिदर्शन के समय गंगा गोविन्दसिंह भी इनके साथ थे। इनके साथ न रहने से रिश्वत लेने का बन्दोवस्त नहीं हो सकता, यही समझ करके हेस्टिंग्स साहब इनको साथ में रखते थे।

महम्मद रज़ा की अमलदारी में गंगा गोविन्दसिंह जिस समय मुर्शिदाबाद के कानूनगो का काम करते थे, उसी समय से देवीसिंह के साथ इनकी घोर शत्रुता आरम्भ हो गयी थी। इसलिये इस समय वैर साधने का अच्छा मौक़ा देख कर ये वारेन हेस्टिंग्स को देवीसिंह को पदच्युत करने के लिये बार बार अनुरोध करने लगे। पुर्णिया के लोगों ने देवीसिंह के विरुद्ध बहुत से अभियोग उपस्थित किये थे। किन्तु इसके लिये वारेन हेस्टिंग्स उन्हें कभी पदच्युत नहीं करते। केवल गंगा गोविन्दसिंह के अनुरोध ही से हेस्टिंग्स ने देवीसिंह को पदच्युत किया।

देवीसिंह के इजारा लेने के पहले पुर्णिया की वार्षिक आय सोलह लाख रुपये थी। किन्तु देवीसिंह के अत्याचार के कारण बहुत से लोग पुर्णिया छोड़कर अन्यत्र चले गये थे और बहुत से मर गये थे। इससे पुर्णिया की मालगुजारी इतनी कम हो गई कि बाद के कई वर्षों तक छः लाख से अधिक मालगुजारी वसूल नहीं होती थी।

देवीसिंह ने देखा कि वारेन हेस्टिंग्स गंगा गोविन्दसिंह के परामर्श के अनुसार ही सदा काम करते हैं। इसलिये ये गंगा गोविन्दसिंह के साथ सन्धि करने के लिये प्रयत्न करने लगे। जिस बात के लिये गंगा गोविन्दसिंह एवं देवीसिंह

के बीच में विवाद हुआ था; उसके विषय में आगे लिखा जायगा। इस स्थान पर केवल इतना ही कहा जाता है कि देवी सिंह ने गंगा गोविन्दसिंह से क्षमा-प्रार्थना की, एवं जिस रमणी के लिये आपस में वाद-विवाद आरम्भ हुआ था, देवी सिंह ने उस रमणी का पता लगाकर उसे पकड़वा करके गंगा गोविन्दसिंह के हाथ में समर्पित करना स्वीकार किया। इस प्रकार इन दोनों मनुष्यों के बीच फिर से मैत्री स्थापित हुई। दोनों ने गङ्गा जल लेकर प्रतिज्ञा की कि एक दूसरे की सदा सहायता करेंगे। इस घटना के एक महीने के बाद ही गङ्गा गोविन्दसिंह के अनुरोध से वारेन हेस्टिंग्स ने देवीसिंह को फिर से मुर्शिदाबाद की प्रान्तीय कौन्सिल के दीवान पद पर नियुक्त किया।

मुर्शिदाबाद के प्रान्तीय कौंसिल के साहब लोग सुरापान आदि विविध वासनाओं में आसक्त रहते थे। वे राजस्व सम्बन्धी कोई भी काम समझते नहीं थे और न समझने के लिये चेष्टा ही करते थे। इन तरुण वयस्क अँगरेज़ों की कुप्रवृत्ति को उत्तेजित करने के लिये देवीसिंह दो एक देशी स्त्रियों को पकड़वा मँगा कर इनके पास भेजा करते। हम पहले ही लिख चुके हैं कि देवीसिंह अँगरेज़ों को वशीभूत करने के लिये दस बारह स्त्रियों को इकट्ठा करके अपने घर पर रखते थे।* एवं इन हतभागिनी स्त्रियों के नये नये नाम कर इन्हें साहबों के पास भेजते। किसी स्त्री को दिलखुश बीबी नाम से पुकारते। किसी का नाम रँगबहार रखते। हिन्दू स्त्रियों में से किसी को तप्त कांचन, किसी को रस-मञ्जरी, किसी

* देखो, परिशिष्ट नम्बर १२।

को रस की डाली, किसी को ताज़ा मधु इत्यादि भाव उत्तेजक नामों से अभिहित करते। प्रान्तिक कौंसिल के साहब इन तप्त कांचन, एवं दिलखुश बीबी को लेकर सदा आमोद-प्रमोद में डूबे रहते। इधर देवीसिंह कौंसिल के कर्त्ता-धर्त्ता बन कर देश को उजाड़ने लगे, किन्तु कई साल के बाद प्रान्तीय कौंसिल की निद्रा भंग हुई। रिश्वत के सम्बन्ध में देवीसिंह के साथ इनका विवाद हुआ। ये लोग देवीसिंह को बरखास्त करने के लिये उद्यत हुए।

देवीसिंह अनन्योपाय होकर पुनः गंगा गोविन्दसिंह के शरणागत हुए। गंगा गोविन्दसिंह ने किस प्रकार देवीसिंह को आश्वासन दिया, इसका विवरण द्वितीय अध्याय में लिखा जा चुका है। गंगा गोविन्दसिंह के आश्वासन देने पर देवीसिंह अपनी प्रतीज्ञा के प्रति पालनार्थ चेष्टा करने लगे। जिस स्त्री को पकड़ कर गंगा गोविन्दसिंह के हाथों में सौंप देने का बचन दिया था, उसे खोजने के लिये चारों तरफ गुप्तचर भेजे।

× + × ×

देवीसिंह के गुप्तचरों ने रंगपुर जाकर यह सुना कि एक वृद्ध ब्राह्मण एक युवती को साथ में लिये हुए रंगपुर के किसी एक ज़मीन्दार के यहाँ आश्रय लिये हुए है। एक स्त्री भाग कर यहाँ आश्रय लिये हुए है, इस बात को सुन कर उन्होंने मन ही मन विचार किया कि जिस ब्राह्मण-कन्या का वे अनुसन्धान कर रहे हैं, वही यह होगी। ऐसा स्थिर कर के वे इस युवती को पकड़ कर देवीसिंह के पास ले जाने का मौक़ा देखने लगे। किन्तु यह रमणी रामानन्द गोस्वामी की पुत्रवधू थी। रामानंद ने देवीसिंह के गुप्तचरों की इस दुरभि-सन्धि का पता पा लिया। इसलिये वे रंगपुर को छोड़ कर

पुत्रबधू को साथ ले दिनाजपुर के जंगलों में घूमने लगे। उन्होंने अपनी पुत्रबधू पर देवीसिंह के इस दुरभिसन्धि के विषय में कुछ प्रकट नहीं किया। इन्होंने मन में आशंका की कि मेरी पुत्रबधू इन सब बातों को सुन कर आत्महत्या करके धर्मरक्षा की चेष्टा करेगी।

सन् १७७६ ई० में रामानन्द रंगपुर को छोड़ कर जंगलों में घूमने लगे। कई महीनों तक इसी तरह से समय बिताते रहे। बाद में दिनाजपुर ज़िले के अन्तर्गत प्राण नगर के जंगल के उत्तर में तीन पर्ण कुटीर तैयार कर के गत तीन वर्षों से वहीं पर निवास करते थे। उनके जीविका निर्वाहार्थ भिक्षा को छोड़ कर और कोई उपाय न था। इसलिये वैरागी का वेश धारण करके, उन्होंने भिक्षा-वृत्ति का अवलम्बन किया। प्रायः तीन वर्ष से इस स्थान में निर्विघ्न रूप से रहते आये थे। किन्तु दिनाजपुर के राजा के मर जाने पर १७८१ ई० में रंगपुर एवं दिनाजपुर के कलक्टर गुड लैण्ड साहब के दीवान के पद पर देवीसिंह की नियुक्ति हुई और वे दिनाजपुर आये। इस समय देवीसिंह के बरकन्दाज़ों ने भागे हुए लोगों का पता लगाते हुए दिनाजपुर के उत्तर के विभाग में आकर यह सुना कि रामानन्द नामक कोई भूम्याधिकारी इसी पास के किसी जंगल में निवास कर रहा है। अस्तु। वे रामानन्द को पकड़ने की चेष्टा करने लगे। बाद में रामानन्द ने जिस प्रकार स्वयं अपने को पकड़वा दिया एवं उनकी पुत्रबधू ने एक वृद्धा दासी और दो विश्वस्त भृत्यों को साथ में ले, भाग करके जिस प्रकार आत्मरक्षा की, इसका विवरण पूर्ववर्ती अध्याय में दिया जा चुका है।

सातवाँ अध्याय

कलकत्ते में राजस्व-कमिटी का संस्थापन

देवीसिंह जिस प्रकार दिनाजपुर एवं रंगपुर के कलक्टर गुडलैंड साहब के दीवान के पद पर नियुक्त हुए, उसका संक्षिप्त रूप से विवरण न देने से पाठक उपन्यास में लिखित परिवर्ती घटना-समूह को सहज में नहीं समझ सकेंगे।

इसके पहले लिखा जा चुका है कि भारतवर्ष के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स साहब ने पाँच साला बन्दोबस्त की मीयाद खतम हो जाने पर, कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, बर्दवान, पटना, दिनाजपुर एवं डाका, इन छः प्रदेशों की राजस्व संक्रान्त प्रान्तीय कौंसिलों को उठा कर, उनकी जगह पर केवल कलकत्ते में एक राजस्व कमिटी कायम करने का इरादा किया। किन्तु गवर्नर जनरल की कौंसिल में वे एवं बारवेल साहब एक पक्ष में थे; दूसरे दो मेम्बर इनके विपक्ष में थे। कौंसिल में विपक्षदल प्रायः इनके किसी भी प्रस्ताव का अनुमोदन नहीं करता था। उधर कोर्ट आफ डिरेक्टर्स ने भी अपने सन् १७७७ ई० के ४ थी जुलाई के पत्र में राजस्व-कमेटी के सम्बन्ध में हेस्टिंग्स के अन्यान्य बहुत से प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया। हेस्टिंग्स के इस कार्रवाई के प्रति भी उसने तिरस्कार प्रकट किया क्योंकि ये सदा नये २ नियमों की रचना करके उन्हें जारी करना चाहते थे। * इसलिये कुछ समय तक ये चुपचाप रहे।

किन्तु जिस समय बिहार के कल्याणसिंह ने बिहार प्रान्त की कुल ज़मीन को अपने नाम पर बन्दोबस्त कर देने के लिये गंगा

* देखो परिशिष्ट नम्बर ४।

गोविन्दसिंह के द्वारा वारेन हेस्टिंग्स को चार लाख रुपये रिश्वत देने का प्रस्ताव किया; एवं इसके बाद जिस समय १७८० ई० के जुलाई मास में दिनाजपुर के राजा की मृत्यु हुई और दिनाजपुर के राज-परिवार के भिन्न २ पक्ष से रिश्वत देने के प्रस्ताव आने लगे, उस समय वारेन हेस्टिंग्स साहब अपने लोभ को और अधिक न रोक सके। उन्होंने कुल ज़मीन के बन्दोबस्त का भार अपने हाथों में लेने का दृढ़ संकल्प किया; किंतु किस उपाय एवं प्रणाली से बन्दोबस्त का भार अपने हाथ में लें, इस के लिये कोई बहाना न पाने से उसी की चिन्ता में रहने लगे। प्रान्तीय कौंसिलों के उठा देने की कुल क्षमता गवर्नर जनरल की कौन्सिल के हाथ में रहने पर भी अनेक विपत्तियों की आशंका थी। वे अच्छी तरह से जानते थे कि उनके विपक्षी दल को उनके कार्य्य में बाधा न देने पर भी कौन्सिल के कार्य्य विवरण की पुस्तक में उनके विरुद्ध मत लिखे जायँगे, जिन्हें देखकर कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स दुरभिसन्धि को समझ जायगा। यदि किसी विषय पर कौन्सिल में मतभेद होता, तो ऐसे मौकों पर सभापति के मतानुसार ही काम होता, किन्तु कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने अनेक घटनाओं पर इनके विपक्षियों के लिखे हुए मन्तव्यों को पढ़ कर हेस्टिंग्स साहब की सब दुरभिसन्धि को जान लिया। बर्द्वान की रानी एवं राजशाही की रानी भवानी के प्रति इन्होंने एवं बारवेल साहब ने जो अन्याय पूर्ण व्यवहार किये थे, उसका सब हाल कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने इनके विरोधियों के मन्तव्यों को पढ़ कर जान लिया था।* इन सब बातों पर सोच विचार करके हेस्टिंग्स साहब ने मन

---

* देखो परिशिष्ट न० ७।

ही मन स्थिर कर लिया था कि प्रान्तीय कौन्सिलों को उठा दूँगा; किन्तु बन्दोबस्त का भार अपने हाथ में अथवा गवर्नर जनरल की कौन्सिल के हाथ में नहीं रखूँगा। बन्दोबस्त का सब भार गंगा गोविन्दसिंह के ही हाथ में रहे, इसी के लिये प्रयत्न करूँगा। इसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये पहले के संस्थापित छः प्रान्तीय कौन्सिलों को उठाकर उनकी जगह पर केवल कलकत्ते में कमिटी आफ रेवेन्यु (Committee of revenue) नामक एक समिति संस्थापित की। कई तरुण वयस्क अंग्रेज़ों को इस कमेटी आफ रेवेन्यु का मेम्बर नियुक्त किया। गंगा गोविन्द सिंह को इस कमिटी का दीवान बनाकर राजस्व बन्दोबस्त की सारी ज़मता दूसरे रूप में इन्हीं के हाथों दे दी। कमिटी आफ़ रेवेन्यु के तरुण वयस्क अंग्रेज़ मेम्बर इस देश के आचार व्यवहार को कुछ भी नहीं जानते थे। दीवान गङ्गा गोविन्दसिंह सब काम अपनी इच्छानुसार ही सम्पादित करते। कमिटी के मेम्बरों पर केवल दस्तख़त भर करने का भार रहता।

सन् १७७६ ई० में यह कमिटी स्थापित हुई। इस समय से लार्ड कार्नवालिस के आने के समय तक राजस्व बन्दोबस्त के सम्बन्ध में गङ्गा गोविन्दसिंह ही एक प्रकार से गवर्नर जनरल रहे। देश के सभी जमीन्दार एवं तालुक़ेदार इन्हीं की मुट्ठी में थे।

× × × ×

सन् १७८० ई० में दिनाजपुर के राजा के मर जाने पर उसके नाबालिग़ पोष्य पुत्र को ही उसका उत्तराधिकारी स्वीकार किया। एवं नाबालिग़ से चार लाख रुपये सलामी में लेकर उसकी पैतृक ज़मीन्दारी को उसी के साथ बन्दोबस्त किया।

हेस्टिंग्स एवं गङ्गा गोविन्दसिंह ने इस नाबालिग राजा की देखरेख का भार गुडलैण्ड साहब एवं देवीसिंह के हाथों में दिया। इसी के उपलक्ष में देवीसिंह गुडलैण्ड साहब के दीवान के पद पर नियुक्त हुए। मालूम होता है कि गंगा गोविन्द सिंह ने इस नाबालिग राजा की सारी ज़मीन्दारी को स्वयं हड़प जाने के इरादे से ही देवीसिंह के समान उपयुक्त व्यक्ति के हाथ में उसकी देखरेख का भार दिया। और हेस्टिंग्स को रिश्वतें सहज में मिल सकें, इसी अभिप्राय से गुडलैंड के समान उपयुक्त अफ़सर को पूरे अधिकार देकर रङ्गपुर एवं दिनाजपुर के कलक्टर के पद पर नियुक्त किया।

गुडलैण्ड एवं देवीसिंह दोनों एक ही प्रकृति के व्यक्ति थे। गुडलैण्ड को विलायती देवीसिंह, एवं देवीसिंह को देशी गुडलैण्ड कहने में कोई अत्युक्ति नहीं हो सकती। इन दोनों महात्माओं ने दिनाजपुर के राजा के पुराने राज कर्मचारियों को बरखास्त कर दिया; और इन वृद्ध कर्मचारियों की जगह पर नितान्त जघन्य चरित्र के कई एक युवकों को नियुक्त किया। इसके बाद इन लोगा ने रियासत के खर्च को कम करने के निमित्त दिनाजपुर की रानी, मृत राजा के समय से धर्मानुष्ठान एवं व्रतादि के व्यय को चलाने के लिये, जो मासिक रकम पाती थी, उसे भी बन्द कर दिया।

रियासत के रुपयों का किसी प्रकार अपव्यय न हो, इसके लिये रानी के पिता तथा सहोदर भ्राता उन्हें देखने आते, तो उनके खाने-पीने के खर्च के लिये प्रतिदिन आठ पैसे से अधिक नहीं दिया जाता था। किन्तु स्टेट के मैनेजर गुडलैण्ड के किसी फिरङ्गी मित्र के आने पर स्टेट से ब्राण्डी वा शाम्पियन के प्रतिदिन तीस चालीस से अधिक रुपये खर्च हो जाते ? ऐसे

ऐसे सुनियमों से गुडलैण्ड साहब एवं देवीसिंह दिनाजपुर की रियासत को देखरेख करने लगे।

कुछ दिनों के बाद देवीसिंह ने दिनाजपुर के राजा की सारी ज़मीन्दारी, एवं इसके साथ ही रङ्गपुर एवं एद्राकपुर की सारी ज़मीनें एक फर्जी नाम से स्वयं इजारे पर ले ली। यह बन्दोबस्त न हुआ। कलक्टर गुडलैण्ड साहब के निजी दीवान ही इनके इलाके के अन्तर्गत दो जिलों की कुल जमीन के इजारादार हो गये। गुडलैण्ड साहब ने यह देखते हुए भी न देखा, सुनते हुए भी न सुना। ये ईसाई मत के अनुयायी थे। बाइबिल स्पष्ट शिक्षा देती है (Resist no evil) अत्याचार का अवरोध न करो। इसलिये गुडलैण्ड साहब देवीसिंह के किसी अत्याचार तथा अन्याय-व्यवहार का अवरोध नहीं करते थे। फिर कोई यह कहे कि देवीसिंह में धर्माधर्म का विचार एक दम नहीं था, तो ऐसा कभी भी नहीं कहा जा सकता। एक तरफ़ जिस तरह अपने उपकार के लिये दिनाजपुर की सारी ज़मीन इजारा ले ली थी, दूसरी तरफ़ गङ्गा गोविन्दसिंह के साथ भी विशेष उपकार करने के लिये चेष्टा करने लगे। दिनाजपुर के नाबालिग़ राजा को बाध्य करके ज़मीनदारी का बहुत सा अंश गङ्गा गोबिन्दसिंह के नाम क़बाला करवा दिया। भला, ऐसा वे क्यों न करते? गङ्गा गोविन्दसिंह के अनुग्रह से ही ये गुडलैण्ड साहब के दीवान बनाए गए थे, उन्हीं के प्रसाद से दिनाजपुर के राजा के रक्षक नियुक्त हुए थे। इस समय भी ये गंगा गोविन्दसिंह की कृपा प्राप्त करने के इच्छुक थे, इसलिए कृतज्ञता के चिह्न स्वरूप दिनाजपुर के राजा की ज़मीन्दारी का बहुत सा भाग छल से, बल से, कौशल से गंगा गोविन्दसिंह को दिलवाया।

इस प्रकार १७८१ ई० में देवीसिंह ने रंगपुर, दिनाजपुर एवं एद्राकपुर को इजारे पर ले लिया—इन तीन ज़िलों के ज़मीन्दारों से वृद्धि जमा तलब किया। सन् १७७० के घोर दुर्भिक्ष से देश के एक तृतीयांश कृषक मृत्यु को प्राप्त हो गये थे। इसलिये १७७० ई० से ही ज़मीन्दारों की आय एकदम कम हो गई थी। उसी दुर्भिक्ष के समय से उनको दख़ल की अधिकांश ज़मीन अब तक बे जोती पड़ी हुई थी। इस पर पाँच साला बन्दोबस्त के समय जिन ज़मीन्दारों ने अपनी पैतृक ज़मीन्दारी को परित्याग नहीं किया था, उन्हें उस समय वारेन हेस्टिंग्स की दुष्टता से बहुत वृद्धि जमा से अपनी ज़मीन्दारी बन्दोबस्त पर लेनी पड़ी थी। इस प्रकार की अवस्था में ज़मीन्दारों के लिये फिर से वृद्धि जमा प्रदान करने के सिवा कोई भी दूसरा उपाय नहीं था। यदि ज़मीन्दार वृद्धि जमा क़बूलियत देने में कुछ भी इधर उधर करते तो देवीसिंह उन्हें पकड़वा कर क़ैदखाने में रखते। तब ज़मीन्दारों ने अपनी अपनी ज़मीन्दारी से इस्तिफ़ा देने के लिये प्रार्थना की। किन्तु पिछले सालों का बाक़ी खज़ाना बिना चुकाये ज़मीन्दारी से इस्तिफ़ा देने पर भी देवीसिंह के हाथ से छुटकारा न पा सके। इसलिये ज़मीन्दारों ने उस समय के लिये देवीसिंह के कारागार से छुटकारा पाने के निमित्त वृद्धि जमा का कबूलियत दिया। कबूलियत देने के कई दिन के बाद से ही देवीसिंह के अधीनस्थ लोगों ने ख़जाना वसूल करना आरंभ कर दिया। इन लोगों ने ज़मीन्दारों से घूँस-रिश्वत के रूप में कम्पनी के रुपयों के साथ ही साथ नाना प्रकार का बट्टा इत्यादि तलब किया। निराश्रय ज़मीन्दार इतने रुपये देने में समर्थ न हुए। तब देवीसिंह के आदमियों ने ज़मीन्दारों, तालुकेदारों एवं कृषक लोगों को पकड़ पकड़ कर, उन पर प्रहार

करना आरंभ कर दिया। इन्हें लाकर के क़ैद करके रखा।

दस वर्ष पूर्व देवीसिंह ने पुर्णिया में जो अत्याचार किये थे, वे अत्याचार, और वह निष्ठुरता इन अत्याचारों के मुक़ाबिले में कुछ भी नहीं थी। देश के अनेकों कृषकों ने अपनी स्त्री एवं बालबच्चों को साथ लेकर जंगलों में प्रवेश किया। देवीसिंह ने समझा कि ये किसान अपने साथ में अपने खेतों के अन्न भी ढो करके ले गये हैं। इसलिये इन्होंने भागे हुए कृषकों के अनुसन्धान के लिये जंगल-जंगल में बरकन्दाज़ों को भेजा। इनके भेजे हुए बरकन्दाज़ों में जो दिनाजपुर के उत्तर तरफ गये थे, उन्हीं के द्वारा रामानन्द गोस्वामी पकड़े गये।

आठवाँ अध्याय

कारागार

देवीसिंह के बरकन्दाज़ रामानन्द गोस्वामी को पकड़ कर उनसे यह बार बार पूछने लगे कि किसान लोगों ने किस जंगल में अनाज छिपाकर रखा है। रामानन्द ने इन लोगों के किसी प्रश्न का कुछ उत्तर नहीं दिया। इन्होंने बिल्कुल मौन धारण कर लिया।

बरकन्दाज़ लोग अपने प्रश्नों का कुछ उत्तर न पाकर इन्हें खूब पीटने लगे। किन्तु लगातार बहुत मारने-पीटने पर भी जब रामानन्द ने कोई बात नहीं कही, तब ये लोग इन्हें बाँध कर देवीसिंह की तहसील कचहरी को ले चले।

रामानन्द गोस्वामी ने अनुमान किया था कि मेरी पुत्र-वधू को पकड़ने के अभिप्राय से देवीसिंह ने इन बरकन्दाज़ों को भेजा है। किन्तु असली बात यह न थी। भागे हुए रैयतों ने किस जंगल में अपने खेत के अन्नों को चुरा करके रक्खा है, इसी

बात का अनुसन्धान करने के लिये ये बरकन्दाज़ दिनाजपुर के उत्तर में आये हुये थे। किन्तु यहाँ आकर के इन लोगों ने सुना कि रामानन्द गोस्वामी छद्मवेष में प्राणनगर के जंगल में निवास कर रहे हैं। रामानन्द गोस्वामी की दिनाजपुर में भी बहुत सी निष्कर ब्रह्मोत्तर ज़मीन थी। हेस्टिंग्स की दुष्टता से देश की सारी निष्कर ज़मीन के ऊपर कर लगा दिया गया। इस समय देश में कोई भी निष्कर ज़मीन का उपभोग नहीं कर सकता था। देवीसिंह के सिरिश्ते में रामानन्द के नाम बहुत खज़ाना बाकी लिखा हुआ था। बरकन्दाज़ लोग रामानन्द का नाम सुनते ही उनको ढूँढ़ने में प्रवृत्त हुए थे। उन्होंने यह सोचा कि ख़ज़ाना न देने के उद्देश्य ही से रामानन्द छद्मवेश में जंगल में भागकर छिपा हुआ है।

बरकन्दाज़ों ने रामानन्द को पकड़ कर देवीसिंह के कारागार में ला कर रखा। ये कारागार में आते ही यहाँ का भीषण दृश्य देख कर शीघ्र ही बेहोश हो गये।

× × × ×

यह कारागार कैसा भयंकर स्थान है। क्या स्वयं अत्याचार ही इस स्थान पर मूर्तिमान हो कर बैठा है! मनुष्य भी मनुष्य के ऊपर इतना अत्याचार कर सकता है! इस कारागार के उत्पीड़कों के हृदय क्या पाषाण के बने हैं? क़ैदखाने के ये हतभागी जिस प्रकार को यन्त्रणा को भोग रहे थे, वैसी यन्त्रणा नरक के पापी भी नहीं भोगते होंगे।

क्रन्दन एवं आर्तनाद के भीषण शब्द से सारा कारागार परिपूर्ण था। चारों तरफ़ से "मरारे, मरारे" "प्राण गयारे" इसी चीत्कार के शब्द सुनाई पड़ते थे। किसी किसी जगह में एक एक कैदी के हाथ की उँगलियों को एकत्र कसकर मुद्गर द्वारा

लोहे की कील ठोंकते थे, कहीं पर तीन चार सम्भ्रान्त ज़मीन्दारों को एकत्र बाँधकर उनकी पीठ पर लगातार कोड़े बरसाते। मारते-मारते उनकी पीठ पर की चमड़ी एकदम उड़ जाती थी। किन्तु उन्हीं चर्मशून्य पीठों पर कुछ काल के बाद काँटेदार बेल की डालों से आघात करते थे।

दूध के समान उज्ज्वल तथा सुख देने वाली शय्या पर भी जिन ज़मीन्दार सन्तानों को नींद नहीं लगती थी, आज उनकी पीठ पर सैकड़ों काँटे चुभ गये हैं, आज तप्त लौहदण्ड के प्रहार से उनकी पीठें जल गई हैं।

इन अत्याचार पीड़ित ज़मीन्दार तालुकेदारों की जो कुछ भी अस्थावर सम्पत्ति थी, वह पहले ही कुर्क एवं नीलाम हो गई थी। किन्तु इतने पर भी उनका ख़जाना वसूल नहीं हुआ। देवार्चना, दान-धर्म एवं अन्यान्य पारिवारिक व्यय के निर्वाहार्थ इन ज़मीन्दारों एवं तालुकेदारों की जो कुछ निष्कर भूमि थी, अथवा अपने जोत की ज़मीन थी, उन्हें भी देवीसिंह ने नीलाम करके थोड़े मूल्य पर ख़रीद कर लिया। देश के किसी भी व्यक्ति में ज़मीन ख़रीदने की सामर्थ्य नहीं थी। इसलिये किसी किसी जमीन्दार के हज़ार रुपये मूल्य की ज़मीन को देवीसिंह फर्जी नाम पर एक रुपये पर ख़रीद लेते थे।

कलेक्टर गुडलैण्ड देवीसिंह के इन अत्याचार एवं प्रवञ्चना मूलक व्यवहारों को कुछ भी सुन नहीं पाये। ज्ञात होता है, वे सोये हुए थे। यदि ऐसी बात न थी तो देश-व्यापी अत्याचार का बिन्दु-विसर्ग भी उनके कानों में क्यों न पहुँचा?

देवीसिंह के कारागार में ज़मीन्दारों एवं तालुकेदारों के अतिरिक्त हज़ारों प्रजाजन भी कैद करके रखे गये थे। प्रहार से इन किसानों में किसी के हाथ टूट गये थे, किसी के पैर टूट

गये थे, किसी की आंखें नष्ट हो गई थीं, कोई कोई एक दम चलने में असमर्थ हो गए थे। असंख्य कृषक प्रहार की यन्त्रणा को न सहकर मृत्यु का आह्वान करते थे और "संसार में परमेश्वर नहीं है", "संसार में परमेश्वर नहीं है" कह कर चिल्लाते थे।

देवीसिंह के बरकन्दाज़ इन निराश्रय अभागे किसानों के जिन हाथ-पावों को तोड़ लाये थे, उन हाथों ने क्या कभी किसी का अनिष्ट किया था? इन दुर्बल हाथों की गाढ़ी कमाई का फल सारे वंग-वासियों को अन्न प्रदान करता था। इन्हीं दुर्बल हाथों के परिश्रम से पैदा किये हुए फल के बदले ईस्ट इण्डिया कम्पनी चीन देश से अनेकों सुखाद्य वस्तुओं को लाती थी। इंगलैंडवासी जनसाधारण भी इन्हीं हाथों के परिश्रम से पैदा किये हुए फल का सर्वदा सम्भोग करते थे। ये निराश्रय किसान रात-दिन परिश्रम करके जो फल प्राप्त करते थे, उसका शतांश भी स्वयं उपभोग नहीं करते थे।

तब फिर इनके ऊपर इतना घोर अत्याचार क्यों? इस प्रश्न के उत्तर में हम क्या कहें? ईस्ट इण्डिया कम्पनी को केवल धन से प्रयोजन रहता था। किसानों को सर्वस्व प्रदान करना ही पड़ेगा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी को धर्म-शिक्षा प्रदान करने के लिये बड़ी २ तनख्वाहों पर लार्ड विशप नियुक्त करना पड़ता था, मालगुजारी वसूल करने के निमित्त गुडलैण्ड सरीखे उपयुक्त कलेक्टर एवं देवीसिंह सरीखे उपयुक्त दीवान को नियुक्त करना पड़ता था, शान्तिरक्षक एवं विचारक नियुक्त करना पड़ता था, कृषकों को अपना यथा सर्वस्व प्रदान करके इनका व्यय-वहन न करने से देश-शासन का व्यय किस प्रकार से चलता? किसान अहर्निश परिश्रम करके अर्थ सञ्चय करें, किन्तु अपनी परिश्रम की कमाई पर उनका कोई अधिकार नहीं।

संसार में यदि इसी तरह का न्याय-विचार हो तो चोर की निन्दा ही क्यों की जा सकती है? दस्युओं को दण्ड क्यों दिया जा सकता है? यदि विचारक, शान्तिरक्षक, एवं धर्म-शिक्षार्थ लार्ड विशप इत्यादि नियुक्त करने के लिये प्रजा का सर्वनाश ही करना हो तो उस विचारक, उस शान्तिरक्षक, उस लार्ड विशप को नियुक्त न करके, प्रजा को एकबारगी चोर, डाकुओं के हाथों में समर्पण कर देना अच्छा होता!

वस्तुतः इस संसार में जब तक विचारक, शान्तिरक्षक एवं धर्म-शिक्षार्थ लार्ड विशप की आवश्यकता रहेगी, तब तक किसानों को—निम्न श्रेणीस्थ लोगों को—निश्चय-रूप से इस प्रकार के कष्ट भोगने होंगे। किन्तु देवीसिंह केवल किसानों को ही मारने से शान्त न हुआ। उसके कारागार में ज़मींदार, तालुकेदार एवं प्रजा के परिवार की स्त्रियां तक रखी गई थीं।

इस कारागार में बच्चे को छाती पर रखे हुए माता चिल्ला रही थी। देवीसिंह के सिपाही उसके ऊपर भी बारम्बार बेंत बरसाते थे। इन स्त्रियों के प्रति तरह तरह से जो वीभत्स-भीषण अत्याचार किये जाते थे, उसे विस्तारपूर्वक लिखने से पुस्तक निश्चय ही अश्लीलता-पूर्ण हो जायगी। पाठक और पाठिकायें लेखक को एक नितान्त जघन्य रुचि का मनुष्य समझेंगी। किन्तु ऐतिहासिक उपन्यास में इन सब विषयों का एकबारगी उल्लेख न करना भी उचित नहीं जान पड़ता।

सैकड़ों कुल-कामिनियाँ देवीसिंह के जेल में बैठ कर के क्रन्दन कर रही थीं। इनके चीत्कार एवं आर्तनाद से कारागार गूंज रहा था। कारागार के पहरेदार किसी स्त्री को नंगी कर के मारते थे, किसी स्त्री को उसके पति के सामने नंगी कर के उसका धर्म नष्ट करने के लिये, किसी सिपाही

के सिपुर्द कर देते थे। *किसी रमणी की गोदी के शिशु को मारना आरंभ करते ही उसकी माँ शिशु को बचाने के निमित्त प्राणपण से हाथ द्वारा अपनी छाती में उसे छिपाने की चेष्टा करती थी, उस समय असंख्य बेंत उसके हाथों पर पड़ते थे।

× × × ×

पाठक! इस भीषण अत्याचार के विषय को लिखने में लेखनी और आगे नहीं बढ़ती, हाथ काँप उठता है, किन्तु यहाँ एक प्रश्न करता हूँ—नानाधुन्धपन्त की अपेक्षा भी क्या देवीसिंह अधिक नराधम नहीं था? नानाधुन्धपन्त का नाम सुन कर लोगों में घृणा उत्पन्न होगी। किन्तु जिस समय देवीसिंह की ये करतूतें जाहिर हो गईं, उस समय वारेन हेस्टिंग्स, गंगा गोविन्दसिंह एवं हेस्टिंग्स के पक्ष के सभी अंगरेज़ लोगों ने देवीसिंह की रक्षा के लिये प्राण-पण से चेष्टा की थी। यही तो पुरातन ईस्ट-इण्डिया कम्पनी का सद्विचार है! यही उस काल के सुसभ्य अंगरेज़ों के सदाचरण हैं!

रंगपुर, दिनाजपुर के उन लोगों के परिवार की स्त्रियाँ पकड़ कर अभी तक देवीसिंह के कारागार में नहीं लाई गई थीं, वे इन भीषण अत्याचारों का हाल सुन कर पहले अपनी २ विषय-सम्पति, बाद में अपनी सन्तान-सन्तति तक को बेंच खज़ाना अदा करने लगीं। किन्तु देश के सभी लोग अपने अपने घर और गाय-बैल बेंचने के लिये लालायित थे। पर ख़रीदने वाले कहीं मिलते नहीं थे। इसलिये जिन गाय-बैलों के मूल्य बीस पचीस रुपये से कम न थे, वे एक एक, डेढ़ डेढ़ रुपये में बिकने लगे।*

---

* देखो परिशिष्ट नं० १४ * देखो परिशिष्ट नं० १५

नवाँ अध्याय

प्राणनगर का जंगल

पहले लिखा जा चुका है कि रामानन्द गोस्वामी के पकड़े जाने के थोड़े ही देर पहले उनकी पुत्र-बधू सत्यवती देवी ने वृद्धा दासी एवं प्रजा के विश्वस्त दो लोगों को संग लेकर प्राणनगर के घने जंगल में प्रवेश किया। प्राणनगर का सारा जंगल हिंस्रजन्तुओं से परिपूर्ण था। इन हिंस्रपशुओं भय से कोई दिन में भी इस जंगल में प्रवेश करने का साहस नहीं करता था। किन्तु ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के शासन-काल में ये देशीय दुर्बल लोग इन हिंस्रजन्तुओं की अपेक्षा कम्पनी के सिपाहियों एवं साहबों से अधिक डरते थे। इसलिये कम्पनी के लोगों के आक्रमण से धर्म-रक्षा करने के लिये वङ्ग-महिला परम साध्वी सत्यवतीदेवी ने प्राणनगर के हिंस्रजन्तुओं के स्थान में आश्रय ग्रहण किया।

माघ का महीना था। दिनाजपुर के उत्तर प्रान्त के उस दारुण शीत के निवारणार्थ सत्यवती के पास पहने हुए वस्त्र के अतिरिक्त और दूसरा कोई वस्त्र नहीं था। रामानन्द गोस्वामी की स्त्री का नाम सुनीतिदेवी था। सुनीतिदेवी के मर जाने पर इनकी पुत्र-बधू सत्यवती देवी प्रत्येक वर्ष जाड़े के दिनों में देश के सारे कंगाल-गरीब लोगों को जाड़े के कपड़े देकर उनका शीत निवारण करती थी। ग़रीब लोगों को जाड़े के वस्त्र देने में प्रत्येक वर्ष एक हज़ार से अधिक रुपये खर्च करती थीं। किन्तु आज उन्हीं की शीत-निवारणार्थ एक वस्त्र भी नहीं रहा। रामानन्द के शिष्यों में प्रायः सभी प्रत्येक वर्ष जाड़े के दिनों में उनके लिये एक एक जोड़ा

काश्मीरी शाल भेज देते थे। जिसके घर में इतने असंख्य शाल-दुशाले भरे पड़े रहते थे, आज उसकी पुत्र-बधू एक वस्त्रा भिखारिन के से वेश में हिंस्रजन्तुओं से भरे हुए प्राणनगर के जंगल में घूम रही थी। बङ्गवासियों में से किसी में भी ऐसी हिम्मत न हुई कि इन्हें आश्रय देकर इनके धर्म की रक्षा करता। धिक्कार है वङ्ग समाज को! धिक्कार है वङ्ग देश को! इससे तो देश का एक दम चौपट हो जाना ही अच्छा था!

एकवस्त्रा सत्यवतीदेवी जंगल के बीच में निवास करके रात्रि बिताती थी। ओस से पहिना हुआ वस्त्र गीला हो जाता था, सर्वाङ्ग पर ओस के कण गिरते रहते थे। किन्तु हृदय-स्थित प्रेम, भक्ति एवं स्नेह की क्या ही अपूर्व महिमा है! आर्द्रवस्त्र पहनी हुई देवी सत्यवती अपने सारे कष्टों, सारे दुखों को भूल कर केवल श्वशुर की विपत्ति के विषय में ही सोच-विचार किया करती। वह निजी कष्ट की ज़रा भी परवाह नहीं करती थी। वृद्ध श्वशुर के कष्टों और यन्त्रणाओं के विषय में सोचते-सोचते वह अपने शारीरिक कष्टों को एकबारगी भूल गई। रात भर वह इसी सोच में रहती थी कि प्रातः काल होते ही किस उपाय का अवलम्बन करूँ।

किन्तु दुःख की रात का अन्त शीघ्र नहीं होता है। सत्यवती सोचती थी कि रात्रि के अन्त होते ही श्वशुर के उद्धार के लिये किसी उपाय का अवलम्बन करूँगी। इस लिये दो पहर रात्रि रहने ही पर उसे ऐसा भान हुआ कि अब केवल आध घण्टे ही में रात्रि का अन्त होगा। किन्तु कितने आध घण्टे बीत गये तो भी इस दुःख की रात्रि का अन्त नहीं हुआ। उस समय वह और धैर्य धरने में समर्थ नहीं हुई। किस उपाय

से श्वशुर का उद्धार करूंगी, इसी विषय में रूपा एवं जगा के साथ बातचीत करने लगी।

पाठकों की जानकारी के लिये इस जगह पर रूपा एवं जगा का परिचय दिया जाता है। इन लोगों का पिता माधवदास रामानन्द गोस्वामी के घर से लगी हुई ज़मीन को जोतता था। परन्तु अति बाल्य-काल ही में इनके पिता-माता दोनों मर गये। तब परम दयावती रामानन्द की सहधर्मिणी सुनीति देवी ने इन्हें अन्न-वस्त्र देकर प्रतिपालन किया था। उस समय ये ज़मीन जोतने बोने के योग्य न थे। किन्तु सुनीतिदेवी इनकी जोत की ज़मीन को दूसरे लोगों से जुतवा कर, जोतने बोने के खर्च के बाद जो कुछ लाभ होता, उसे इन दोनों निराश्रित बालकों के लिये अमानत करके रखती थीं। ये जब बालिग हुए, उस समय सुनीति देवी ने उन्हें घर बनाने एवं गाय-बैल खरीदने के निमित्त वे अमानत के रुपये दे दिये। ये दोनों रामानन्द गोस्वामी पर पिता की तरह श्रद्धा एवं भक्ति रखते थे एवं उनके कल्याण के लिये अपने प्राण देने को भी तैयार रहते थे।

वस्तुतः ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दीवानी पाने के पूर्व इस देश के ज़मीन्दार अपनी २ रैयतों को सन्तान को तरह स्नेह-पूर्वक पालते थे। रैयत भी अपने ज़मींदारों पर पिता की तरह श्रद्धा एवं भक्ति रखते थे। किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दीवानी पा जाने पर क्रमशः ज़मीन्दारों का देय राजस्व नाना प्रकार से बढ़ने लगा। सैकड़ों ब्राह्मणों के निष्कर ज़मीन के ऊपर कर रख दिये गये। इसी कारण ज़मीन्दार अनन्यो-पाय होकर प्रजा के ऊपर भी जमा बढ़ाने लगे। बस, प्रजा एवं ज़मीन्दारों में शत्रुता का सूत्रपात हुआ। ईस्ट इण्डिया

कम्पनी के शासन के प्रारम्भ से जितनी ज़मीन का कर बढ़ने लगा, उतना ही रैयतों एवं ज़मीन्दारों के बीच दिन प्रति दिन विद्वेषानल प्रज्वलित होने लगा।

मुसलमानों की अमल्दारी में किसी ज़मीन्दार को कभी अपनी रैयत के विरुद्ध मुकदमे नहीं चलाने पड़ते थे। न कोई प्रजा भी अपने ज़मीन्दार के विरुद्ध कभी नालिश करती थी, जमीन्दार कभी अपनी रैयत को उसके बने बनाये घर से उजाड़ते नहीं थे। अत्यन्त स्वेच्छाचारी राजा टीपू सुल्तान के शासन-काल में भी मैसूर प्रदेश के ज़मीन्दार, प्रजा को, बसे हुए घर से उजाड़ना नितान्त धर्म-विरुद्ध समझते थे। राजपूताने की प्रत्येक प्रजा अपने रहने के घर को 'बपौती' अर्थात् पैतृक सम्पत्ति कहती है।

× × × ×

सन् १७७१ ई० में जिस समय रामानन्द के पुत्र प्रेमानन्द, देवीसिंह की पुर्णिया की कचहरी में पकड़कर लाये गये थे, उस समय रूपा एवं जगा मालदा में अपने निजी घर में निवास कर रहे थे। लोगों से रामानन्द गोस्वामी की विपत्ति का समाचार सुनकर ये दोनों भाई अपनी अपनी स्त्री तथा पुत्र आदि को ससुराल में भेज कर पुर्णिया चले गये। किन्तु उस जगह रामानन्द से इनकी भेंट न हुई। इनके पुर्णिया पहुँचने के छः महीने पहले ही रामानन्द गोस्वामी अपने विश्वस्त प्रजाजनों को साथ में लेकर रंगपुर की ओर भाग गये थे। उन सब प्रजाजनों के घर पुर्णिया में थे। रूपा एवं जगा ने पुर्णिया में पहुँच कर उन लोगों के परिवार के लोगों से सुना कि रामानन्द भाग कर रंगपुर चले गये हैं। एक क्षण का भी विम्लब न करके रामानन्द के अनुसन्धान के लिये वे फ़ौरन रंगपुर को

चल पड़े। रंगपुर में बहुत अनुसन्धान के बाद रामानन्द से भेंट हुई। उस समय से ये बराबर रामानन्द गोस्वामी के साथ में रहते थे। गत दस वर्ष के भीतर जगा अपने घर चार पाँच बार जाकर अपने परिवार वालों के साथ भेंट-मुलाकात कर आया था। इतने दिनों में रूपा दो बार से अधिक घर नहीं गया था। ये दोनों भाई कभी एक साथ घर नहीं जाते थे। रूपा घर जाता, तो जगा रामानन्द के साथ रहता और जगा के घर जाने पर रूपा उनके साथ में रहता था। इस प्रकार रूपा एवं जगा रामानन्द की विपत्ति के भागी बनकर इनके साथ जंगल-जंगल घूमते फिरते थे। आज ये दोनों भाई इस निविड़ वन में रामानन्द की पुत्र-बधू के पास बैठ कर आँसू बहा रहे थे। जब कभी जंगल के बीच से बाघों का गरजना सुनकर सत्यवती चौंक उठती तो ये हाथों में लाठी लेकर खड़े हो जाते और उसे निर्भय करते।

कुछ समय सोचने-विचारने के बाद सत्यवती बोली—"रूपा, ठाकुर के उद्धार के लिये इस समय कौन सा उपाय करना होगा? इस वृद्धावस्था में इन्हें मारने से निश्चय इनकी मृत्यु हो जायगी। इन्होंने कितना दान-धर्म किया था। क्या परमेश्वर ने इनके भाग्य में अपमृत्यु ही लिखी है?"

रूपा बोला—"बहूजी, मैंने उस समय उनसे बार बार कहा था कि आप हम लोगों के साथ ही जंगल में चल चलें, किन्तु इस बात से वे सहमत नहीं हुए। उन्होंने कहा, 'हमारे पुत्र की जो दशा हुई है, हमारी भी वही दशा हो।' पुत्र-शोक से वृद्ध ठाकुर की बुद्धि एकदम लोप हो गई थी।"

सत्यवती—"किन्तु इनके उद्धार के लिये इस समय कौनसा उपाय करना होगा?"

जगा—"उद्धार तो अभी कर सकते हैं। आखिर वहाँ कितने बरकन्दाज़ होंगे! बहुत होंगे तो दस-बारह होंगे। हम दोनों भाई लाठी लेकर जावें तो उन पाँच छः लोगों से ठाकुर को छीन सकते हैं। किन्तु वे तो ऐसा करने से भी मना करेंगे।"

सत्यवती—"उन्होंने यह सोचा है कि स्वयं उनके पकड़ जाने पर मुझको कोई पकड़ने नहीं आयेगा। यही विचार कर मुझे बचाने के निमित्त उन्होंने इस मार्ग का अवलम्बन किया।"

रूपा—"बहूजी, जिस किसी मार्ग का अवलम्बन कीजिये, किन्तु देवीसिंह के हाथ में रहना बड़ा कष्टप्रद है। ठाकुर ने आप को लेकर काशी जाने को कहा है। इस समय आप जो कहें, हम लोग वही करेंगे। जिस समय तक हमारे शरीर में प्राण हैं, तब तक आप को कोई छू नहीं सकता है।"

सत्यवती—"ठाकुर को इस प्रकार डाकुओं के हाथों में देकर काशी जाने की इच्छा नहीं होती। उनका उद्धार करने के लिये प्राणपण से चेष्टा करनी होगी। इसके लिये यदि कोई मेरा धर्म नष्ट करना चाहेगा तो तत्क्षण मैं आत्महत्या कर के धर्म की रक्षा करूँगी।"

रूपा—'उनके उद्धार के लिये आप क्या करने को कहती हैं?'

सत्यवती—"देवीसिंह के प्यादे निश्चय ही इन्हें पकड़ कर दिनाजपुर ले जायँगे। हम लोग पीछे २ दिनाजपुर चलें। हम लोग इतनी दूर रहें, जिससे हम लोगों को कोई पहचान न सकें। यदि रास्ते में प्यादे इन्हें मारने लगेंगे, तो फौरन उन दुष्ट लोगों के हाथ से छीन कर उन्हें लाना पड़ेगा। उनके पीटे जाने की बात को जब मैं सोचती हूँ तो मेरी छाती फटने लगती है और यदि बरकन्दाज़ इन्हें कोई कष्ट न देकर दिनाज-

पुर ले जायँगे, तब साथ-साथ दिनाजपुर तक चलेंगे। वहाँ पर उनके अनेकों शिष्य हैं। वे लोग इस विपत्ति के समय इनके उद्धार के लिये अवश्य ही चेष्टा करेंगे।"

जगा—"बहूजी, दिनाजपुर में आप के जितने ज़मीन्दार शिष्य थे, प्रायः वे सभी इस समय जेल में सड़ कर मर रहे हैं और कई देश छोड़ कर चले गये हैं। शिष्य-सेवकों पर अधिक भरोसा न करें। ठाकुर को छीन कर लाये बिना उद्धार का कोई दूसरा उपाय नहीं है। इस समय आप जो कहेंगी, वही करेंगे।"

सत्यवती—"तुम लोग केवल दो आदमी हो। देवीसिंह के आदमी यदि तुम दोनों आदमियों को भी पकड़ कर ले जायँगे, तब तो मैं बड़ी विपत्ति में पडूंगी। इसलिये झगड़ा-फसाद न करके जिस उपाय से उनका उद्धार किया जा सके, उसी के लिये चेष्टा करना उचित है।

रूपा—"तब उन लोगों के पीछे-पीछे दिनाज पुरजाने से ही हम लोगों का क्या लाभ होगा? उन्हें दिनाजपुर ले जाते ही जेल में बन्द करके रखेंगे। और जेल में रख कर यदि वे उन्हें मारेंगे तब हम लोग क्या करेंगे?"

सत्यवती—"जेल में जाने का कोई उपाय नहीं है?"

रूपा—"जेल में किस प्रकार जाने देंगे? वहाँ सैकड़ों स्त्री-पुरुषों को मारते होंगे।"

सत्यवती—"तब इस समय ठाकुर के उद्धार के लिये किस उपाय का अवलम्बन करना चाहिये?"

जगा—"हम लोग बाल्यावस्था ही से उनके अन्न को खाकर बड़े हुए हैं। यदि प्राण देने पर भी उनकी रक्षा हो सकती होगी, तब भी हम लोग प्राण देने को तैयार हैं। किन्तु

इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं देखता। इस समय आप जो कहें, वही करेंगे।"

इन लोगों के परस्पर बातचीत में रात्रि बीत गई। प्रातः काल होते ही जंगल से बाहर होकर ये तीनों व्यक्ति दिनाजपुर की ओर चले।

दसवाँ अध्याय

हरेराम

सन् १७८३ ई० के जनवरी मास में देवीसिंह के बरकन्दाज़ों के द्वारा रामानन्द गोस्वामी पकड़े गये थे। बरकन्दाज़ों ने तहसील कचहरी से लगे हुए जेलखाने में इन्हें लाकर रखा। जेलखाने का नाम सुन कर पाठक सोचते होंगे कि आज कल के गवर्नमेण्ट के जेलों की तरह देवीसिंह का भी जेल होगा। किन्तु वर्तमान काल में गवर्नमेण्ट के जेल जिस प्रणाली से गठित हैं, इस प्रणाली से बने हुए जेल पहले इस देश में नहीं थे। वर्तमान काल में प्रत्येक पुलिस स्टेशन (थाने) में अभियुक्त के रखने के लिये जिस प्रकार एक स्वतंत्र घर होता है, उसी प्रकार पूर्व काल में बड़े बड़े ज़मीन्दारों के तहसील कचहरी में दो एक घर होते थे। ज़मीन्दार कभी कभी किसी दुश्चरित्र प्रजा को चोरी इत्यादि अपराध में पकड़ करके दो एक दिन के लिये इस घर में बंद कर रखते थे। इस तरह की चारों तरफ़ को दीवार से रहित गृह को ही लोग कारागार कहते थे। वर्तमान काल में अपराधी लोगों को प्रायः आजीवन जेलों में रहना पड़ता है; इस लिये इस समय दीर्घकाल के रहने योग्य कारागृह सर्वत्र बने हुए हैं। किन्तु पहले इस प्रकार के

जेलों की अधिक आवश्यकता ही नहीं थी।

देवीसिंह के दिनाजपुर की तहसील कचहरी से लगे हुए कारागार के चारों तरफ़ कोई घेरा न था। बिना घेरे के एक प्रकार के घर में ज़मीन्दारों एवं किसानों को लाकर बाँध रखते थे। किन्तु १७८२ ई० के प्रारम्भ ही से इतनी अधिक संख्या में लोगों को पकड़ कर लाने लगे कि उस घर में और अधिक लोगों को रखने का स्थान न रहा। समय समय पर बहुत से लोगों को घर के आँगन में रख कर मारते-पीटते थे। रामानन्द गृह में प्रवेश करते ही बेहोश हो गये थे। इसलिए कारागार में प्रवेश करने के बाद इन्हें अधिक मार नहीं खानी पड़ी थी। देवीसिंह के आदमियों ने सन् १७८२ ई० के प्रारम्भ से १७८३ ई० के दिसम्बर मास तक रंगपुर के ज़मीन्दारों, प्रजा एवं किसानों के ऊपर जिस प्रकार के अत्याचार किये, उन्हीं का वर्णन संक्षिप्त रूप से यहाँ पर किया जाता है।

देवीसिंह को प्रायः सर्वदा दिनाजपुर ही में रहना पड़ता था। उनके हाथों में बहुत से कामों का भार रहता था। वे कलेक्टर के दीवान थे। उधर दिनाजपुर के नाबालिग़ राजा की देखरेख का भार भी इन्हीं के हाथों में था। इसलिये साल में दो एक बार के अतिरिक्त रंगपुर जाने की विशेष सुविधा नहीं होती थी, किन्तु रंगपुर की सारी ज़मीन कल्पित नाम से इजारा लेली थी। रंगपुर के इजारे के ख़ज़ाने की वसूली के लिये उन्होंने कृष्णप्रसाद को सन् १७८१ ई० के अप्रैल मास में नियुक्त किया। * जब कृष्णप्रसाद ने रंगपुर के सभी ज़मीन्दारों से जमा कबूलियत किया तो कई प्रधान

---

* देखो परिशिष्ट नं० १५।

प्रधान ज़मीन्दार देवीसिंह को देश की दुरवस्था बताने के लिये दिनाजपुर आकर के इनसे मिले। इस समय ज़मीन्दारों में और वृद्धि जमा प्रदान करने की शक्ति न थी। पहले ही से उनका जमा इतना बढ़ गया था कि इस साल गवर्नर जनरल ने इश्तहार द्वारा इजारदारों को और वृद्धि जमा तलब करने से निषेध कर दिया था। किन्तु देवीसिंह ने समझा कि गवर्नर जनरल का इश्तहार लोगों की आँखों में धूल डालने का केवल जाल मात्र है। इसलिये आये हुए ज़मीन्दारों ने जिस समय यह कहा कि वृद्धि जमा देने में हम बिलकुल असमर्थ हैं, उस समय देवीसिंह बहुत क्रुद्ध हुए; एवं फ़ौरन इन्हें कैद कर के इनके ऊपर मार्शल बैठाया। इसके दूसरे दिन हरेराम को साथ में देकर के इन्हें बन्दी रूप में रंगपुर भेजा। हरेराम ने रंगपुर आकर के इनसे एवं दूसरे ज़मीन्दारों से वृद्धि जमा की कबूलियत तलब की थी और कृष्णप्रसाद ने इन ज़मीन्दारों को दिनाजपुर जाने दिया था, इसलिये वे बरख़ास्त किये गये।

जब हरेराम कृष्णप्रसाद की जगह पर रंगपुर के इजारे का ख़ज़ाना वसूल करने के कार्य पर नियुक्त होकर आया तो उसने सारे ज़मीन्दारों को कैद कर के बेतों से मारने का आदेश दिया। बेतों से मारने पर भी जिन ज़मीन्दारों ने वृद्धि जमा की क़बूलियत देना अस्वीकार किया, उन्हें गाय की पीठ चढ़ा कर गाँव के चारों तरफ घुमाने का आदेश दिया।

देश-प्रचलित प्रथा के अनुसार इस प्रकार से दण्डित व्यक्ति को एक बारगी जाति-भ्रष्ट होना पड़ता था। इसलिये दो चार ज़मीन्दारों को गाय की पीठपर चढ़ाते ही बाकी सभी ज़मी-

न्दार अपने जाति-मान के रक्षार्थ फौरन वृद्धि जमा को क़बू-लियत देकर के छुटकारा पाने लगे।

किन्तु क़बूलियत देने के बाद ही हरेराम ने ज़मीन्दारों से खज़ाना तलब किया। ज़मीन्दारों में एक पैसा देने की भी सामर्थ्य नहीं थी। ख़ज़ाना अदा करने के लिये हरेराम ने उन लोगों की सारी निष्कर ज़मीन एवं घर की सारी सामग्री को नीलाम करना आरंभ कर दिया। देवीसिंह के आदमी थोड़े ही मूल्य में इन चीज़ों को खरीदने लगे। किन्तु इतने पर भी पूरा रुपया वसूल न हुआ। जो कुछ वसूल भी होता, वह सभी अपवाद स्वरूप वसूल होता, उससे ख़ज़ाने का कुछ भी अंश पूरा न होता। तब हरेराम ज़मीन्दारों को पुनः पकड़वा कर क़ैद करने लगा एवं बेतों से पिटवाने लगा। ज़मीन्दारों की स्त्रियों को भी पकड़वा कर कचहरी में बुल-वाता और उन्हें अपमानित करता। जो ज़मीन्दार वृद्धि जमा का क़बूलियत देकर के गो की पीठ पर चढ़ने के दण्ड से बच गये थे, उनमें से प्रत्येक को इस समय एक २ बार गो की पीठ पर चढ़ना पड़ा। देवीसिंह के आदमी पीछे पीछे बाजे बजा कर उन्हें गाँव के चारों तरफ़ घुमा कर के लाने लगे।

उधर ज़मीन्दारों की प्रजा लोगों को पकड़ कर ज़मीन्दारों को वे जो मालगुज़ारी देते थे, उसे माँगने लगे। प्रजा में भी ख़ज़ाना देने की सामर्थ्य न थी। इस प्रकार तब उनके गाय-बैल भी नीलाम किये जाने लगे। और इस प्रकार क्या ज़मीन्दार, क्या रैयत, सभी पर घोर अत्याचार एवं निष्ठुरता का व्यवहार होने लगा।

इन सब ज़मीन्दारों, प्रजा लोगों एवं उनके परिवार की स्त्रियों पर जिस प्रकार के अत्याचार हुए, वे दिनाजपुर के

कारागार की अवस्था लिखते समय कुछ बतलाये गये हैं। उन सब बातों को पुनः विस्तारपूर्वक लिखने का कोई प्रयोजन नहीं। संक्षेप में केवल इतना ही कहा जाता है कि दिनाजपुर के अत्याचार से पीड़ित प्रजा एवं ज़मीन्दार आखिरकार देवीसिंह के अत्याचारों से छुटकारा पाने के लिए जंगलों में भाग कर बाघ, भालु आदि हिंस्रजन्तुओं के मुँह में आश्रय ग्रहण करते। किन्तु रंगपुर की प्रजा एवं ज़मीन्दारों के लिये तो यह दरवाज़ा भी बन्द था। हरेराम बड़ा धूर्त था। कोई ज़मीन्दार अथवा प्रजा कहीं भाग कर न जाने पाए, इसलिये उसने गाँव-गाँव में पहरेदार नियुक्त कर दिये थे। इन पहरेदारों के वेतन के निमित्त ज़मीन्दारों के ऊपर एक और चौकी-बन्दी नामक नया कर रख दिया गया।

ये पहरेदार सर्वदा निराश्रय रैयतों के ऊपर घोर अत्याचार करने लगे। बहुत सी रैयत अपनी स्त्री एवं कन्या का अपमान न सहने के कारण फांसी लगा कर प्राण-त्याग करने लगे।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स साहब को घूस देने के लिये रुपये संग्रह करने के निमित्त नर-पिशाच देवीसिंह ने हरेराम जैसे पापियों के द्वारा इस प्रकार देश को उजड़वाना आरंभ किया।

इन अत्याचारों के कारण दिनाजपुर की तरह रंगपुर की सारी चिज़ों का मूल्य एक दम गिर गया। रंगपुर में तमाकू खूब पैदा होती थी। किन्तु तमाकू के अधिकांश खेत बिना जोते बोये पड़े थे। और जो कुछ भी तमाकू पैदा होती, उसे खरीदने वाला कोई न मिलता। देश-प्रचलित अत्याचार के भय से विदेशी वणिक् भी उस समय रंगपुर में प्रवेश करने

का साहस नहीं करते थे। रंगपुर और दिनाजपुर एक दम श्मशान-क्षेत्र हो रहे थे।

हरेराम ने इस प्रकार के अत्याचार से बहुत रुपये इकट्ठे किये, किन्तु देवीसिंह इतने पर भी सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने और अधिक रुपये वसूल करने के लिये हरेराम के पास हुक्म भेजा। दिनाजपुर में स्वयं देवीसिंह ने अठारह तरह के कर लगाये थे। किन्तु हरेराम रंगपुर में इक्कीस प्रकार के कर वसूल करने लगा। हरेराम ने देवीसिंह के पास लिख भेजा कि कृषकों में बहुत से लोगों ने घर की सारी सामग्री बेंच डाली है। इसके अतिरिक्त अपने बालबच्चों तक को बेंच रहे हैं, किन्तु खरीदने वाले नहीं मिलते। इसलिये रुपये वसूल करने में कुछ बाधायें उपस्थित हो रही हैं। देवीसिंह हरेराम के इस पत्र को पाकर उस पर अत्यन्त असन्तुष्ट हुए, किन्तु उन्होंने हरेराम को बरख़ास्त नहीं किया। क्योंकि इसको वे विशेष कार्य-दक्ष समझते थे। सन् १७८३ ई० के जुलाई मास में हरेराम के साथ मिलकर वसूली का काम करने के लिये उन्होंने सूर्यनारायण को मुक़र्रर किया। सूर्यनारायण भी हरेराम की अपेक्षा अधिक कार्य-दक्षता का परिचय देने के निमित्त ज़मीन्दारों, प्रजा लोगों एवं उनके परिवार की स्त्रियों के प्रति घोर अत्याचार करने लगा। किन्तु इससे भी एक पैसा वसूल न हुआ। इस पर देवीसिंह ने अपने कनिष्ठ भ्राता भेखधारीसिंह को भेजा। भेखधारीसिंह भी नाना प्रकार के अत्याचार करने पर भी रुपये वसूल न कर सके। भला वसूल करते भी किस प्रकार? हरेराम की दुष्टता से ज़मीन्दार एवं प्रजा सभी सर्वस्व खो बैठे थे। उनमें एक पैसा देने की शक्ति भी नहीं रह गई थी। देवीसिंह ने जिस समय देखा कि भेखधारी

सिंह के द्वारा भी काम नहीं हुआ, उस समय १७८३ ई० के दिसम्बर मास में वे स्वयं रंगपुर आये। उन्होंने प्रजा तथा ज़मीन्दारों के अतिरिक्त महाजनों के ऊपर भी अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। देवीसिंह के इन आख़िरी अत्याचारों से तंग आकर प्रजा कहने लगी, प्राण चाहे जायँ या रहें, अब तो मृतबन्धु-बान्धवों का तर्पण अत्याचारियों के रक्त ही से करना होगा। इतने दिनों के अत्याचार के बाद रंगपुर के निर्बोध अधिवासियों में ज्ञान का उदय हुआ। उन लोगों ने इस बात का दृढ़ संकल्प किया कि अब अत्याचार का अवरोध करेंगे। किन्तु यदि पहले ऐसा ज्ञान उदय हुआ होता तो इतनी यन्त्रणाएँ क्यों सहनी पड़तीं? हीन-बुद्धि बंगालियों की निद्रा कभी जल्दी भङ्ग नहीं होती, इसलिये उन्हें हमेशा दुर्दशा सहनी पड़ती है।

ग्यारहवाँ अध्याय

ननकू

दिवस का अवसान समीप था। देवीसिंह की दिनाजपुर की तहसील कचहरी के कारागार के कैदियों में प्रायः सभी ज़मीन पर पड़े हुए थे। कोई वेदना के मारे क्षीण स्वर से रुदन कर रहा था, कोई एक बारगी बेहोश हो गया था। एक स्त्री की गोद का बच्चा पिटने एवं अन्नाभाव से मर गया था। अबला पुत्र-शोक एवं निजी शारीरिक यन्त्रणा से पगली हो गई थीं। वे कभी हँसती कभी गातीं एवं कभी चिल्ला कर रोने लगती थीं।

वृद्ध रामानन्द गोस्वामी को बरकन्दाज़ पकड़ कर पिछले

दिन लाये थे। वे इन दो दिनों से अचेत अवस्था में पड़े हुए थे। बरकन्दाज़ों ने पकड़ते ही उन्हें खूब पीटा था, उस मार के बाद फिर दस बारह कोस बरकन्दाज़ोंके साथ साथ चलना पड़ा था। जो रामानन्द गोस्वामी पालकी की सवारी के बिना शिष्यों के घर भी नहीं जाते थे, कड़ी धूप में क्षणभर के लिये भी बाहर होने पर नौकर जिनके मस्तक पर छाता लेकर चलते थे, जिनकी पादुका को सैकड़ों शिष्य अपने मस्तक पर रखते थे; उनके लिये दस बारह कोस पैदल चलना कितना कठिन काम है, इसे दुर्बल बंगाली सहज ही में समझ सकेंगे। रामानन्द गोस्वामी की अवस्था प्रायः सत्तर वर्ष की थी। इसलिए प्रहार एवं पैदल चलने के कठिन परिश्रम और दुःख के कारण वे हठात् वातव्याधि से बेहोश हो, ज़मीन पर पड़े हुए थे। इस रोग से इनकी अकस्मात् मृत्यु हो जाने की सम्भावना थी। किन्तु आजीवन इनका शरीर बड़ा ही स्वस्थ था। वे सदाचारी एवं सच्चरित्र मनुष्य थे। आहार-विहार में सदा नियम पूर्वक रहते थे। इसलिए इस प्रकार के स्वस्थ शरीर से जीवात्मा सहज नहीं निकल सकता था। इसी कारण अब तक भी रामानन्द की मृत्यु नहीं हुई थी, केवल मूर्छित होकर पड़े हुए थे।

तहसील कचहरी के जमादार रामसिंह क़ैदघर के बराण्डे में बैठे हुए थे। एक चौदह पन्द्रह वर्ष का बालक धोती पर चपकन, इसके ऊपर मोटे कपड़े की सटी हुई बगलबन्दी पहन कर बराण्डे के सामनेवाले आँगन में खड़ा था। बालक यह देखने के लिये टकटकी लगा कर घर के द्वार की ओर ताक रहा था कि घर के अन्दर क्या है? बालक के प्रशस्त ललाट पर विभूति-रेखा विराजमान थी।

रामसिंह दिनाजपुर के कलेक्टर के जमादार थे। इनके पूर्व पुरुषों का वासस्थान पंजाब देश था। दो तीन पुश्त से वे दिनाजपुर में ही बस गये थे। कलेक्टर के दीवान देवीसिंह ने रामसिंह को तहसील कचहरी के कारागार का अध्यक्ष बनाकर भेजा था। रामसिंह की यहाँ आने की इच्छा नहीं थी। किन्तु देवीसिंह थे दीवान! इनके हुक्म को कैसे टाल सकते थे। तहसील कचहरी में कम्पनी के आदमी को देख कर, ज़मीन्दार तथा प्रजा लोग विशेष भय-भीत होंगे, इसी विचार से देवीसिंह ने कलेक्टर के जमादार रामसिंह को इस कारगार की देखरेख का भार देकर भेजा था। रामसिंह ने यहाँ आने में एक बार आपत्ति भी की थी। किन्तु दिनाजपुर के कलेक्टर गुडलैंड साहब बिल्कुल एक गुड (अच्छे) लैड(बालक) की तरह देवीसिंह के किसी काम में बाधा नहीं देते थे। विशेषतः उन्हें निजी तौर पर जिस वस्तु की आवश्यकता होती, उसे देवीसिंह जुटा देते थे। कारोबार के सम्बन्ध में वे देवीसिंह के क्रीतदास थे। किन्तु पाठक, यह सुनकर चकित होंगे कि अन्य बातों में देवीसिंह के मौसेरे भाई थे। गुडलैंड एवं देवीसिंह ये दोनों व्यक्ति भिन्न देशीय तथा भिन्न जाति होने पर भी 'चोर चोर मौसेरा भाई' की कहावत के अनुसार सचमुच भाई-भाई ही थे।

आखिरकार रामसिंह देवीसिंह की तहसील कचहरी में आकर रहने लगे। दिनाजपुर शहर से यह कचहरी दो कोस की दूरी पर थी।

इस तहसील कचहरी के अत्याचार को देख कर रामसिंह का हृदय बड़ा ही व्यथित होता। रामसिंह एक सिख सूबेदार के घर पैदा हुए थे। वे कम्पनी के गुमाश्तों तथा देवीसिंह के समान नरपिशाच नहीं थे। दस बारह वर्ष हुए, रामसिंह का

पुत्र मर गया था। इन्हें और कोई सन्तान न थी। परिवार में एक स्त्री को छोड़ कर और कोई नहीं था।

कारागार के आँगन में चौदह पन्द्रह वर्ष के बालक को देख कर, रामसिंह ने उसे अपने पास बुलाया। रामसिंह बालक-बालिका को देखते ही उन्हें अपने पास बुलाकर, उनके साथ बातचीत करके अपूर्व सुख का अनुभव करते थे।

इस बालक के पास आने पर, इसके अंग-सौष्ठव एवं मुसकराता हुआ चेहरा देख कर वे एकदम मोहित हो गये। मन ही मन विचार करने लगे कि ऐसा सुन्दर बालक तो इस ज़िन्दगी में और कहों पर नहीं देखा। सतृष्ण नेत्रों से बार २ बालक के मुख की ओर ताक कर उससे उन्होंने पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

बालक—"हज़ूर, मेरा नाम ननकू है।"

रामसिंह—"तुम्हारा घर कहाँ है।"

बालक—"हज़ूर मेरे पिता का घर गया ज़िले में था। पिता पूर्णिया ज़िले में जमादार थे। छुटपन ही में मेरे मां-बाप मर गये थे। बाद में इस देश की एक ग्वालिनी ने मुझे पालपोस कर बड़ा किया। उसी ग्वालिनी को मां कह कर पुकारता हूँ।"

रामसिंह—"इस समय क्या चाहते हो?"

बालक—"हज़ूर, अब बड़ा हो गया। कहीं नौकरी लगने पर नौकरी करता। बंगालियों की नौकरी नहीं करूँगा। बंगाली जाति बड़ी दुष्ट होती है। पूरा काम लेकर काफ़ी मजूरी नहीं देती।

रामसिंह—"तुम कौन काम कर सकते हो?"

बालक—"हज़ूर, सब काम कर सकता हूँ। तमाकू चढ़ा सकता हूँ। जल खींच कर ला सकता हूँ। रसोई बना सकता हूँ।"

रामसिंह बालक के अंग-सौष्ठव को देख कर पहले ही मोहित हो गये थे। इस समय इसकी सुमधुर कण्ठ-ध्वनि को सुनते ही इसके प्रति प्रगाढ़ प्रेम का संचार उनके दिल में हुआ। बालक को अपने घर रखने की उन्हें बड़ी इच्छा हुई। फिर बालक से उन्होंने पुनः पूछा—

"कितना तलब पाने से काम कर सकते हो?"

बालक—"हज़ूर, आप मिहरबानी करके जो कुछ दे देंगे, उतने ही में आप का काम करूँगा।"

रामसिंह—"अच्छा, महीने में एक रुपया तनख़ाह दूँगा। तुम मेरा काम करो।"

बालक, रामसिंह के कार्य में नियुक्त होकर उनके लिये रसोई बनाने लगा। रामसिंह सबेरे और तीसरे पहर को रसोई खाते थे। बालक थोड़ी ही देर में बड़ी अच्छी रसोई बना देता था। रसोई बनाने में बालक की निपुणता देख कर रामसिंह को विशेष आनन्द होता था। कुछ समय के बाद घर के बीच से अतिक्षीण स्वर से एक क़ैदी के रोने का शब्द सुनाई पड़ा। बालक ने रामसिंह से कहा—"हज़ूर, यह आदमी थोड़ा जल चाहता है, इसे थोड़ा जल दे दूँ?"

रामसिंह—"दे दो बाबा, थोड़ा पानी उसको दे दो। हरामज़ादे देवीसिंह ने इन लोगों को बहुत तकलीफ़ दी है।"

यह मौक़ा पाकर बालक घर में घुसते ही इधर उधर देखने लगा। घर के एक कोने में देखा कि रामानन्द गोस्वामी अचैतन्यावस्था में पड़े हुए हैं। अन्यान्य कैदियों को थोड़ा थोड़ा जल पिला कर बाद में रामानन्द के पास आया। रामानन्द एक दम बेहोश होकर पड़े हुए थे। सैकड़ों तदबीरें करने पर भी इनको बालक जगा न सका। तब उनके सिर पर वह जल

गिराने लगा। कुछ देर के बाद उन्होंने 'हाँ' करके जल पीने की इच्छा प्रकट की। बालक थोड़ा थोड़ा करके उनके मुख में जल देने लगा। रामानन्द कुछ स्वस्थ हुए। किन्तु अब तक भी उन्हें अच्छी तरह से होश नहीं हुआ था। बालक बाहर आया। रामसिंह के हुक्म के मुताबिक़ दो एक काम करके कारागार से थोड़ी दूर पर एक झोपड़ी में चला गया। उसमें एक वृद्धा स्त्री एवं दो युवक रहते थे। बालक इनके पास आकर बोला—"रूपा; क्या कहीं से थोड़ा दूध ला सकते हो? मालूम होता है, जब से पकड़ कर लाये गये हैं, ठाकुर ने कुछ खाया-पीया नहीं है। वे बेहोश हो करके पड़े हैं।"

रूपा जल्दी दूध की तलाश में चला गया।

बालक ने वृद्धा से कहा, "रूपा के दूध ले आने पर तुम उसी दूध को ले कारागार के आँगन में आना; एवं ननकू कह कर पुकारना। मैं तुम्हारे पुकारते ही घर से आकर दूध ले लूँगा।"

ऐसा कह कर बालक फिर कारागार में आया। किन्तु सायंकाल को रामसिंह कारागार के दरवाज़े को बन्द करके अपने रहने के घर में चले गये। बालक कारागार के दरवाज़े को बन्द देख कर बहुत निराश हुआ। कारागार से थोड़ी ही दूर पर रामसिंह के रहने का घर था। बालक फिर जा कर रामसिंह के पास खड़ा हो गया। उसको खड़ा देख कर रामसिंह ने सोचा कि यह मुझ से कुछ कहने के लिये आया है।

रामसिंह ने पूछा, "ननकू, मुझसे कुछ कहना चाहते हो?"

बालक कुछ संकुचित हो कर बोला—"हज़ूर, एक बात कहना तो चाहता हूँ। किन्तु दिल में बड़ा भय होता है कि कहीं आप इसको सुनकर नाराज़ न हो जाँय!"

रामसिंह ने कहा, "डरने का कोई बात नहीं। तुम्हें जो कुछ कहना है, कहो।"

"हज़ूर, इस कारागार का एक क़ैदी थोड़ा दूध पीना चाहता था। वह तीन दिन से कुछ खाया-पीया नहीं है। मैं उसके लिये मां से थोड़ा दूध लाने के लिये कह आया हूँ। किन्तु कारागार का दरवाज़ा बन्द है।"

रामसिंह—"इसके लिये तुम्हें डरने को कौन सी बात है? तुम चाभी ले करके दरवाज़ा खोल घर में चले जाओ। देवीसिंह बड़ा ही दुष्ट है। उसने इन लोगों को जान ले ली। बेटा! मेरे अधिकार में कुछ नहीं है। नहीं तो सब क़ैदियों को छोड़ देता। कैदियों पर तुम्हारा दया-भाव देख कर मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। बेटा! मेरे पुत्र में भी क़ैदियों के प्रति बड़ा दया का भाव रहता था।"

यह कहते कहते रामसिंह की आँखों से आंसुओं को झड़ी लग गई।

ननकू चाभी लेकर ज्यों ही दरवाज़ा खोलने को तैयार हुआ कि कारागार के पहरे वाले बरकन्दाज़ ने उसे दरवाज़ा खोलने से मना किया। किन्तु यह सुनकर कि रामसिंह ने दरवाज़ा खोलने के लिये कहा है, और बाधा नहीं पहुँचाई।

ननकू के दरवाज़ा खोलने पर एक वृद्धा स्त्री एक मटके में थोड़ा दूध लेकर कारागार के आँगन में आ पहुँची। ननकू का नाम लेकर पुकारते ही, बालक बाहर आया और उसने बुढ़िया के हाथ से दूध का मटका लेकर उसे बिदा किया। वृद्धा के चले जाने पर गृह में जाकर बालक रामानन्द के मुँह में थोड़ा थोड़ा दूध देने लगा। माथे पर थोड़ा जल भी डाला। कुछ देर में रामानन्द को होश हुआ। अपने मुँह में एक बालक को

दूध डालता हुआ देख कर क्रोध के साथ कहा—"दुरात्मा देवीसिंह अब मुझे जाति-भ्रष्ट करना चाहता है! तुम कौन हो जो मेरे मुँह में दूध डाल रहे हो? हा परमेश्वर! मैं शूद्र तक को नहीं छूता था। यह किसने मेरे मुँह में दूध डाल कर मुझे जाति-भ्रष्ट किया।"

तब बालक रामानन्द के कान के पास मुँह ले जाकर बोला, "कोई डरने की बात नहीं, मैं सत्यवती—आपकी पुत्रवधू हूँ।"

"सत्यवती" यह शब्द वृद्ध के कान में पड़ते ही वह सिंह की तरह गर्जना करता हुआ उठ कर के बोला, "हा परमेश्वर! क्या ये दुष्ट मेरी पुत्र-वधू को भी पकड़ लाये हैं? मैं अभी देवीसिंह की गर्दन उड़ा दूंगा।" ऐसा कह कर वृद्ध पुनः बेहोश होकर पृथ्वी पर लोट गया। पहरेवाले ने बाहर से घर में आकर के पूछा, "क्यो हुआ?"

बालक ने कहा—"यह वृद्ध कैदी यन्त्रणा से एक दम पागल हो गया है।"

पहरेवाले को बालक की बात पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं था। इस कारागार में बहुत से अभागे क़ैदी पागल हुआ करते थे। किन्तु पहरे वाले के चले जाने पर सत्यवती अत्यन्त चिन्ताकुल होकर अपने ससुर के सिरहाने बैठ कर सोचने लगी। उसका मुखकमल कुम्हला गया। वह वृद्ध के सिर पर फिर जल गिराने लगी। प्रायः एक घण्टे तक जल गिराने पर रामानन्द को फिर होश हुआ। सत्यवती हाथ से उनका मुँह चाप करके, उनके कान के पास मुँह ले जाकर बोली—"आप कोई भय न करें—आप कोई बात न कहें—मैं पुरुष के वेश में आपको छुड़ाने के लिये आई हूँ—मुझे पकड़ कर कोई नहीं लाया है।"

इस बात के वृद्ध के कान में पड़ते ही धीरे २ ज्ञान का संचार होने लगा। कुछ समय स्तम्भित रहने के बाद वृद्ध क्षीणस्वर में बोला, "बेटी! तुम मेरे लिये बाघ के मुँह में आकर क्यों पड़ गई हो? तुम्हारे पहचाने जाने पर तो सर्वनाश हो जायगा।"

छद्मवेशी बालक बोला—"आप कोई भय न करें। मैं दो एक दिन में ही आपको कैदखाने से छुड़ाऊँगी। आप यह दूध पीयें, मुझको अधिक समय तक यहाँ न रहने दें।"

वृद्ध दूध पीकर कुछ स्वस्थ हुआ। सत्यवती ने दरवाज़ा बन्द करके रामसिंह के पास जाकर कारागार की चाभी दे दी।

बारहवाँ अध्याय

क़ैदखाने से छुटकारा

ननकू ने दो दिन में ही रामसिंह के हृदय को जीत लिया। रामसिंह को इस समय कोई सन्तान नहीं थी। वे मन ही मन सोचने लगे कि यह अवश्य ही किसी भद्र हिन्दू-कुल का होगा। यह किसी दुरवस्था में पड़ गया है, इसीसे नौकरी कर रहा है। इसलिये इसको नौकर न रख कर यदि पोष्य पुत्र की तरह पर रखूं तो मेरी स्त्री को भी आनन्द होगा। मेरा पुत्रशोक भी बहुत परिमाण में कम हो जायगा। इस प्रकार सोच-विचार कर रामसिंह ने स्थिर किया कि जहाँ तक जल्द हो, इस कारागार के काम से अवकाश मिलते ही ननकू को साथ लेकर दिनाजपुर अपने गृह पर चला जाऊँ। रामसिंह को अब अधिक नौकरी करने की इच्छा भी नहीं रह गई थी। उनकी अवस्था चालीस वर्ष से अधिक हो गई थी।

देवीसिंह ने ही उन्हें इस कारागार के कार्य में नियुक्त किया था, इसलिये वे सदा 'साला' 'बदज़ात' आदि सुललित शब्दों से उसे याद किया करते थे, किन्तु उन्हें उनके सामने कुछ कहने का साहस नहीं होता था। देवीसिंह कलेक्टर के दीवान थे। देवीसिंह के ज़रा ज़बान हिलाने पर ये बरख़ास्त किये जा सकते थे।

इधर सत्यवती रामसिंह के काम से अवसर पाते ही कारागार के पास वाली झोपड़ी में जा, वृद्धा दासी एवं रूपा और जगा के साथ परामर्श करती। किस उपाय से रामानंद को मुक्त किया जाय, इसी बात पर वे विचार करने लगे। रामानन्द में उठने तक की शक्ति नहीं थी। उठने पर खड़े होने की सामर्थ्य नहीं थी। यदि उनमें चलने फिरने की शक्ति होती तो सत्यवती पहले ही दिन उनको कारागार से मुक्त कर सकती थी। रूपा बहुत सोच विचार कर बोला—

"बहूजी, यदि बूढ़े ठाकुर को कैदियों के रहने वाले घर के बराण्डे में सुलाने का प्रबन्ध कर सको तो मैं उन्हें अनायास ही लेकर भाग सकता हूँ।"

जगा भी इस बात पर सहमत हुआ। बाद में इन लोगों के बीच यही स्थिर हुआ कि रामानन्द को बराण्डे में सुलाया जाय और ऐसा होने पर रूपा एवं जगा उन्हें गोदी में उठा कर भाग जायँ।

सत्यवती इस बात को स्थिर कर के तीसरे पहर को रामसिंह के पास वापस आई। अन्य दिनों की तरह इस दिन भी रसोई बनाने लगी। प्रथम रात को जो चार पहरेदार बरकन्दाज़ रहते थे, उन्हें भी कुछ २ भोजन खिलाने का प्रबन्ध किया। रसोई बन जाने पर रामसिंह सायंकाल को भोजन

कर के कारागार का दरवाज़ा बन्द करने को चले। उस वक्त ननकू ने उनके पास जाकर कहा—"हज़ूर यह वृद्ध क़ैदी कहता था कि कल रात्रि में कमरे में शोरगुल रहने से उसे ज़रा भी नींद नहीं आई, इसलिये वह बराण्डे में सोना चाहता है। उसमें चलने की शक्ति भी नहीं है कि वह भाग सकेगा। क्या आप उसे बराण्डे में सोने की अनुमति दे सकते हैं ?"

रामसिंह बोले—"यदि उसकी इच्छा बराण्डे में सोने की है तो वह बराण्डे में सो सकता है; पर जो क़ैदी भागना चाहते हैं, वे कहीं भाग न जायँ ! वह शैतान देवीसिंह इन लोगों को और न जाने कितने दिन तक यन्त्रणा देगा !"

इतना कहने पर ननकू ने रामानन्द को किसी तरह गोदी में ले आकर बराण्डे में रक्खा। रामानन्द बराण्डे में ही सो रहे।

× × × ×

आज रात के पहरेदारों ने खूब भरपेट भोजन किया था। रात के नौ बजते ही उन्हें खूब गहरी नींद आ गई। रात बड़ी अँधेरी थी। रूपा, जगा एवं बुढ़िया दासी कारागार से थोड़ी ही दूर पर खड़ी थी। प्रायः डेढ़ पहर रात्रि बीत जाने पर ननकू रामसिंह के घर से बाहर होकर कारागार के पास आया। रूपा और जगा भी ननकू के पास चले आये। इन्हें साथ लेकर ननकू बराण्डे में आया। रामानन्द वात-व्याधि से ग्रसित थे। वे प्रायः मूर्छितावस्था में पड़े हुए थे। बीच बीच में उन्हें होश आ जाता था। रूपा रामानन्द को गोदी में लेकर धीरे धीरे कारागार के आँगन में आया। इतने में दूसरे पहर के पहरेदारों में से एक ने जागृत होकर देखा कि रामानन्द को गोदी में लेकर रूपा चला जा रहा है। उसके पीछे जगा एवं वृद्धा दासी तथा ननकू बड़ी फुर्ती से पूर्व की ओर जा रहे हैं।

"क़ैदी भागा जाता है", "क़ैदी भागा जाता है" ऐसा कहते हुए बरकन्दाज़ चिल्ला उठा।

उसकी चिल्लाहट से प्रायः बारह चौदह बरकन्दाज़ जग कर जगा और रूपा के पीछे दौड़े।

रूपा रामानन्द को जगा की गोदी में देकर बोला—"तुम इन्हें लेकर भाग चलो। मैं इस समय यहीं खड़ा रहता हूँ। इनके साथ प्राण-पण से मल्ल-युद्ध करूँगा। ऐसा करने से ये तुम्हारे पीछे न जा सकेंगे। बहुत संभव है यह केवल मुझी को पकड़ने की चेष्टा करेंगे।

सत्यवती बोली—"वे तुमको पकड़ लेने पर निश्चय ही मार डालेंगे।"

रूपा तत्काल बोला—"हमारे मर जाने पर भी यदि आप लोग बचकर भाग जायँगे, तो कोई हानि नहीं। मेरे अकेले के मरने ही से क्या होगा? किन्तु यदि आप पकड़ ली जाँयगी, तो सर्वनाश हो जायगा। आप जाइये, शीघ्र जाइये!

जगा रूपा का छोटा भाई था। रूपा का उस पर बड़ा प्रेम था, इसीसे जगा से इन लोगों के साथ जाने को कह कर प्राण की आशा छोड़ बाँस की लाठी लिये हुए खड़ा हो गया। तीन चार बरकन्दाज़ों के पास आते ही ऐसे ज़ोर की लाठी चलाई कि दो शीघ्र ही यमालय को कूच कर गये। इसके बाद दस बारह बरकन्दाज़ों ने आकर के इसे घेर लिया। बरकन्दाज़ निद्रा से उठ कर खाली हाथों आये थे। उनके साथ में अस्त्र-शस्त्र कुछ भी नहीं था। रूपा इच्छा करने पर एक ओर अनायास ही दौड़ कर भाग सकता था। किन्तु कहीं बरकन्दाज़ रामानन्द तथा सत्यवती को पकड़ने के निमित्त आगे न बढ़ें, इसी आशंका से खड़ा होकर उन लोगों से युद्ध करने लगा। देखते ही देखते

उसने चार पाँच आदमियों के प्राण ले लिये। बाद में लाठी लेकर और लोग भी आने लगे। रूपा मौक़ा पाते ही भागने के अभिप्राय से उत्तर की ओर दौड़ने लगा। रात अँधेरी थी। अकस्मात् वह एक गड्ढे में गिर पड़ा। किन्तु बरकन्दाज़ों ने उसे गिरते हुए नहीं देखा और वे बराबर उत्तर की ओर दौड़ने लगे। जगा इधर रामानन्द गोस्वामी को लिये हुए पूर्व की ओर चला।

रामसिंह बरकन्दाज़ों के गोलमाल को सुनकर जाग पड़े। यह सम्वाद सुनकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि ननकू बाहर से दूसरे लोगों को कारागार में लाकर एक क़ैदी को भगा ले गया। किन्तु इससे ननकू के प्रति उनके हृदय में और भी प्रेम उमड़ पड़ा। अब भी उनकी सद्भावना वैसी ही थी। उन्होंने ननकू के विरूद्ध एक बात भी नहीं कही, केवल देवीसिंह को गाली देने लगे। ननकू के भाग जाने से वे उसे पोष्य-पुत्र न रख सके, इसका अपराध देवीसिंह के मत्थे मढ़ कर रामसिंह रात भर देवीसिंह की माँ, बहन, मौसी आदि कुल आत्मीय लोगों को अत्यन्त अश्लील गालियाँ देते रहे। रात भर उन्हें ज़रा भी नींद न आई।

एक बरकन्दाज़ इन्हें देखते ही अन्यान्य कैदियों को गिनने लगा। रामसिंह गुस्से में भर कर बोले, "मैं सब कैदियों को छोड़ दूँगा। देवीसिंह के कारण हमारा ननकू भाग गया। शैतान ने जालसाज़ी से इज़ारा लेकर मुल्क को तबाह कर डाला।"

तेरहवाँ अध्याय

यह देवता है या मनुष्य

रात्रि घोर अन्धकार पूर्ण है। किसी प्राणी के शब्द सुनाई नहीं पड़ते। जगा रामानन्द गोस्वामी को कन्धे पर लिये हुए मालदा की ओर बढ़ने लगा। वृद्धा दासी तथा सत्यवती इनके पीछे २ चलीं। इनके गंगारामपुर पहुँचते ही रात बीत गई। लगभग आठ कोस तक जगा रामानन्द को कन्धे पर करके लाया था। इसके पहले दिन दो पहर को उसको खाने की भी सुविधा नहीं हुई थी, इसलिए इस समय वह अत्यन्त थक गया था। किन्तु आम रास्ते की बगल में बैठ कर आराम करने का इन्हें साहस नहीं हुआ। रास्ते से कुछ दूर एक जंगल में जा कर ये लोग विश्राम करने लगे। रूपा जिस प्रकार जगा पर अत्यन्त प्रेम रखता था, वैसे ही जगा भी रूपा को बहुत मानता था। इस समय जंगल में पहुँचते ही वह अपने भाई के लिये रोने लगा। सत्यवती देवी तथा वृद्धा दासी भी अत्यन्त विलाप एवं परिताप करने लगी। अब तक सत्यवती के पास दो विश्वस्त लोग थे। किन्तु रूपा ने इनके उद्धार के निमित्त स्वेच्छा से प्राण दे दिये। जिस अवस्था में ये लोग रूपा को छोड़ कर आये थे, उससे उसकी मृत्यु के सम्बन्ध में इन लोगों को कुछ भी सन्देह नहीं रहा। इन लोगों के मन में बराबर यही बात उठ रही थी कि रूपा देवीसिंह के आदमियों द्वारा अवश्य मार डाला गया होगा। रूपा के लिये जगा से भी अधिक सत्यवती अधीर हो रही थी। वह उसके लिये अत्यधिक विलाप करने लगी।

रामानन्द अब तक अचेत होकर पड़े हुए थे, इतनी देर के बाद उनमें कुछ ज्ञान का संचार हुआ। प्रातःकाल ही को वात-व्याधि से ग्रस्त लोगों को कुछ होश होता है। जिस प्रकार वे कारागार से मुक्त हुए थे और जिस प्रकार रूपा ने अपने प्राण की बाज़ी लगा कर इन लोगों को भागने का मौक़ा दे दिया था, इसे आद्योपान्त सुन कर वे भी रोने लगे। इन लोगों के रोने धोने में प्रायः ड़ेढ़ पहर दिन चढ़ गया था। उस समय रामानन्द का गला एक दम सूख गया था। सत्यवती ने ससुर की प्यास बुझाने के लिये जगा को जलाशय से जल लाने के लिये कहा।

वे जिस स्थान पर विश्राम कर रहे थे, उसी स्थान पर बहुसंख्यक बेल के वृक्ष भी थे। सैकड़ों पके हुए बेल वृक्षों के तले पड़े हुए थे। गंगारामपुर में सर्वत्र बेल के वृक्ष थे। जन-श्रुति ऐसी है कि अत्यन्त प्राचीन काल में इसी के निकट वाण राजा की राजधानी थी। वे शैव थे। इसी से उनके राज्य में बेल के वृक्षों की अधिकता है।

जगा के जल लाने के लिये चले जाने पर सत्यवती वृक्षों के तले से दो चार बेल ढूँढ़ लाई। केवल जल द्वारा बेल का शरबत तैयार कर के ससुर की क्षुधा की निवृत्ति की। बाद में बेल का शरबत तैयार कर के वृद्धा दासी और जगा को भी दिया। सब लोग बेल के शरबत को पीकर कुछ स्वस्थ हुए। बेला ढलने पर सब लोग मालदा की ओर चल पड़े। दूसरे दिन डेढ़ पहर दिन चढ़ते २ पांडुया के जंगल में आ पहुँचे। रास्ते भर जगा रामानन्द को अपने कन्धे पर लिये हुए रहा।

इन लोगों ने पहले ही से स्थिर कर लिया था कि पांडुया के जंगल में जाकर कुछ दिन तक छिप रहेंगे। बाद में देवीसिंह

के अत्याचार के कुछ कम होने पर रामानन्द गोस्वामी की पैतृकभूमि गौड़ देश को जाने की चेष्टा करेंगे। उनकी मालदा की ब्रह्मोत्तर ज़मीन आठ नौ वर्ष पहले ही ज़ब्त कर ली गई थी। वारेन हेस्टिंग्स की दुष्टता से सभी लोगों की ब्रह्मोत्तर तथा देवोत्तर ज़मीन ज़ब्त कर ली गई थी। किन्तु रामानन्द के रहने के मकान से अभी तक किसी इजारदार ने उनको बेदखल नहीं किया था। वह घर एक दम सूना पड़ा हुआ था। बाकी मालगुजारी के लिये ईस्ट इण्डिया के कर्मचारी क़ैद कर लेंगे, इसी आशंका से रामानन्द अपने पैतृकगृह को छोड़ कर जंगल-जंगल भागे भागे फिरते थे।

पांडुया के जंगल में पहुँचते ही जगा जंगल में जलाशय के पास कोई स्थान ढूँढने लगा। जंगल में निवास करने पर पास में जलाशय न होने से बड़ी असुविधा होती है। जगा ने जंगल में प्रवेश कर कुछ दूर जाने पर एक छोटी झील के पास में दो पर्ण-कुटियाँ देखीं। उसमें एक कुटी तो बिलकुल सूनी थी, परन्तु दूसरी में एक विधवा योगासन लगाये हुए, फूल चन्दन द्वारा एकाग्रचित्त से, अपने हाथ से बनाये हुए मिट्टी के शिव-लिंग की आराधना कर रही थी। इन्हें देखते ही जगा के मन में इस प्रश्न का उदय हुआ, "यह देवता है या मनुष्य!" किन्तु उसने उस स्त्री से कुछ नहीं पूछा। रमणी आँखों को मूँदे हुए बैठ कर ध्यान कर रही थी, इसलिये उसका ध्यान भङ्ग करने का उसे साहस नहीं हुआ।

जगा ने इस प्रकार की विमल पवित्र मूर्त्ति कभी नहीं देखी थी। वस्तुतः इस ध्यान-शीला रमणी को देख लेने पर कोई भी उसे मनुष्य नहीं कह सकता था। जगा बाल्यावस्था से ही सुने हुए था कि जंगलों में देवी-देवता निवास करते हैं। इस

लिए उसने सहज ही यह सिद्धान्त स्थिर कर लिया कि निश्चय ही यह कोई देव-कन्या है। किन्तु यही सोचने लगा कि मैं इनसे बात करूँ या न करूँ! बहुत सोच-विचार कर उसने यही निश्चय किया कि जंगल में जो बुरे देवता किम्वा भूत प्रेत रहते हैं, वे ही मनुष्यों का अनिष्ट करते हैं। अच्छे कभी ऐसा नहीं करते। इस देव-कन्या के मुख से जीव-दया एवं स्नेह का भाव टपक रहा है, इसलिये यह अवश्य ही कोई अच्छी देवी होंगी। इसलिये इनका आश्रय पाने से इस विपत्ति के समय में बहुत उपकार होने की सम्भावना है।

ऐसा सोच कर जगा ने मन ही मन स्थिर कर लिया कि रमणी की शिव-पूजा समाप्त हो जाने पर इसके चरणों में गिर कर इसका शरणागत हूँगा।

प्रायः आध घण्टे के बाद रमणी ने अपने पहने हुए वस्त्र के अंचल को गले में लपेट लिया और प्रणाम करती हुई बोल उठी, "भगवान्! हे देव-देव महादेव! इस चिरदुःखिनी को यदि और दुःख देना हो तो दो, किन्तु प्रेमानन्द को आशीर्वाद दो—शत्रु के हाथों में उसे निरापद रखो।"

"प्रेमानन्द को आशीर्वाद दो," "उसे निरापद रखो" यह बात कानों में पड़ते ही वह चौंक पड़ा। वह सोचने लगा—यह किस प्रेमानन्द की मंगलाकांक्षिणी हो रही है? मालदा में हमारे प्रेमानन्द को छोड़ कर और भी कोई प्रेमानन्द हों तो मैं नहीं जानता। किन्तु हम लोगों के प्रेमानन्द को तो मरे हुए प्रायः बारह वर्ष बीत गये।

रमणी अब भी उसी प्रकार स्तवन-पाठ कर रही थी। जगा टकटकी लगाकर रमणी की ओर ताक रहा था। थोड़ी देर के बाद रमणी का स्तवन पाठ समाप्त हुआ। वह खड़ी

हुई और पीछे को दृष्टि फेरते ही उसने देखा कि कुटी के बाहर एक स्थूलकाय कृष्ण वर्ण का पुरुष खड़ा है। रमणी इसे देख कर बहुत शंकित हुई। किन्तु जगा ने ज़मीन पर गिर कर इन्हें प्रणाम किया और अत्यन्त विनीत भाव से पूछा, "माता, आप कौन हैं? और किस प्रेमानन्द की मंगलाकांक्षिणी बन कर शिव की पूजा कर रही हैं?"

रमणी ने जगा के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। वह बिल्कुल मौन हो गई।

जगा पुनः विनीत भाव से बोलने लगा, "माता, हम लोग बड़ी विपत्ति में पड़े हुए हैं। इस जंगल में छिपकर कुछ समय तक रहने के लिये यहाँ आये हैं। हमारे गोस्वामी महाशय के पुत्र का नाम भी प्रेमानन्द था? आप के मुँह से उसी प्रेमानन्द का नाम सुनकर आप का परिचय जानने की इच्छा हो रही है।"

रमणी को यह बात सुनकर कुछ विश्वास हुआ। उसने पहले यह सन्देह किया था कि यह गंगा गोविन्दसिंह का कोई गुप्तचर होगा। किन्तु अब इसकी यह आशंका दूर हो गई। इस रमणी ने जगा से पूछा "तुम, किस प्रेमानन्द के पिता की बात कहते हो?"

जगा—"गौड़ देश के रामानन्द गोस्वामी के पुत्र का नाम भी प्रेमानन्द था। प्रायः दस बारह वर्ष हुए कि प्रेमानन्द की मृत्यु पूर्णिया के जेल में हो गई।"

रमणी—"रामानन्द गोस्वामी इस समय कहाँ हैं?"

जगा—"आप का परिचय पाये बिना यह बात कहने का किस प्रकार साहस कर सकता हूँ?"

रमणी—"मेरे द्वारा तुम्हारा कोई अनिष्ट होने की संभावना नहीं।"

जगा—" आप कौन हैं ? देवता या मनुष्य ?"

रमणी—"मैं कौन हूँ, इसे जानने से तुम्हें कोई लाभ नहीं। रामानन्द गोस्वामी कहाँ हैं, यही बतलाओ ?"

जगा—"कहीं हम लोगों का अनिष्ट तो नहीं करेंगी न" ?

रमणी—"रामानन्द गोस्वामी का अनिष्ट करना तो दूर रहा, मैं सर्वदा उनके कल्याण की कामना करती रहती हूँ।"

जगा—"क्या आप रामानन्द गोस्वामी को पहचानती हैं ?"

रमणी—"उनका नाम सुना है। उनको देखा नहीं है।"

जगा—"किसके मुँह से उनका नाम सुना है ?"

रमणी—"उनके पुत्र के मुँह से उनका नाम सुना है।"

जगा—"उनके पुत्र को आपने कहाँ देखा? प्रायः बारह वर्ष हुए उनकी मृत्यु हो गई"।

रमणी—(मुस्कुराकर) "क्या तुम निश्चय रूप से जानते हो कि उनकी मृत्यु हो गई ?"

जगा—"हां, निश्चय रूप से जानता हूँ। मैं उनकी विधवा स्त्री तथा पिता के साथ ही मैं हूँ।"

रमणी—"क्या उनकी स्त्री विश्वास करती हैं कि उनके स्वामी की मृत्यु होगई ?"

जगा—"वे क्यों नहीं करतीं ? विश्वास न करने पर वे सादे कपड़े पहनतीं ? विधवा की तरह भोजन क्यों करतो ?"

रमणी—"प्रेमानन्द ने परम साध्वी सुनीतिदेवी के गर्भ से जन्म धारण किया है। देवीसिंह अथवा गंगा गोविन्दसिंह में क्या सामर्थ्य है कि वे उनके प्राण ले सकें।"

जगा एवं रूपा ये दोनों सुनीतिदेवी पर अपनी माता से भी अधिक भक्ति रखते थे। सुनीतिदेवी का नाम सुनते ही जगा का हृदय अत्यन्त विगलित हो गया, उसकी आँखों से

कृतज्ञता के आँसू गिरने लगे। एवं इस रमणी से बातचीत करने का उसे और साहस न हुआ। वह रमणी की ओर कुछ अग्रसर होकर उसके पैरों में माथा नवा कर बोला—

"माँ, आप देवी हैं या मानवी? प्रेमानन्द अभी तक जीते-जागते हैं, इस बात को सुन कर उनके वृद्ध पिता बहुत सुखी होंगे। वे रोग-शोक से एक बारगी बेहोश होकर पड़े हुए हैं। प्रेमानन्द गोस्वामी के पिता तथा स्त्री इसी जंगल में हैं। हम लोग देवीसिंह के जेल से भाग कर आज यहाँ पहुँचे हैं।"

जगा की बात सुन कर रमणी ने उससे प्रेमानन्द की स्त्री एवं पिता को लाने के लिये कहा।

उस समय जगा दौड़ता हुआ सत्यवती के पास जाकर बोला—"बहूजी, बड़ा ही शुभ सम्वाद है, ठाकुर से कहो, अभी कहो, हम लोगों के प्रेमानन्द ठाकुर अभी तक जीते जागते हैं, वे मरे नहीं हैं।"

सत्यवती, रामानन्द तथा वृद्धा दासी ने जगा की बातों का कुछ मतलब नहीं समझा। प्रायः दस बारह वर्ष से उन्हें यह दृढ़ धारणा हो गई थी कि प्रेमानन्द की मृत्यु हो गई। वे आश्चर्य-चकित होकर जगा के मुँह की ओर ताकने लगे। जगा बारम्बार कहने लगा—"सचमुच प्रेमानन्द अब तक जीते हैं!"

सत्यवती देवी ने जगा से पूछा—"क्या तुमने उनको कहीं जंगल में देखा है?"

जगा—"मैंने अभी तक उनको देखा नहीं है। इस जंगल में एक देव-कन्या हैं। वे कहती हैं कि प्रेमानन्द अभी जीवित हैं उस जगह चलने ही पर वे सब बातें बयान करेंगी।"

सत्यवती फिर बोली—"कोई तुम्हें धोखा देने के लिये तो ऐसा नहीं कह रहा है?"

जगा—"कभी नहीं, वे सचमुच देव-कन्या हैं। भला वे कभी किसी को धोखा दे सकती हैं? यदि उनसे प्रेमानन्द से भेंट नहीं हुई होती तो वे माता (सुनीतिदेवी) का नाम कैसे जानतीं? उस देव-कन्या ने कहा है, 'परम साध्वी सुनीति देवी के गर्भ से प्रेमानन्द ने जन्म ग्रहण किया है। उनको कौन मारने वाला है?'"

सत्यवती—"देव-कन्या ने और क्या क्या कहा है?"

जगा—"मैं जिस समय कुटी के पास पहुँचा, उस समय वे देवपूजा कर रही थीं। वे दोनों नेत्रों को बन्द कर के ध्यान कर रही थीं। मुझको देख नहीं पाईं। पूजा की समाप्ति पर गले में वस्त्र डाले हुए शिव को प्रणाम कर के बोलीं—"भगवन्, देव-देव, महादेव! प्रेमानन्द को आशीर्वाद दो। उन्हें निरापद रखो।' उस समय मैं उनके पावों में पड़ कर बोला, "माँ! आप किस प्रेमानन्द की मंगल-कामना कर रही हैं? मेरे एक प्रेमानन्द थे। दस बारह वर्ष हुए, उनकी मृत्यु हो गई।" तब वे मुस्किरा कर बोलीं—"प्रेमानन्द ने परम साध्वी सुनीतिदेवी के गर्भ से जन्म लिया है। इतनी किसमें सामर्थ्य है कि वह उनको मार सके!" बहू, मैं निश्चय पूर्वक कह सकता हूँ कि रूपा भैया भी अभी मारे नहीं गये हैं। प्रेमानन्द की माता ने जिसका पालन-पोषण किया है, उसको कौन मार सकता है? रूपा भैया भी दो एक दिन के भीतर ही यहाँ आ जावेगा। कल दिन में मुझे कुछ नींद लग गयी थी। उस समय मैंने स्वप्न में देखा कि रूपा भैया चले आये हैं।"

जगा की बातें ख़तम होने पर सत्यवती रामानन्द से बोली; जगा के स्वप्न की बात सुन कर मुझे भी एक स्वप्न की बात याद हो आई है। जिस दिन आप के जामाता एवं पुत्र

को देवीसिंह के आदमी पकड़ कर ले गये, उसी दिन की रात को कोठे पर बैठी हुई मैं विलाप कर रही थी। रोते-रोते नींद लग गई। उस समय स्वप्न में देखा कि शुभ्र वस्त्र को पहनी हुई एक परम सुन्दर रमणी मेरे पास आई। मैं उसे पहचान न सकी। मैं उसके उस पवित्र शान्त मुख की ओर ताकती रही। उसके मुख-मण्डल की ज्योति से मेरा कमरा आलोकित हो रहा था। वह स्त्री धीरे धीरे मुझे सम्बोधन कर के बोली— "बेटी, मुझे पहचानती नहीं, मैं तुम्हारी सास हूँ।" यह सुनते ही मैंने उनके चरणों में गिर कर प्रणाम किया। उन्होंने प्रेम-पूर्वक मुझे गोदी में ले लिया। बार-बार मेरे मुख को चूम कर कहा—"बेटी, विपत्ति में पड़ कर कभी ईश्वर को मत भूलना। विपत्ति-भञ्जन ईश्वर सर्वदा तुम्हारे साथ में रह कर सब प्रकार की विघ्न-बाधाओं से तुम्हारी रक्षा करेंगे। पति के लिये तुम इतना उत्कण्ठित क्यों हो रही हो। बारह वर्ष के बाद उनके साथ तुम्हारी मुलाक़ात होगी।"

मेरे कुछ पूछने के पहले ही वे मुस्कराती हुई पुनः बोलीं, "धन्य वह स्त्री है जिसने प्रेमानन्द के समान सुपुत्र को अपने गर्भ में धारण किया था, और धन्य है वह रमणी जिसने प्रेमानन्द के समान पति को पाया है।"

यह बात कह कर रमणी ग़ायब हो गई। मेरी निद्रा भी भंग हो गई। प्रातःकाल जिस समय आप मृत-देह को ढूँढ़ कर घर लौट आये और यह कहा कि उनकी मृत-देह नहीं मिली, उसी समय मेरे चित्त में यह बात आई थी कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि उन्होंने भाग कर कहीं आत्म-रक्षा कर ली हो।

सत्यवती की बात ज्योंही समाप्त हुई, रामानन्द ने कहा,

"जगा, अभी मुझे उस देव-कन्या की कुटी में ले चल। वह कुटी कितनी दूर है? मैं स्वयं नहीं चल सकता।"

जगा इन लोगों को लेकर पूर्वोक्त रमणी की कुटी को चला। कुटीर-वासिनी स्त्री ने बड़े स्नेह के साथ इन लोगों का स्वागत किया। सत्यवती एवं रामानन्द दोनों रमणी को देखते ही आश्चर्य-चकित हो सोचने लगे कि 'यह देवता है या मनुष्य!'

चौदहवाँ अध्याय

कुटीर-वासिनी

कुटीर-वासिनी रमणी सत्यवती एवं रामानन्द गोस्वामी को सम्बोधन करके कहने लगी—

'मेरा परिचय आप लोग क्रम से जान जायँगे। इस दुरवस्था में पड़ने पर इस संसार में प्रेमानन्द तथा लक्ष्मण के अतिरिक्त दूसरे किसी के निकट आज तक मैंने अपना परिचय नहीं दिया और उन दुःखदायी बातों को जब कहना आरम्भ करती हूँ तो हृदय में स्थित शोकानल और भी प्रज्वलित हो उठता है; इसलिए मेरा परिचय सुनने से आप लोगों को कोई लाभ नहीं है। प्रेमानन्द मुझे मा कहकर सम्बोधन करते हैं। मैं भी उन्हें अपनी आत्मगर्भ-जात सन्तान समझती हूँ; इसीसे मैंने उनको अपना परिचय दिया है।

प्रेमानन्द ने जिस तरह से देवीसिंह के कारागार से भागकर आत्म-रक्षा की थी, उसी बात को अब कहती हूँ—रमणी के इतना कहने पर रामानन्द गोस्वामी बोल उठे, "इस समय

मेरा बच्चा कहाँ है? क्या इसी जंगल में है? पहले मैं उसे एक बार देखना चाहता हूँ। पीछे और बातों को सुनूँगा।"

रमणी बोली—"इस समय वे कलकत्ते के जेल में क़ैद हैं। गङ्गा गोविन्दसिंह करीब पन्द्रह आदमियों को पकड़ कर जेल में बंद कर रखा है। उन्हीं पन्द्रह आदमियों में एक प्रेमानन्द भी हैं। किन्तु उनके उद्धार के लिये रंगपुर के लोग चेष्टा कर रहे हैं। माघ की सातवीं तिथि को उनके आने की बात थी, पर आज आठवीं है। किस कारण उनके आने में बिलम्ब हो रहा है, सो कह नहीं सकती?"

रामानन्द ने पुनः रमणी की बातों में बाधा देकर पूछा, "उनके आने के लिये माघ की सातवीं तिथि क्यों मुकर्रर की गई थी?"

माघ की सातवीं तिथि को उनका जन्म दिन है। रंगपुर के लोगों ने सर्व-सम्मिति से यह स्थिर किया था कि इसी शुभ दिन से रङ्गपुर एवं दिनाजपुर के अत्याचार-पीड़ितों पर होनेवाले अत्याचारों को रोकने के लिये युद्ध करने को तैय्यार होंगे। किन्तु जब वे इस समय तक भी नहीं पहुँचे, तब मालूम होता है कि उनकी सारी चेष्टायें निष्फल जायँगी। आज मैं उनके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित होकर उनकी मंगल-कामना करके शिव-पूजा कर रही थी।"

रामानन्द—"प्रेमानन्द ने देवीसिंह के हाथ से किस प्रकार आत्म-रक्षा की थी?"

रमणी पुनः कहने लगी—

"आप लोगों ने सुना होगा कि दुरात्मा देवीसिंह सर्वदा दस बारह स्त्रियों को अपने साथ में रखता है। साहब लोगों को राजी रखने के लिये वह इन स्त्रियों को समय समय

पर दुराचारी अंगरेज़ों के पास भेजा करता है। मैं भी देवी-सिंह के आदमियों के हाथ में दुर्भाग्य से पड़ गई और उसकी अन्य स्त्रियों के साथ उसके घर में लाई जाने पर पागल हो गई। अन्तर्यामी भगवान् को छोड़कर और कोई नहीं जानता कि इस पापात्मा ने मुझे कितनी यन्त्रणायें और कितने कष्ट दिये।"

"जिस समय स्वामी और पुत्र के शोक से मैं पागल होकर कभी २ आम रास्ते पर घूमती रहती थी, उस समय मुझको पकड़कर उसके आदमी ले गये। किन्तु उस दुरवस्था में भी मैं धर्म-ज्ञान से शून्य नहीं हुई थी। मैं किसी तरह से भी धर्म छोड़ने को तैयार नहीं हुई। उस समय की दुरवस्था एवं विपद्-चिन्ता मेरे प्रबल पुत्र-शोक को क्रमशः कम करने लगी। दो चार दिन के बाद ही मैंने पूरा ज्ञान-लाभ कर लिया। तब देवीसिंह के डर से वस्त्र में एक तेज़ छुरी रखने लगी। नराधम ने मुझे प्रतारणा करके एक अंगरेज़ के पास भेजा। यदि मैं पहले ही से उसके छल को जानती तो कभी जाती ही नहीं। मुझे, मेरे घर भेजने के बहाने से उस म्लेच्छ के घर भेजा गया। उस अंगरेज़ के यहाँ जाने पर ज्योंही वह मुझ को पकड़ने के लिये उद्यत हुआ; मैंने फ़ौरन उस तेज़ छुरी को निकाल कर उसकी छाती में आघात किया। वह कई कपड़े पहने हुए शा, इसलिये छुरी उसकी छाती में घुस न सकी। किन्तु उस नराधम ने मुझको फिर स्पर्श न किया। बल्कि देवीसिंह के ऊपर अत्यन्त बिगड़ कर खड़ा हुआ। उस समय से देवीसिंह ने किसी के पास मुझे नहीं भेजा। उसे यह आशा थी कि दो चार महीने में मैं उसके वशीभूत हो जाऊँगी। इसके बाद दस बारह स्त्रियों के साथ मुझको लेकर वह मुर्शिदाबाद होते हुए पूर्णिया को चला।

मैं किसी तरह से पूर्णिया जाने को राज़ी नहीं हुई। तब मुझे बाँध कर पूर्णिया ले चला। जो स्त्रियाँ प्राणों का भय करती थीं; प्राण-विसर्जन कर के धर्म-रक्षा करने के लिये तैयार नहीं थीं, उन्हें वह सहज ही कुपथगामिनी बना लेता था। किन्तु जो धर्म-रक्षा के लिये प्राण त्यागने को तैयार रहती हैं, उन्हें इस भूमण्डल में कोई भी कुपथगामिनी नहीं बना सकता। मैं प्रायः डेढ़ वर्ष तक उसकी स्त्रियों के रहने वाले मकान में रही। पूर्णिया में मेरे अतिरिक्त इसके साथ दस और स्त्रियाँ थीं। उनमें छः मुसलमान-महिलाएँ एवं चार हिन्दू-महिलाएँ थीं। उन सरल प्रकृति की मुसलमान-कन्याओं को वह यह कह कर प्रलोभन देता था कि उनका किसी साहबसूबा के साथ निकाह कर दिया जायगा। किन्तु हिन्दू-महिलायें अच्छी तरह से जानती थीं कि अंगरेज़ को छूते ही उन्हें धर्म-भ्रष्ट होना पड़ेगा। इसलिये केवल पीटने के भय से ही वे अन्त में आत्म-विक्रय करने को तैयार होती थीं।

पूर्णिया में देवीसिंह के अधीन एक सिक्ख जमादार था। उसका नाम लक्ष्मणसिंह है। लक्ष्मणसिंह ने देख लिया कि धर्म-रक्षार्थ मैं प्राणों की भी परवा नहीं करती, तब तो मुझ पर उसकी प्रगाढ़ भक्ति एवं श्रद्धा हो गई। वह मुझको 'मां' कह कर के सम्बोधित करने लगा। एक दिन मेरे निकट आकर बोला, "विश्वासघात को मैं अत्यन्त पाप समझता हूँ, नहीं तो अब तक मैं आपको चुपके से भाग जाने का मौक़ा दे देता। मैंने लक्ष्मण से कहा, "बेटा, स्वामी और पुत्र के शोक से मेरा हृदय जल रहा है। मेरे मरने ही से अच्छा है। तुम मेरे लिये व्यर्थ विपत्ति में क्यों पड़ोगे? जिससे मैं शीघ्र इस लोक को छोड़ सकूँ—वही चेष्टा कर रही हूँ। मालूम होता है कि दो एक मास

यहाँ और रहने पर परमेश्वर मुझे इस संसार की यन्त्रणाओं से मुक्त कर देंगे।

लक्ष्मण मेरी यह बात सुन कर लड़के की भाँति रोने लगा। वह एक दीर्घाकार वीर पुरुष है। उसको देखने से मालूम होता है कि वह यम का सहोदर भाई है। किन्तु मैं कभी नहीं जानती थी कि बलवान सैनिक का हृदय इतना कोमल होगा, वह रोते हुए बोला—"माँ, मैं तुमको अपनी गर्भधारिणी माता के समान जानता हूँ। सचमुच तुम्हारे धर्म-भाव और पवित्रता को देख कर मैं मुग्ध हो गया हूँ। दुरात्मा देवीसिंह इन सैकड़ों कुल-कामिनियों को लाकर इन्हें सहज ही कुपथगामिनी बना डालता है। किन्तु तुम्हारे समान परम साध्वी स्त्री मैंने कहीं पर नहीं देखी थी। बाबा नानक कह गये हैं कि जिस स्थान पर साध्वी स्त्री रहती है, वही तीर्थ-स्थान है। मैं विचार करता हूँ कि मैं तुम्हें अपने घर रख कर अपनी स्त्री के साथ तुम्हारी पूजा करूँगा। यदि तुम मुझको अपनी गर्भ-जात-सन्तान जानोगी तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। यदि तुम मेरे गृह में निवास करोगी तो मैं अपने घर को पवित्र तीर्थ-स्थान जानूँगा।"

"लक्ष्मण की यह बात सुनकर मेरे हृदय में तत्क्षण अत्यन्त स्नेह उदय हुआ। वह जिस प्रकार का दीर्घाकार वीर पुरुष है, उससे उसको देखते ही रमणीमात्र के हृदय में भय का सञ्चार होता है। किन्तु हृदयावेग से परिचालित होकर मैं उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगी। पाले हुए सिंह की नाईं वह मेरे पैरों के तले पड़ा हुआ था।"

"किन्तु कुछ समय तक लक्ष्मण मन ही मन न जाने क्या सोच कर मुझसे कहने लगा, 'माँ, मेरे लड़के-बाले कोई नहीं हैं। एक भाई का लड़का था, उसकी भी मृत्यु हो गई। मैं

अब नौकरी नहीं करूँगा। विशेष कर देवीसिंह के समान दुरात्मा या इस ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समान धर्म-ज्ञान-शून्य म्लेच्छों की नौकरी करने से निश्चय ही मनुष्य को लोक में दया-धर्म को छोड़ना पड़ता है। मैं नौकरी छोड़ तुम्हें लेकर स्वदेश को चलूँगा। यदि इस तरह देवीसिंह तुमको छोड़ने को तैयार न होगा, तो फौरन (कमर की तलवार दिखा कर) इस सुतीक्ष्ण तलवार के द्वारा उसका मस्तक काट करके तुम्हें छुड़ा लूँगा। किन्तु जितने दिन उसके अधीन नौकरी करूंगा, तब तक उसके विरुद्ध कोई विश्वासघात का काम नहीं करूँगा। नमकहरामी बहुत बड़ा पाप है। बाबा नानक ने कहा है कि जिसका वेतन ले, प्राण विसर्ज्जन करके भी उसका उपकार करे।"

"लक्ष्मण जब हमारे पास से चला गया, तो मैं एकान्त में बैठ कर उसकी बातों पर विचार करने लगी। क्रम से मैं अपने को भूलने लगी। कुछ नींद लग गई थी; इतने ही में पीछे से हठात् किसी के चिल्लाने का शब्द सुन पड़ा। दो घड़ी रात जा चुकी थी। चन्द्रमा की चाँदनी में मैंने देखा कि एक वृक्ष के तले एक परम सुन्दर युवा पुरुष को मारने के लिये देवीसिंह के कई बरकन्दाज़ आयोजन कर रहे हैं। जिस किसी आदमी को चुपके से मारना होता था, देवीसिंह के आदमी उसको घर के अन्दर से इसी वृक्ष तले लाकर मार डालते थे। युवक ने विशेष वीरतापूर्वक एक बरकन्दाज़ के हाथ से तलवार छीन कर उसका मस्तक काट डाला। उसी से बरकन्दाज़ों में कोई चिल्ला उठा था।

"उस युवक के मुख की शोभा देख कर उसके प्रति मेरे हृदय में दया का संचार हुआ। मैं मन ही मन सोचने लगी कि इस के समान सुपुत्र के वियोग से इसकी माता अवश्य ही पागल

हो जायगी। मैं सोचने लगी कि किस उपाय से इस युवक की प्राण-रक्षा हो सकती है? जितना ही मैं उसके मुँह की ओर देखती, उतना ही उसके प्रति मेरा स्नेह प्रगाढ़ होता गया। बहुत सोच विचार कर मैं लक्ष्मण के पास जाकर बोली, 'बेटा लक्ष्मण! देवीसिंह के आदमी एक अत्यन्त सुन्दर और वीर ब्राह्मण-कुमार का वध करने के लिये उद्योग कर रहे हैं। यदि तुम यथार्थ ही मेरे पुत्र हो तो मेरे अनुरोध से उसके प्राण बचाओ।'

लक्ष्मण बोला—"यह बड़ा कठिन काम है। इस ब्राह्मण-कुमार का नाम प्रेमानन्द गोस्वामी है। यह देवीसिंह के प्राण लेने के लिये अपने साथ छुरी लाये हुए था। देवीसिंह जिस प्रकार का मनुष्य है, उससे तो यह कभी आशा नहीं की जा सकती कि वह इसको क्षमा प्रदान करेगा"।

मैं बोली, "मेरे अनुरोध से तुम अन्त में विश्वासघात करके इसकी जान बचाओ।" उस समय सोच विचार कर वह बधस्थल को गया। एवं बरकन्दाज़ों को धमकाते हुए उसने उनसे कहा, "इसको अभी मारने का हुक्म नहीं है। दस घड़ी रात बीतने पर जो करना है, वह किया जायगा। इसको मेरे ज़िम्मे करके तुम लोग चले जाओ"। बरकन्दाज़ों ने कहा, "जमादार साहब, यह बड़ा शैतान है। अकेले इसको पकड़ कर नहीं रख सकेंगे।"

लक्ष्मण सिंह ने कहा—"कोई भय नहीं। ऐसे सात बंगालियों को मैं अकेले पकड़ कर रख सकता हूँ।"

बरकन्दाज़ों ने सोचा, हो सकता है कि देवीसिंह ने इनको ऐसा ही हुक्म दिया हो। इसलिए वे लोग प्रेमानन्द को लक्ष्मण के ज़िम्मे कर के चले गये।

देवीसिंह स्वयं लक्ष्मणसिंह पर अत्यन्त विश्वास करते थे। देवीसिंह इस बात को भी अच्छी तरह से समझते थे कि वह इन कुकर्म्मों से अन्तःकरण से घृणा करता है। किन्तु यह जानते-सुनते हुए भी लक्ष्मण को बरख़ास्त करने के लिये तैयार नहीं थे। देवीसिंह को दृढ़ विश्वास था कि लक्ष्मणसिंह कभी मिथ्या प्रवंचना द्वारा मेरे धन को अपहरण नहीं करेगा। इसी कारण उसने लक्ष्मण को मालख़ाने का पहरेदार नियुक्त किया था। लक्ष्मण देवीसिंह के मालख़ाने का जमादार था।

नौ घड़ी रात्रि बीत जाने पर आकाश मण्डल से चन्द्रमा अदृश्य हो गये। चारों तरफ़ घोर अन्धकार छा गया। उस समय लक्ष्मण चुपके से मुझे घर लिवा ले गया और उसने सिपाही की पोशाक पहनने के लिये मुझे कहा। मैं एवं प्रेमानन्द दोनों सिपाही की पोशाक पहन कर लक्ष्मण के साथ साथ देवीसिंह की माल कचहरी से बाहर हुए। कुछ दूर चलने पर हम एक मैदान में पहुँचे। वहाँ पर दो और आदमी हम लोगों की इन्तज़ारी कर रहे थे। लक्ष्मण ने उनसे कहा, 'इस ब्राह्मण-कन्या को मैं माता के समान मानता हूँ। यह परम साध्वी है। इसको तथा युवक को दिनाजपुर में मेरे भाई रामसिंह के घर पहुँचा आओ और रामसिंह को यह पत्र भी दे देना।'

लक्ष्मण से विदा ग्रहण करने के पूर्व ही उसने मुझ से कहा, 'माँ, मैं गुरु नानक का शिष्य हूँ। इस जन्म में कभी भी विश्वासघात का काम नहीं करता; किन्तु देवीसिंह कभी भी इस ब्राह्मण-कुमार को नहीं छोड़ता, इसलिये बाध्य होकर आज मुझे विश्वासघात करना पड़ा। अतएव मैं अभी देवीसिंह के पास जाकर कहूँगा कि मातृवाक्य-पालनार्थ मैंने विश्वासघात का काम किया है। मैं अब तुम्हारी नौकरी नहीं करूँगा। यदि

उसकी इच्छा होगी तो मेरे विश्वासघात के कारण उपयुक्त दण्ड भी देगा। मैं सिर नवाकर उसके दिये हुए दण्ड को ग्रहण करूँगा।'

मैं लक्ष्मण की इस बात को सुनकर काँप उठी। मेरे मन में यह बात उठी कि कहीं ऐसा तो न हो कि देवीसिंह इसे बध करने की सज़ा दे दे और लक्ष्मण इच्छापूर्वक विश्वासघात के दण्ड-स्वरूप अपने प्राण-विसर्जन करने को राज़ी हो जाय। उस समय मैंने लक्ष्मण का हाथ पकड़ कर कहा, "पुत्र-शोक से मेरा हृदय जलता रहता है। इस विपन्नावस्था में जो तुम मुझ को 'माँ' कह कर पुकारते हो, इससे मुझे कुछ शान्ति हो जाती है। अब तुम्हारे प्राण-विसर्जन करने पर मैं किस प्रकार आत्म-रक्षा करूँगी ? मैं तुम्हारे साथ ही चलूँगी। केवल इस ब्राह्मण-कुमार को भागकर चले जाने की सुविधा कर दो।"

लक्ष्मण मेरी बात सुनकर कुछ समय तो निर्वाक् सा रह गया। बाद में बोला, 'माँ, तुम्हें डरने की कोई बात नहीं। मैंने प्राण-विसर्जन करने ही के लिये इरादा कर लिया है। किन्तु तुम्हारी बात का मैं उल्लंघन नहीं करूँगा। यदि मेरे बचे रहने से तुम्हें सुख होवे, तो मैं तुम्हारे सुख के लिये प्राण-रक्षा करूँगा। आज से मैं अपना यह जीवन तुम्हारे चरणों में समर्पण करता हूँ। तुम्हारी सेवा करना ही इस जीवन का एक मात्र उद्देश्य रहेगा। जिससे तुम सुखी रहोगी, वही करूँगा। आज से तुम्हीं मेरी एक मात्र जननी, एक मात्र आराध्य देवी हुई। देवीसिंह के मालखाने की चाबी इस वक्त भी मेरे पास है। मैं अभी जाकर नौकरी से इस्तिफ़ा दे दूँगा, उसके मालखाने की चाबी लौटा कर उससे कहूँगा कि जब तुम ब्रह्म-हत्या करने से भी कुण्ठित नहीं होते हो, तब मैं तुम्हारी नौकरी नहीं करूँगा।"

"लक्ष्मण यह कर हम लोगों से विदा ग्रहण करके चला गया ! हम लोग उसके दिये हुए आदमियों के साथ कृष्णगञ्ज होते हुए दो दिन के बाद दिनाजपुर आ पहुँचे।"

लक्ष्मण के पत्र को पाकर उसके भाई रामसिंह ने बड़े आदर के साथ हम लोगों को अपने गृह में स्थान दिया। राम सिंह का हृदय दया एवं स्नेह से परिपूर्ण है। लक्ष्मण मुझको माँ कहकर पुकारते थे, इसलिये रामसिंह भी मुझे 'माँ' कहकर सम्बोधित करने लगे। किन्तु रामसिंह उस समय अत्यन्त शोकार्त्त हो रहे थे। हम लोगों के उनके घर पहुँचने के एक मास पहले ही उनका एक मात्र पुत्र मर गया था। प्रेमानन्द को अपने गृह में पाकर वे उसपर पुत्रवत् प्रेम रखने लगे।

"प्रेमानन्द रामसिंह की स्त्री को एवं मुझे 'माँ' कहकर सम्बोधन करने लगे। इसके दो दिन के बाद लक्ष्मणसिंह नौकरी छोड़ करके दिनाजपुर आ पहुँचे। लक्ष्मण की स्त्री भी रामसिंह के घर में निवास करती थी। वह पुत्रवधू के समान मेरी सेवा-शुश्रूषा करने लगी। किन्तु मुझे सदा आँसू बहाते हुए देखकर, लक्ष्मण तथा उसकी स्त्री अत्यन्त दुख प्रकट करती और हमेशा पूछा करती कि मेरे दुःख के दूर होने का कोई उपाय है या नहीं, अन्त में मैंने अपनी सारी दुःख कहानी उन लोगों से कह दी।"

× × × ×

तब प्रेमानन्द एवं लक्ष्मण मुझे रामसिंह के घर पर रख कर मेरे ज्येष्ठ पुत्र को ढूँढने के लिये दिल्ली को चल पड़े। दो तीन मास हुए, प्रेमानन्द स्वदेश को लौट आये, किन्तु लक्ष्मण इस समय भी मेरे पुत्र को पंजाब में ढूँढ रहे हैं। प्रेमानन्द ने जैसा कहा है, उससे तो ज्ञात होता है कि लक्ष्मण शीघ्र मेरे

बड़े लड़के को साथ लेकर यहाँ पर आ पहुचेंगे। मैने सुना है कि मेरा बड़ा लड़का अब तक जीवित है।"

रमणी के यहाँ तक कहने पर सत्यवती ने उससे पूछा, "आपको कितनी सन्तान थीं?"

रमणी बोली, "ये सब बातें और किसी के सामने कहना नहीं चाहती। इतना ही कहता हूँ कि दुरात्मा गंगा गोविन्दसिंह की प्रतारणा के कारण मेरे स्वामी ने आत्म-हत्या करली एवं दो बच्चे भूख-प्यास से मर गये।"

रामानन्द गोस्वामी बोले, "माँ, आप ही के प्रसाद से मेरा प्रेमानन्द अब भी जीवित है। यदि आप हम लोगों से अपना परिचय देंगी तो क्या हम लोग आप का अनिष्ट करने की चेष्टा करेंगे?"

रमणी—"आप लोग मेरा कोई अनिष्ट सधान नहीं करेंगे, इस बात को मैं अच्छी तरह से जानती हूँ। किन्तु प्रेमानन्द ने अब तक किसी के सामने आत्म-विवरण प्रकट करने से मना किया है। मैं नहीं समझती कि इस समय तक भी गंगा-गोविन्दसिंह मुझे पकड़ने की क्यों चेष्टा कर रहा है। ज्ञात होता है कि वे इस विषय में कुछ जानते हैं, इसी से उन्हाने मुझे आत्मगोपन करने के लिये ताकीद की है।"

रामानन्द—"प्रेमानन्द को इस समय फिर से गङ्गा गोविन्द सिंह ने क़ैद करके कारागार में क्यों रखा है? मैंने अपनी ब्रह्मोत्तर ज़मीन आज दस वर्ष से छोड़ दी है। पैतृक जन्म-भूमि तक को परित्याग कर दिया है।

रमणी—"यह तो ठीक ठीक नहीं जानती कि उसने क्यों प्रेमानन्द को क़ैद करके रखा है। लेकिन सुना है कि गौर मोहन

चौधरी नामक एक दुष्ट व्यक्ति ने उनकी सारी अभिसन्धि को प्रकट कर दिया है।"

रामानन्द—"देवीसिंह के पूर्णिया वाले जेल से भग जाने पर प्रेमानन्द कितने दिन तक दिनाजपुर में थे?"

रमणी—"पूर्णिया से भागकर दिनाजपुर पहुँचते ही मैंने प्रेमानन्द से उनके पिता एवं स्त्री के पास जाने के लिये कहा। किन्तु मेरी इस बात से वे सहमत नहीं हुए। वे मुझ से बोले, माँ! तुम्हारे ही प्रसाद से मेरी जीवन-रक्षा हुई है। तुम्हारे पुत्र का अनुसन्धान किये बिना मैं घर नहीं लौटूँगा। हाँ, उन्होंने गुप्त रीति से पता लगा कर यह जान लिया था कि आप लोग निर्विघ्न रङ्गपुर में किसी शिष्य के यहाँ निवास कर रहे हैं। उन्हें आप लोगों के लिये किसी विपत्ति की आशङ्का नहीं थी, इसलिये लक्ष्मण के साथ वे मेरे पुत्र को तलाश करने चले गये। किन्तु ग्यारह वर्ष तक काशी, वृन्दावन, प्रयाग, अयोध्या आदि स्थानों में पर्य्यटन करने पर भी मेरे पुत्र का कोई पता नहीं लगा। तब वे लोग निराश हो कर स्वदेश को लौट रहे थे। काशी पहुँचने पर एक महात्मा से उन लोगों को पता चला कि मेरा पुत्र पञ्जाब में है। उस समय लक्ष्मण काशी से फिर पञ्जाब की ओर चला। प्रेमानन्द अपने वृद्ध पिता से मिलने के लिये स्वदेश को लौट आये। किन्तु रङ्गपुर में जिस शिष्य के घर आप लोग रहते थे, उसका पता निशान तक न देखा। रंगपुर से आप लोग कहाँ चले गये, यह उस समय उन्हें कोई भी नहीं बता सका। तब वे बहुत निराश एवं दुखी होकर पुनः दिनाजपुर होते हुए मेरे पास पहुँचे। यहाँ आने पर उन्हें पता चला कि गङ्गा गोविन्दसिंह ने मुझे पकड़ने के लिये गुप्तचर नियुक्त किये हैं। इससे मैं अत्यन्त भयभीत हो

गई। तब प्रेमानन्द रामसिंह से परामर्श करके मुझे लेकर इस जङ्गल में वास करने लगे। मैं दो महीने से यहीं पर हूँ। किन्तु बीच बीच में प्रेमानन्द आप लोगों का पता लगाने के लिये रंगपुर जाते रहे हैं। इतने में रङ्गपुर में देवीसिंह के आदमियों ने उन्हें पकड़ करके गङ्गा गोविन्दसिंह के पास भेज दिया है। गङ्गा गोविन्दसिंह ने उन्हें क़ैद करके रखा है।"

रामानन्द—"रंगपुर में देवीसिंह के आदमियों ने उनको पकड़ लिया है. इस बात को किस के मुँह से सुना है ?"

रमणी—"प्रेमानन्द के परामर्श से रंगपुर की सारी अत्याचार-निपीड़ित प्रजा ने इस समय दल बांध लिया है। देवीसिंह के आदमियों ने उन पर जो इतना अत्याचार किया है, इस से अब इन लोगों ने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली है कि वे कम्पनी की अधीनता कभी स्वीकार नहीं करेंगे। कम्पनी को एक बारगी इस देश से निकाल बाहर करेंगे। प्रेमानन्द के दल के लोग सर्वदा इस जगह आकर मेरी खोज ख़बर ले जाया करते हैं। वे ही मेरे खाने के लिये चावल वगैरह दे जाया करते हैं। प्रेमानन्द कलकत्ता जाने के पहले इन लोगों से मेरी खोज-खबर लेते रहने के लिये कह गये। किन्तु आज मुझे बड़ी आशंका हो रही है। ज्ञात होता है कि प्रेमानन्द की सारी चेष्टायें, सभी प्रयत्न निष्फल हो जायंगे। यह निश्चय हुआ था कि माघ की ७वीं तिथि के पहले ही प्रेमानन्द सब प्रबन्ध कर लेंगे। किन्तु जब आज भी नहीं आये, तो इस से बड़ी विपत्ति की आशंका हो रही हैं।"

रमणी की बात ख़तम होते ही जंगल के बीच से पाँच मनुष्य आकर यकायक कुटीर के सम्मुख खड़े हो गये। रामानन्द गोस्वामी एवं सत्यवती भय से कांप उठी। किन्तु

रमणी उन्हें आश्वासन देती हुई बोली, "कोई भय नहीं। ये लोग प्रेमानन्द के जान-पहचान के आदमी हैं। प्रेमानन्द का क्या हुआ, अभी मालूम हो जायगा।"

पन्द्रहवाँ अध्याय

कलकत्ते की यात्रा

नवागत पाँचों व्यक्तियों ने कुटीर के द्वार पर पहुँच कर कुटीर-वासिनी रमणी के चरणों में भक्ति-भाव से प्रणाम किया। रमणी उन्हें आशीर्वाद देती हुई बोली—"भगवान् तुम लोगों की इच्छा को पूर्ण करें।" इन पाँच व्यक्तियों में एक का नाम दयाराम था। कोई कोई इसको दयाशील कह कर के भी पुकारा करते थे। अन्य चार आदमी इस रमणी के भोजन आदि के लिये मस्तक पर चीज़ें लेकर दयाराम के साथ आये हुए थे।

दयाराम ने कुटीर-वासिनी रमणी को सम्बोधन कर के कहा, "माँ, हम लोग इस समय विशेष उत्कण्ठित हो रहे हैं। प्रेमानन्द पकड़े जाने के समय कह गये थे कि जिस तरह होगा, जेल को तोड़ कर के भी ७ वीं माघ के पूर्व रंगपुर पहुँच जाऊँगा। किन्तु आज तक भी वे आ नहीं सके। वे यह भी कह गये थे कि यदि ठीक समय पर मैं न भी आ सकूँ तो उस दिन तुम लोग कार्यारम्भ कर देना। उन्हीं के उपदेशानुसार गत दिवस हम लोगों ने नूरुल्मुहम्मद को नवाब की गद्दी पर बैठा कर कम्पनी के प्यादों एवं बरकन्दाज़ों को गाँव से बाहर निकाल दिया है। किन्तु उन लोगों ने उसी विश्वासघातकी गौर मोहन चौधरी की सहायता लेकर कालीहाट के

लोगों को पकड़ना प्रारंभ कर दिया है। इसी कारण से कल हम लोगों का उन लोगों से युद्ध हो गया था। युद्ध में वे सम्पूर्ण रूप से परास्त हुए। ईस्ट इण्डिया-कम्पनी के सिपाही, प्यादे, बरकन्दाज़ कोई भी प्राण लेकर नहीं भाग सके। प्रेमानन्द कह गये थे कि भागते हुए लोगों की कभी जान नहीं लेनी चाहिये पर हमारे पक्ष के लोगों ने उनके उस उपदेश को भूल कर सामयिक उत्तेजना वश कम्पनी के सभी लोगों के प्राण ले लिए। एवं उनके साथ ही साथ गौर मोहन चौधरी को भी मार डाला। गौर मोहन चौधरी की विश्वास-घातकता के कारण ही प्रेमानन्द गोस्वामी पकड़े गये थे। इसलिए केवल बैर का बदला लेने के भाव से प्रेरित होनेके कारण हमारे लोगों ने गौर मोहन को मार डाला। हमें ज्ञात होता है कि प्रेमानन्द ठाकुर के संग्राम-क्षेत्र में उपस्थित न रहने पर उनके निर्द्धारित किये हुए सब नियमों का पालन करना बड़ा कठिन होगा। वे बारम्बार कह गये थे कि धर्म का मार्ग—सत्य का मार्ग—न छोड़ने पर हम लोगों की कभी पराजय नहीं हो सकती। उनके उपदेशों के प्रतिपालन के लिये हम लोग प्राणपण से चेष्टा करते हैं। किन्तु विपक्ष-दल विश्वास-घात कर रहा है, उससे हमको भय होता है कि आत्म-रक्षार्थ हम लोगों को भी कभी कभी न्याय-पथ छोड़ कर अन्याय-पूर्ण युद्ध में प्रवृत्त होना पड़ेगा। इस समय हम लोगों को उपदेश देने वाला कोई नहीं है। आपको हम लोग साक्षात् भगवती देवी समझते हैं। प्रेमानन्द के उद्धार के लिये इस समय क्या करना चाहिये, यही आप से पूछने के लिये आये हुए हैं।"

दयाराम की बात ख़तम होने पर कुटीर-वासिनी रमणी बोली, 'बेटा, जब लड़ाई आरंभ हो गई है, तब तुम में से

किसी को भी इस समय कार्यक्षेत्र को छोड़ कर प्रेमानन्द के उद्धार के लिये दूसरे स्थान पर जाने की आवश्यकता नहीं। तुम लोग कार्यक्षेत्र में डँट कर प्राणपण से युद्ध करो। प्रेमानन्द के उद्धारार्थ जो कुछ करना होगा, उसे मैं स्वयं करूँगी। कम्पनी के दौरात्म्य से सारा ही देश अराजकता-पूर्ण हो रहा है, इससे विशेष अत्याचार होने की संभावना है। विपक्ष-दल देशी रमणियों पर कोई अत्याचार न कर सके, इसके लिये प्राण-पण से चेष्टा करनी होगी। प्रेमानन्द तुम लोगों से बारम्बार कह गये हैं—'युद्ध-काल में क्या अपने दल को और क्या विपक्ष-दल की स्त्रियों पर किसी का प्रकार अत्याचार न होने पावे, इस बात की विशेष सावधानी रखनी चाहिये। उनके इस उपदेश का कभी उल्लंघन न करना।"

दयाराम—"हम लोग शरीर में प्राण रहते उस उपदेश की कभी अवहेलना नहीं करेंगे। किन्तु कम्पनी के सिपाही स्त्रियों तक पर अत्याचार करने से बाज़ नहीं आते, इसलिये उनकी ऐसी निष्ठुरता पूर्ण कार्रवाइयों को देख कर हमारे लोग भी क्रोधित होकर उनका अनुकरण कर सकते हैं।"

कुटीर-वासिनी—"पुरुष होकर जो सैनिक नारी-जाति पर अत्याचार करते हैं, वे वास्तव में कायर हैं। वे कभी वीर कहलाने के योग्य नहीं। वे सचमुच दुष्ट हैं।"

दयाराम—"आपके इस उपदेश का प्रतिपालन करने के लिये हम लोग प्राणपण से चेष्टा करेंगे। कल के युद्ध होने के बाद हम लोग सायंकाल को रंगपुर छोड़ कर आज अपराह्न में यहाँ पहुँचे। क्या हमको अभी रंगपुर लौट जाने को कहती हैं।"

कुटीर-वासिनी—"तुम लोग एक मुहूर्त भी विलम्ब न करो।

साथ के लोगों को लेकर घोड़े पर सवार हो रंगपुर को चले जाओ। ईश्वर की इच्छा होने पर प्रेमानन्द भी चार पाँच दिन के भीतर यहाँ पहुँच जायँगे।"

दयाराम रमणी को प्रणाम कर, उसी समय रंगपुर को चला। उसके चले जाने पर कुटीर-वासिनी देवी ने सत्यवती से कहा, "बेटी, मैं स्वयं प्रेमानन्द के उद्धारार्थ कलकत्ता जाऊँगी। तुम लोग इसी स्थान पर मेरे लौट आने तक रहो। किन्तु मुझे एक बात की आशंका हो रही है। प्रेमानन्द ने मुझे इस स्थान को छोड़ कर जाने से बार बार मना किया है। मैं नहीं कह सकती कि किस उद्देश्य से उन्होंने ऐसा कहा था।"

सत्यवती बोली, "माँ, आपको दूसरी जगह जाने का उन्होंने निषेध किया है, इसलिये आप यहीं पर रहें। मैं कलकत्ता जाकर उनके उद्धार के लिये चेष्टा करूँगी।"

कुटीर-वासिनी—"उनके उद्धार के लिये तुम किस उपाय का अवलम्बन करोगी?"

सत्यवती—"उस जगह जाकर परिस्थिति के अनुसार जो करना होगा, करूँगी।"

कुटीर-वासिनी—"तुम कुलवधू हो। तुम्हारे लिये यह दुस्साध्य है।"

सत्यवती—"विपत्ति में पड़ कर बहुत दुस्साध्य कामों को करना सीख लिया है। विपद् एवं दुरवस्था मनुष्य को अनेक बातों की शिक्षा देती है।"

रामानन्द गोस्वामी इनकी आपस की बातचीत को सुन कर बोले—"बहू ने जैसा साहस दिखा कर मुझको कारामुक्त किया है, उससे मुझे अनुमान होता है कि वह अवश्य ही बेटे को छुड़ा कर ला सकेगी। मैं और अधिक दिन तक ज़िन्दा

नहीं रहूँगा। मृत्यु के पहले एक बार बच्चे को देखने की इच्छा होती है।"

रामानन्द की बात अभी ख़तम ही हुई थी कि इतने में रूपा आ करके इनके सामने उपस्थित हो गया। रूपा पहले ही से जानता था कि ये लोग पांडुया के जंगल में आकर रहेंगे। रूपा को निरापद लौटा हुआ देख कर इन लोगों को अपरिमित आनन्द हुआ। बहुत बातचीत होने के बाद सत्यवती ने जगा को साथ लेकर स्वामी के उद्धारार्थ कलकत्ते की यात्रा की। इसकी अनुपस्थिति में कुटोर-वासिनी रमणी रामानन्द की सेवा-शुश्रूषा करने लगी।

सोलहवाँ अध्याय

स्वप्न

"Gangagovind was considered as a general oppresser of every native he had to deal with. By Europeans he was deterled, by natives he was dreaded."

—*Evidence of Mr. Petar Moor in the trial of Hastings.*

अर्थात् गंगा गोविन्दसिंह देशी लोगों में प्रत्येक के साथ जिन-से उसे काम पड़ता—बड़ा ही निष्ठुरतापूर्ण व्यवहार करता। योरोपियन लोग उससे घृणा करते थे, देशी लोग उससे कांपते थे।

—हेस्टिंग्स के मामले में मि० पेटरमूर की गवाही।

इस संसार में जो दूसरे का अनिष्ट करके पद-प्रभुत्व पाता है, जो सर्वदा स्वार्थपरता द्वारा परिचालित होकर दूसरे की भलाई-बुराई की ज़रा भी परवा नहीं करता, उसे इस जीवन

में कभी शान्ति नहीं मिलती। चिर-अशान्ति ही उसे एक मात्र पुरस्कार मिलता है। किन्तु ऐसे सभी मनुष्य एक ही प्रकार की अशान्ति का उपभोग नहीं करते। अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार एक एक व्यक्ति भिन्न भिन्न प्रकार की अशान्ति का उपभोग करता है।

स्वार्थपरता, अर्थलिप्सा, काम, क्रोध इत्यादि विकारों ने जिस के हृदय को एक दम पत्थर बना दिया है, जिसके हृदय में दया का नाम मात्र भी दिखाई नहीं पड़ता, जिसके कानों में दरिद्रों का आर्त्तनाद एवं क्रन्दन-ध्वनि कभी प्रवेश नहीं करती, आत्म-सुख-चिन्ता ने जिसके ज्ञान को निष्पन्द कर दिया है, एवं यश और प्रभुत्व-लाभ की अदम्य अभिलाषा जिस की चिन्ता-शक्ति को केवल उसी ओर परिचालन करती है, निराशा एवं भय ही उनकी चिर-अशान्ति का एक मात्र मूल कारण होता है।

दूसरी ओर जिसका विवेक इतने पर भी सम्पूर्ण रूप से निष्पन्द नहीं हुआ है, दया, स्नेह, ममता, अब भी विद्युत के आलोक के समान जिसके हृदय में अन्तिम चेतावनी की तरह कभी कभी समुदित हो जाती है, परमेश्वर उसे सन्मार्ग पर लाने के लिये समय समय पर उसके हृदय में अनुताप की अग्नि प्रज्वलित करके, उसे आत्म-सुधार का सुयोग प्रदान करते हैं।

देवीसिंह का हृदय एक दम पत्थर हो गया था; उसकी अन्तरात्मा जलकर राख सी हो गई थी। दया, ममता एवं स्नेह का आलोक उसके अन्धकूप के सदृश हृदय में प्रवेश नहीं कर सकता था; कोई कुकर्म, किसी प्रकार का असदाचरण उसके हृदय में अनुतापानल को प्रज्वलित नहीं कर सकता था।

किन्तु गंगा गोविन्दसिंह, देवीसिंह के समान एकदम मनुष्यत्व विहीन नहीं हो गये थे। स्वार्थपरता, एवं अर्थलिप्सा ने सम्पूर्ण रूप से उसकी विचार-शक्ति को निष्पन्द नहीं कर दिया था। एडमण्ड, बर्क, आदि इंग्लैंडवासी सहृदय महात्माओं ने देवीसिंह एवं गंगा गोविन्दसिंह दोनों को एक तरह का नर-पिशाच कहा है। किन्तु गंगा गोविन्दसिंह के हृदय में क्षणस्थायी बिजली की तरह समय समय पर स्नेह, ममता एवं दया का अन्तिम चिन्ह प्रकट होता रहता था।

गंगा गोविन्दसिंह सर्वदा दिन भर राजस्व सम्बन्धी कार्यों में व्यस्त रहते थे। देश के कुल राजस्व सम्बन्धी कार्यों का भार उन्हीं के हाथ में था। इसलिये दिन भर में एक क्षण के लिये भी दूसरी बातों के सोचने का उन्हें मौक़ा नहीं मिलता था। किन्तु प्रायः प्रत्येक रात्रि को एक भयानक स्वप्न उनकी निद्रा को भंग कर देता था। स्वप्नावस्था में कभी कभी रात में वे चिल्ला उठते थे।

प्रायः बारह तेरह वर्ष से प्रत्येक रात्रि में वे स्वप्न में देखते कि एक परम सुन्दरी ब्राह्मण-कन्या हाथ में तेज छुरी लिये हुए दोनों बगलों में दो मृत-सन्तान लेकर दौड़ती हुई उनकी ओर आ रही है। ब्राह्मणी पास आते ही दोनों मृत सन्तानों को उनके मस्तक पर पटक कर उनके वक्षस्थल में छुरी घुसेड़ रही है। पुनः पीछे से एक ब्राह्मण अपने गले का जनेऊ खोलकर उनके गले में कस रहा है। एवं बारबार क्रोध पूर्वक कह रहा है, "तेरे अत्याचार से मैंने सर्वस्व गवाँ कर अपनी जान दे दी। आज उसी तरह से तेरी जान लूँगा।"

जनेऊ के गले में लगाते ही उनका गला कसा हुआ मालूम

पड़ता। वे स्वप्नावस्था ही में चिल्ला उठते। उनके चिल्लाने के साथ साथ उनकी स्त्री की निद्रा भी भंग हो जाती।

गंगा गोविन्दसिंह की सहधर्मिणी अत्यन्त पतिप्राणा एवं पुण्यवती थीं। वे अपने स्वामी के मुख से इस स्वप्न की बात को सुन कर अत्यन्त दुःखी होतीं। ऐसे स्वप्न के सम्बन्ध में हिन्दू-रमणी के तत्कालीन संस्कारों से परिचालित होकर उन्होंने एक दिन अपने स्वामी से कातर शब्दों में कहा—

"नाथ! जब तक तुम पहले के किये हुए पापों का प्रायश्चित न करोगे, तब तक स्वप्नस्वरूप इस कठिन रोग से छुटकारा नहीं पाओगे। अतएव जिस ब्राह्मण-कन्या को तुम स्वप्न में देख रहे हो, उसका पता लगाओ। जितनी भूमि से उसे वञ्चित किया है, उससे सौगुनी भूमि देकर उसकी प्रसन्नता प्राप्त करो। तुम्हारी मंगलकामना के लिये मैं कुछ समय तक उसको अपने घर में रख कर उसके चरणों की सेवा करूँगी; उससे क्षमा-प्रार्थना भी करूँगी।"

गंगा गोविन्द, देवीसिंह के समान एक दम पाषाण हृदय के नहीं थे। उन्होंने अपनी स्त्री के कहने के मुताबिक करना स्थिर किया। स्वप्न में वे जिस ब्राह्मण-कन्या को देखते थे, उसे पहले ही से पहचानते थे। इसलिये उसे लाने के लिये उन्होंने आदमियों को भेजा। किन्तु उनके भेजे हुए आदमियों ने लौट कर कहा कि वह ब्राह्मण-कन्या पागल होकर रास्ते २ मारी मारी फिर रही थी। कई महीने हुए राजा देवीसिंह ने उसे बाँध करके रखा था। तब गंगा गोविन्दसिंह ने देवीसिंह से उस ब्राह्मण-कन्या को छोड़ देने के लिये अनुरोध किया। किन्तु उस समय गंगा गोविन्दसिंह मुर्शिदाबाद में एक कानूनगो थे। उस समय उनका विशेष प्रभुत्व नहीं था। देवी-

सिंह ने उनकी बात नहीं सुनी। इसीसे देवीसिंह के साथ गंगा गोविन्दसिंह की प्रथम शत्रुता हुई थी।

देवीसिंह पहले और इस समय भी समझते थे कि गंगा गोविन्दसिंह इस ब्राह्मण-कन्या को उपपत्नी बनाने के लिये अनुसन्धान कर रहे हैं। किन्तु असली बात यह नहीं थी। देवीसिंह के समान जिसकी अन्तरात्मा एकदम नरक के सदृश हो जाती है, वह मनुष्य के किसी कार्य में भी सदुद्देश्य नहीं देख सकता।

गंगा गोविन्दसिंह सैकड़ों चेष्टायें करने पर भी उस ब्राह्मण-कन्या को न ला सके। किन्तु बारह वर्ष तक बराबर प्रत्येक रात्रि में उसे स्वप्न में देखते रहे।

सत्रहवाँ अध्याय

विप्लव का फल

"रे पापिष्ठ राजा रायदुर्लभ दुर्बल,
बांगालि कुलेर ग्लानि, विश्वासघातक,
डुविलि डुवालि पापि! कि करिलि बल,
तोर पापे बांगालीर घाटिवे नरक।"

—नवीन चंद्रसेन।

इसके पहले अध्याय में उल्लिखित गंगा गोविन्दसिंह के स्वप्न का विवरण पढ़ कर पाठक सहज ही अनुमान कर सकेंगे कि गंगा गोविन्दसिंह कुटीर-वासिनी ब्राह्मण-कन्या को ही स्वप्न में देखते थे। किन्तु यह कुटीर-वासिनी रमणी कौन है, एवं किस प्रकार से वह वर्तमान दुरवस्था को

पहुँची थी, उसका वर्णन करने के पहले कई ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख करना आवश्यक है। अतएव इस अध्याय के आरम्भ में उन ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन किया जाता है।

बंगदेश पर जब मुसलमानों की विजय-वैजयन्ती फहरा रही थी, तब महराजा मानसिंह एवं टोडरमल आदि सहृदय सूबेदारों ने, अपने अपने शासन-काल में बङ्गाल के भिन्न २ भागों की बहुत सी भूमि ब्राह्मण और पण्डितों को निष्कर दान कर दी थी। वे ब्राह्मण और पण्डितों के अतिरिक्त दूसरे विद्वान और सच्चरित्र लोगों को कभी कोई सम्मान सूचक उपाधि देते समय बहुत सी भूमि भी प्रदान करते थे। वर्तमान समय में किसी रेलवे के कन्ट्राक्टर तथा पबलिक वर्क्स डिपार्टमेण्ट के ओवरसियर दो तीन लाख रुपये हड़प कर, उसमें से दस हज़ार रुपये किसी कमिश्नर के अनुरोध से सार्वजनिक हित के कामों में चन्दा दे देते हैं और वे राय बहादुर अथवा सी० एस० आई० की उपाधि पा जाते हैं, ऐसा नियम पहले नहीं था। हिन्दू राजा तथा मुसलमान बाद-शाह किसी व्यक्ति को सम्मान सूचक उपाधि प्रदान करने के उपलक्ष्य में प्रायः भूमि भी देते थे। कभी कभी दूसरी मूल्य-वान वस्तुयें भी बिना मूल्य देते थे। नज़र के तौर पर उस वस्तु का कुछ मूल्य नहीं लेते थे। इस प्रकार की भूमि-दान-प्रथा के प्रचलित होने से, बङ्गाल की प्रायः एक चतुर्थांश भूमि को, देश के पण्डित तथा अन्य सच्चरित्र व्यक्ति निष्कर उप-योग करते थे। बङ्गाल के मुसलमान सूबेदारों में दो एक नितान्त जघन्य-चरित्र के व्यक्ति कहे जाते थे। वे लोग भी इन निष्कर ज़मीनों को ज़ब्त करने अथवा कानून द्वारा उन पर कर

लगाने की चेष्टा नहीं करते थे। किन्तु सिराज़ को सिंहासन-च्युति के बाद लार्ड क्लाइव आदि की अर्थलोलुपता के कारण मुर्शिदाबाद का राज-कोष एक दम खाली हो गया। वैसी दशा में ज़मीन पर मालगुज़ारी बढ़ाये बिना ख़र्च नहीं चल सकता था। इसलिये मीरजाफ़र के सिंहासन पाने के समय से ही देशीय ज़मीन्दारों पर घोर अत्याचार होना आरम्भ हो गया। इसके बाद, मीरक़ासिम ने सिंहासन पाने के निमित्त ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों को बहुत रिश्वत देना स्वीकार किया एवं उस रिश्वत के रुपये देने के लिये उसे मालगुज़ारी को दुगुनी कर देनी पड़ी। सन् १५८२ ई० में महाराजा टोडरमल की अमलदारी में बङ्गाल की ज़मीन की वार्षिक आय एक करोड़ सात लाख रुपये थी। इसके बाद १७५७ साल में सिराज़ के शासन-काल तक भूमि का राजस्व एक करोड़ पैंतालीस लाख से कभी अधिक नहीं हुआ था। किन्तु मीरक़ासिम के समय में (सन् १७६३ ई०) दो करोड़ छप्पन लाख अधिक मालगुज़ारी बढ़ाई गई। उसके बाद से क्रमशः भूमि की लगान बढ़ाई जाने लगी।

मुहम्मदरज़ां ख़ाँ के समय से बंगाल की निष्कर ब्रह्मोत्तर ज़मीन की ज़ब्ती आरम्भ हुई। किन्तु मुहम्मदरज़ां ख़ाँ की पद-च्युति के बाद, जिस समय वारेन हेस्टिंग्स ने स्वयं मालगुज़ारी वसूल करने का भार ग्रहण किया, उस समय बङ्गाल की निष्कर भूमि को भोगने के अधिकार छीन लिये। उन्होंने ज़मीन्दारों-तालुकेदारों को बेदख़ल करके उनकी पैतृक ज़मीन नीच कुल में पैदा हुए कलकत्ते के गुमाश्तों को इज़ारा देना आरंभ किया। इज़ारेदार यथासाध्य मालगुज़ारी बढ़ाने लगे, इस प्रकार सिराज़ की सिंहासन-च्युति के कारण राष्ट्र-विप्लव होने से

भूमि-विभाग एवं भूमि विधान के सम्बन्ध में घोर परिवर्तन उपस्थित हुआ।

वर्तमान काल के दो एक ख़ास महाल के डिप्टी कलक्टरों की तरह, मुहमदरज़ा खाँ, वारेन हेस्टिंग्स की प्रसन्नता प्राप्त करने के निमित्त, अनेक अवैध उपायों का अवलम्बन करके, बङ्गाल की मालगुज़ारी बढ़ाने की चेष्टा करने लगे। रज़ा खाँ के अधीन गङ्गा गोविन्दसिंह के ज्येष्ठ भ्राता राधा गोविन्दसिंह मुर्शिदाबाद के अन्तर्गत किसी एक परगने के क़ानूनगो थे। किन्तु उस समय जो कानूनगो अपने रजिस्टर में रद्दोबदल करके, परगने की ब्रह्मोत्तर ज़मीन ज़ब्त करने की सुविधा कर देते थे, वेही मुहम्मदरज़ा खाँ एवं ईस्ट इण्डिया कम्पनी की प्रसन्नता पाने में समर्थ होते थे। राधा गोविन्दसिंह एक बहुत धार्मिक पुरुष थे। मिथ्या प्रवञ्चना की वे अन्तःकरण से घृणा करते थे। इसलिये रज़ां खाँ एवं ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीन काम करना उनके जैसे व्यक्ति के लिये बड़ा कठिन हो गया। किन्तु इनके छोटे भाई गङ्गा गोविन्दसिंह बाल्यावस्था ही से अत्यन्त चतुर एवं कार्यदक्ष थे। वे अपने बड़े भाई की जगह पर कानूनगो का काम करने लगे और दो ही एक महीनों में उन्होंने कई ब्राह्मणों की ब्रह्मोत्तर ज़मीन को ज़ब्त करने की सुविधा कर दी। उसी समय में मुर्शिदाबाद के आस पास किसी एक प्रसिद्ध ग्राम में जगन्नाथ भट्टाचार्य नाम के एक कुलीन ब्राह्मण निवास करते थे। उनकी सह-धर्मिणी का नाम कमला देवी था। कमला देवी देखने में जैसी रूपवती थीं, उनका चरित्र भी उसी के अनुरूप था। सभी ग्रामवासी उनको विष्णु भगवान् की कमला के समान परम साध्वी एवं सदाचारिणी समझ कर उन पर बड़ी श्रद्धा एवं

भक्ति रखते थे। जो व्यक्ति उन्हें एक बार भी देख लेता, वह उनकी उस स्नेहमयी प्रशान्त मूर्ति को कभी भूल नहीं सकता था। कमला देवी के गर्भ से जगन्नाथ के तीन पुत्र पैदा हुए। इन तीनों पुत्रों के अंग की सुंदरता देख कर देखने वाले लोग मोहित हो जाते थे।

शास्त्रज्ञ एवं धार्मिक जगन्नाथ भट्टाचार्य स्त्री तथा पुत्रों के साथ अत्यन्त सुख के साथ समय बिताते थे। उन्हें किसी प्रकार की सांसारिक यंत्रणायें नहीं सताती थीं। पैतृक ब्रह्मोत्तर ज़मीन का उपभोग करते हुए वे स्वतंत्र रूप से जीवन व्यतीत करते थे। कभी किसी शूद्रादि का दान नहीं ग्रहण करते थे।

किन्तु दैव के दुर्विपाक से, गंगा गोविन्दसिंह के छल से महम्मदरज़ा खाँ की अमलदारी में जगन्नाथ भट्टाचार्य की सारी ब्रह्मोत्तर ज़मीन जब्त हो गई। महाराजा मानसिंह ने उनके पूर्व पुरुषों को यह ज़मीन दान में दी थी। इसका कोई लिखा हुआ कागज़ न था। लगभग तीन सौ वर्षों तक वंश-परम्परा से जगन्नाथ एवं उनके पूर्व-पुरुष इस ज़मीन का उपभोग करते आये थे। कानूनगो का रजिस्टर ही इस ब्रह्मोत्तर ज़मीन का एक मात्र प्रमाण था। किन्तु गङ्गा गोविन्दसिंह के रजिस्टर में इस ज़मीन को कोई ज़िक्र न था। इसलिये मुहम्मदरज़ा खाँ की अमलदारी में जगन्नाथ की ब्रह्मोत्तर ज़मीन ज़ब्त कर ली गई।

जगन्नाथ सोचने लगे कि गंगा गोविन्दसिंह का छल ही इस विपत्ति का मूल कारण है। वे सर्वदा गंगा गोविन्द से झगड़ा किया करते। उनको स्त्री-पुत्र के प्रतिपालनार्थ और कोई सहारा न था। उनकी ब्रह्मोत्तर ज़मीन के ज़ब्त हो जाने पर भी उनकी पुरानी प्रजा उन्हीं को मालगुज़ारी देने लगी।

किन्तु थोड़े ही दिनों में उस ज़मीन को कासिम बाज़ार के बेबर साहब के गुमाश्ते ने इजारा ले ली। यह नया इज़ारेदार प्रजा के ऊपर घोर अत्याचार करने लगा। प्रजा के लिये आत्म-रक्षा करना अत्यन्त कठिन हो गया। इसलिये वे जगन्नाथ को किसी प्रकार से सहायता करने में समर्थ न हुए।

एक वर्ष तक जगन्नाथ ने तो घर की सामग्री बेंच कर किसी प्रकार कष्ट से दिन बिताये। किन्तु दूसरे वर्ष बड़ी विपत्ति में पड़े। विशेष कर इस साल (१७६६) देश में पैदावार बहुत कम हुई। चांवल का मूल्य बहुत बढ़ गया था। जगन्नाथ के पास गुज़ारे के लिये कोई अन्य मार्ग नहीं था। यहाँ तक नौबत आ पहुँची कि स्त्री और बच्चों के साथ कभी कभी बिना खाये भी रह जाना पड़ता था।

कमला देवी सूत कात कर एवं घर का आम, कटहल बेंच कर जो दो चार पैसे पाती, उससे बाल-बच्चों को एक दो दिन के लिये खाने भर को हो जाता। इस घोर विपत्ति ने जगन्नाथ को एक दम पागल बना दिया वे अपनी स्त्री से कहते— "मैं दिल्ली के बादशाह के यहाँ जाकर अपनी ब्रह्मोत्तर ज़मीन को बहाल कराके लाऊँगा। मेरे सात पीढ़ी की ब्रह्मोत्तर ज़मीन से मुझे कौन बे दख़ल करने वाला है?"

जगन्नाथ के ज्येष्ठ पुत्र क्षेत्रनाथ की अवस्था इस समय प्रायः बारह वर्ष की हो गई थी। वह रोज़ रोज़ अपने पिता के मुख से उपर्युक्त बात को सुन कर एक दिन बोला— "पिता तुम घर रहो। तुम्हारे चले जाने से मां को लकड़ी कौन ला देगा? बाज़ार में जाकर आम कौन बेंच लावेगा? मैं ही दिल्ली के बादशाह के पास जाऊँगा।"

पुत्र के मुख से यह बात सुनकर जगन्नाथ आँखों से आँसू

गिराने लगे। अपने बाल बच्चों की दुरवस्था देख कर उनका हृदय विदीर्ण होने लगा। सर्दी से रक्षा करने को छोटे लड़के के लिये कपड़े ख़रीदने तक की भी सामर्थ्य उनमें न रही। प्रातःकाल दोनों छोटे बच्चे को छाती में रख कर उन्हें शीत से बचाना पड़ता था। कमला देवी एक पुराने वस्त्र द्वारा घुटने से कमर तक शरीर की किसी तरह लज्जा निवारण करती। किन्तु कमर से मस्तक तक का शरीर बिल्कुल खुला रहता इसलिये अब बाहर निकलना भी बड़ा कठिन हो गया। इस प्रकार के पुराने वस्त्र पहन कर कोई रमणी अपने स्वामी एवं सन्तान को छोड़ कर दूसरे किसी के सम्मुख उपस्थित नहीं हो सकती थी।

× × × ×

दिन दिन जगन्नाथ की दरिद्रता बढ़ने लगी। एक बार तीन दिन के बीच एक मुट्ठी अन्न तक न मिला। अब उनके तीनों बच्चे एवं स्त्री पेड़ों के पत्ते एवं जड़ें रांध कर खाने लगी। जगन्नाथ से अपनी स्त्रो एवं पुत्रों का कष्ट देखा न गया। वे एक बार क्षिप्त होकर आत्म-हत्या करने को उद्यत हुए। कमला देवी उन्हें नाना प्रकार की बातें कह कर सान्त्वना देने लगी। किन्तु वे अपनी कुधारणा से विरत नहीं हुए। रात में चुपके से घर के बाहर आकर उन्होंने एक आम के वृक्ष की डाली में रस्सी लटका कर प्राण त्याग दिये।

स्वामी के वियोग से कमलादेवी एकबारगी हताश हो गई। इस समय उसके दुःख की सीमा न रही।

जगन्नाथ की मृत्यु के दो दिन बाद उनका बड़ा पुत्र क्षेत्र-नाथ माता के पास आकर बोला—"माँ, पिता कहा करते थे कि दिल्लो के बादशाह के पास जाने पर हम लोगों की ब्रह्मो-

त्तर ज़मीन फिर मिल सकती है। इसलिये मैं इस समय दिल्ली के बादशाह के पास जा रहा हूँ। तुम इस समय घर में रह कर इन छोटे छोटे भाइयों का प्रतिपालन करो।"

पुत्र की बात सुनकर कमला आँखों में आँसू भर कर बोली, "बेटा; तुम बारह वर्ष के बालक हो! तुम किस तरह से अकेले दिल्ली जाओगे? इस शरीर में प्राण रहते किस तरह से मैं तुम्हें बिदा कर सकती हूँ? परमेश्वर ने जो भाग्य में लिखा है, वह तो होगा ही। किन्तु इस समय मैं तुमको अपने पास से अलग नहीं करूँगी।"

किन्तु बालक किसी प्रकार माता की बात से सहमत नहीं हुआ। वह रात्रि में घर से भाग कर चला गया।

कमलादेवी पर दुःख के ऊपर दुःख, विपत्ति के ऊपर विपत्ति और शोक के ऊपर शोक पड़ा। एक तो दरिद्रता के कारण वे असाधारण दुःख पा रही थीं, यहाँ तक कि बच्चों को खाने के लिये दो दाने तक दे नहीं सकती थीं; दूसरे ऐसे दुःख के उपर पुनः स्वामी-वियोग, पुत्र का देश-त्याग, क्या मनुष्य इतनी यन्त्रणा, इतना कष्ट सहन कर सकता है? वह भी आत्महत्या करके सभी यन्त्रणाओं, सभी कष्टों से छुटकारा पा सकती थीं, किन्तु पुत्र-स्नेह ने उन्हें इस मार्ग को अवलम्बन करने नहीं दिया।

आ! मातृ-स्नेह क्या ही अमूल्य रत्न, क्या ही स्वर्गीय पदार्थ है। माता केवल दो बच्चों के लिये धैर्य अवलम्बन करके संसार की इन यन्त्रणाओं को भोगने लगी। धन्य है नारी जाति के धैर्य को! धन्य है इसकी सहिष्णुता को!

× × ×

कमादेवी के बड़े लड़के के गृह त्यागने के चार हो दिन

के बाद भोजन न मिलने से उनके दोनों बच्चों की मृत्यु हो गई। उस समय शोक एवं दुःख से वे एकदम पागल हो गईं। दोनों बच्चों को गोदी में लेकर एवं एक तेज़ छुरी साथ में लेकर वे गङ्गा गोविन्दसिंह के प्राण लेने को उसके घर की ओर चलीं।

मुर्शिदाबाद शहर के एक छोटे से घर में गङ्गा गोविन्दसिंह उस समय निवास कर रहे थे। कमला देवी उनके उसी घर में पहुँच कर उन्हें देखते ही उन पर झपटी। किन्तु छुरी चलाने के पहले ही दूसरे लोगों ने उसे पकड़ लिया, एवं पगली समझ कर उसे मारने लगे। मारने के समय कमला देवी पागल की तरह बकती हुई जिस समय अपने पति की ब्रह्मोत्तर ज़मीन एवं अपनी दुरवस्था की बातें कहने लगीं, उस समय गङ्गा गोविदसिंह ने स्पष्ट समझ लिया कि यह रमणी जगन्नाथ भट्टाचार्य्य की स्त्री है। तब गङ्गा गोविंदसिंह के हृदय में मानो बिच्छू ने काट खाया। ये सब बातें उन्हें स्वप्न की सी प्रतीत होने लगीं। वे स्तब्ध होकर खड़े रहे।

गङ्गा गोविन्दसिंह के आत्मसुधार के लिये यही पहला मौक़ा था। यदि इसी घड़ी से वे दूसरों को कभी न सताने एवं दुःख न देने की प्रतिज्ञा कर लेते, अन्तस्थित अदम्य प्रभुत्व की लिप्सा का परित्याग कर देते, तो इस जीवन में सुख की नींद सोते। कमला देवी की छाया प्रत्येक रात्रि में उन की निद्रा भंग नहीं करती। किन्तु संसार के मोहान्धकार में पड़कर मनुष्य ईश्वर-प्रदत्त ऐसे सुयोग की अवहेलना करता है एवं प्रभुत्व ही से केवल सुख पाने की आशा करता है।

कमला देवी गङ्गा गोविन्दसिंह के घर से निकाली जाकर क्षिप्तावस्था में मुर्शिदाबाद के आस पास ग्राम रास्ते पर पगली की भाँति घूमने लगी। इनके एक परिचित ने दोनों

मृत बच्चों को गोदी से ज़बर्दस्ती छीन कर उनकी दाह क्रिया की।

कुछ काल के उपरान्त देवीसिंह ने मुर्शिदाबाद के पास किसी रास्ते पर कमला देवी को घूमते हुए देख कर, अपने आदमियों से उसके पकड़ने के लिये कहा। कमला देवी अत्यन्त रूपवती थी। अपने केशों को बिखेर कर जब वह पगली की तरह घूमती थी, उस समय भी इसकी रूप-राशि को देख कर बहुत से लोग मोहित हो जाते थे।

दुरात्मा देवीसिंह मन ही मन विचारने लगा, यह स्त्री रूपवती है। इसका पागलपन दूर होते ही इसे किसी साहब के पास भेजकर उसका कृपापात्र बन जाऊँगा। विशेष कर साहब लोग इस देश की भाषा नहीं जानते। पगली की कोई बात एवं भाव भंगी वे नहीं समझ सकते थे। इसे क्षिप्ता-वस्था में भी उनके पास भेजने पर कोई हानि की संभावना नहीं थी। मन ही मन यह सोच विचार कर नर-पिशाच देवी-सिंह ने परम साध्वी कमलादेवी को अपनी ज़नानी-बाडी में क़ैद कर लिया। इसके बाद कमलादेवी लक्ष्मणसिंह की सहायता से जिस प्रकार देवीसिंह की ज़नानी बाड़ी से मुक्त हुई, वह सब पहले लिखा जा चुका है। कमला देवी कभी कभी देवीसिंह की ज़नानी-बाड़ी में रहते हुए निराहार रह कर प्राण त्यागने को सोचती। एक एक बार दो २ तीन २ दिन तक खाती नहीं थी। किन्तु पुनः बड़े पुत्र के स्नेह के कारण उस संकल्प को परित्याग कर देती। ज्येष्ठ पुत्र से कभी न कभी मुलाक़ात ज़रूर होगी, इसी आशा से वे जीवन धारण किये रहीं।

अठारहवाँ अध्याय

अनुसन्धान

पाठकों को स्मरण होगा कि कमला देवी लक्ष्मणसिंह की सहायता से देवीसिंह की ज़नानी-बाड़ी से मुक्त होकर जब रामसिंह के मकान पर पहुँची, तब लक्ष्मणसिंह भी अपनी नौकरी छोड़कर दिनाजपुर चला आया; एवं घर की मालकिनी के समान कमलादेवी की, अपनी स्त्री के साथ सेवा-शुश्रूषा करने लगा। किन्तु कमलादेवी स्वामी और पुत्र के शोक से सर्वदा दुःखी रहतीं। लक्ष्मण सैकड़ों चेष्टायें करने पर भी उनको संतुष्ट नहीं कर सका। उसने धन, सम्पत्ति, हृदय, मन, सर्वस्व कमलादेवी के चरणों में अर्पित कर दिया। उसका यही एक मात्र ध्यान, एक मात्र चिन्ता रहती थी कि कमलादेवी को किसी तरह से सन्तुष्ट करूँ। वह विश्वासघात के दण्ड स्वरूप इच्छापूर्वक प्राण त्यागने तक को तैयार हो गया था। किन्तु इस डर से उसने अपना यह संकल्प त्याग दिया कि ऐसा करने से कमलादेवी के हृदय को और भी कष्ट होगा, और भी पीड़ा होगी। वह एक मात्र कमलादेवी के लिये ही जीवन धारण किये हुए था। निःसन्देह इस प्रकार की अवस्था में कमलादेवी को देखकर उसको अत्यन्त कष्ट एवं दुःख हुआ करता था।

पाठकों की जानकारी के लिये इस स्थान पर लक्ष्मणसिंह का परिचय दे दिया जाता है। रामसिंह एवं लक्ष्मणसिंह ये दोनों भाई सूबेदार फ़तहसिंह के पुत्र थे। फ़तहसिंह के पिता दिनाजपुर के राजा के अधीन नौकरी करते थे। स्वयं फ़तह-सिंह ने ईस्ट-इण्डिया कम्पनी की सेना में सूबेदार के पद को

पा, रोहिला युद्ध के समय जनरल चैम्पियन के अधीन, अवध वज़ीर की ओर या रुहेलों के साथ युद्ध किया था। रोहिलाधिपति वीर-कुल-तिलक हाफ़िज़ रहमत खाँ के स्वदेश रक्षार्थ रण-क्षेत्र में प्राण त्यागने पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सिपाही रोहिलों के घर की मूल्यवान् वस्तुओं को लूटने लगे एवं रोहिलों की रमणियों पर घोर अत्याचार एवं निष्ठुरता का व्यवहार करने लगे।

फ़तहसिंह ने अँगरेज़ सैनिकों के निष्ठुरतापूर्ण व्यवहारों तथा पशुवत् आचरण को देख कर, क्रुद्ध हो, जनरल चैम्पियन से कहा—"जनरल साहब! आप की फौज़ के सब आदमी सिपाही हैं या चोर? इन लोगों ने औरतों को बेइज़्ज़त किया। एवं लोगों के घरों की चीज़ों को चुरा लिया है। क्या ये लुटेरे और बदमाशों से कम हैं?"

जेनरल चैम्पियन ने कहा कि मैंने अंगरेज़ सैनिकों के इन दुर्व्यवहारों को रोकने के लिये गवर्नर हेस्टिंग्स के पास पत्र लिखा था। किन्तु उन्होंने सैनिकों के दुर्व्यवहारों को रोकने से मना किया है। इसलिए इन जालिमाना हरकतों को रोकना हमारी ताक़त से बाहर है।

फ़तहसिंह जेनरल चैम्पियन की इस बात को सुनकर क्रोध पूर्वक बोल उठे, "जेनरल साहब, मैं चोरों की नौकरी नहीं करूँगा; मेरा इस्तिफ़ा लीजिये।"

यह कह कर उन्होंने नौकरी से इस्तिफ़ा दे दिया और काशी आकर रहने लगे। उनके पुत्र रामसिंह एवं लक्ष्मणसिंह भी पहले ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीन सिपाही थे। किन्तु १७६८ ई० के पहले ये लोग सैनिक विभाग की नौकरी छोड़ कर राजस्व-विभाग में जमादार के कार्य पर नियुक्त हुए। रामसिंह

अब तक भी (अर्थात् १९८३ ई० तक) कलक्टर के जमादार के पद पर बने हुए थे।

लक्ष्मणसिंह कमला देवी के सब दुःख का कारण सुन कर एवं जानकर उनके बड़े पुत्र क्षेत्रनाथ के अनुसंधान के लिये रवाना हुए। प्रेमानन्द भी इनके साथ चले। ये दोनों आदमी अनेक प्रान्तों में घूमने लगे। पटना, गया, काशी, वृन्दावन, अयोध्या एवं इसके बाद दिल्ली तक क्षेत्रनाथ को ढूँढते हुए चले गये। अनुमानतः ग्यारह वर्षों तक वे बराबर अनुसन्धान करते रहे। किन्तु कहीं पर भी उन्हें उसका पता नहीं लगा। अन्त में लक्ष्मण प्रेमानन्द से बोले—

"भाई, तुम स्वदेश को चले जाओ। मैं अब देश को नहीं जाऊँगा। कमला देवी को मैं अपनी माता के समान समझता हूँ। जिस स्नेहमयी जननी के गर्भ से जन्म ग्रहण किया था, उनके जीवन पर्यन्त उन पर जैसी श्रद्धा एवं भक्ति रखता था वैसी ही श्रद्धा एवं भक्ति कमला देवी पर भी रखता हूँ। बाल्यावस्था ही में मेरी माता की मृत्यु हो गई थी। उसे किसी प्रकार का सुख देना मेरे भाग्य में लिखा नहीं था। इस समय यदि माता के समान कमला देवी को मैं सुखी न कर सका तो मेरा जीवन वृथा है। अतएव मैं अब उन्हें मुँह नहीं दिखाऊँगा काशी जाकर विश्वनाथ के द्वार पर धरना देकर बैठूँगा। यदि क्षेत्रनाथ के सम्बन्ध में मुझे स्वप्न नहीं हुआ, तो वहीं पर प्राण-त्याग करूँगा।"

ऐसा स्थिर करके लक्ष्मण प्रेमानन्द को साथ ले पुनः काशी को लौट आये। यहाँ फतहसिंह से इन दोनों आदमियों की मुलाक़ात हुई। फ़तहसिंह लक्ष्मण की सारी बातें सुनकर बोले, "बेटा, यहाँ पर एक परमहंस हैं। वे गणना द्वारा भूत, भविष्य

तथा वर्तमान, तीनों काल की बातों को बताते हैं। तुम्हें धरना देने की कोई ज़रूरत नहीं। मैं तुमको उसी परमहंस के पास ले चलूँगा। कमला देवी का पुत्र जीता है या नहीं है, या जीवित होने पर कहाँ है, इसे परमहंस निश्चय करके बतला देंगे।"

तब लक्ष्मण ने अपने पिता के साथ परमहंस के यहाँ जाकर उनसे सारा हाल कहा। परमहंस लक्ष्मण की सारी बात सुन कर कुछ हास्य पूर्वक बोले—"बेटा; जिस ब्राह्मण-कुमार के विषय में तुम पूछ रहे हो, उसके विषय में गणना करके बताने की आवश्यकता नहीं। वह बालक बहुत समय तक मेरे आश्रम में था। उसकी सारी बातें मुझे ज्ञात हैं। वह इस समय पञ्जाब देश में है।"

परमहंस की बात पर लक्ष्मण को बहुत विश्वास नहीं हुआ। वह क्षेत्रनाथ के विषय में बहुत सी बातें पूछने लगा।

तब परमहंस मुस्कराते हुए बोले, "बच्चा, इस समय देश के शासक म्लेच्छ हैं। लोगों की बातों पर लोग विश्वास नहीं करते। राजा के अर्थ-लोलुप होने ही से लोगों के मन की ऐसी अवस्था हो रही है। उस बालक के विषय में मैं जो जो बातें जानता हूँ, वे सभी कहता हूँ। सब बातें कह देने पर तुम्हें अविश्वास करने का कारण नहीं रहेगा।"

"मैं गत बीस वर्षों से इस काशीधाम में निवास कर रहा हूँ। जहाँ तक मुझे स्मरण है, आज दस बारह वर्ष हुए (अर्थात् जिस वर्ष में बंगाल में विकराल दुर्भिक्ष पड़ा था, उसके पहले साल) बारह तेरह वर्ष की अवस्था का एक बालक मणिकर्णिका घाट पर भूख प्यास से मृतप्राय होकर पड़ा हुआ था। मैं प्रातःकाल स्नान करने आया कि इतने में यह बालक दिखाई पड़ा। अब तक स्वांस चल रहा था। बालक सब

सुलक्षणों से युक्त था। बालक को देखने से मालूम होता था, मानों स्वयं भगवान वैकुण्ठपति ने किसी साध्वी की मनोवाञ्छा पूर्ण करने के निमित्त स्वयं मर्त्यलोक में आकर उसके पुत्र रूप में जन्म लिया है। बच्चा, मैं तुमसे अधिक क्या कहूँ? वैसा सुन्दर बालक मैंने कभी नहीं देखा था! बालक को मृतप्राय दशा में देखकर उसे अपनी गोदी में लेकर अपने आश्रम में लाया। मेरे शिष्यों ने औषधि और पथ्य देखकर पाँच सात दिनों में उसे कुछ आराम कर दिया।"

बालक होश में आकर केवल यही बात कहने लगा—"मुझे छोड़ दो, मैं दिल्ली के बादशाह के पास जाऊँगा—मैं अपनी ब्रह्मोत्तर ज़मीन पर कब्ज़ा बहाल कराने के लिये बादशाह के पास जाता हूँ। मेरी माँ एवं दो छोटे २ भाई बिना आहार मर रहे हैं।"

"बालक की बात को सुनकर मैं उस समय उसका कुछ अर्थ न समझ सका। किन्तु बहुत तरह से समझा बुझा कर उसे शान्त करने लगा। प्रायः पन्द्रह दिन में वह बिल्कुल निरोग हो गया। उस समय उसने मुझसे कहा, 'कम्पनी के लोगों ने बहुत से ब्राह्मणों की ब्रह्मोत्तर भूमि पर कब्ज़ा कर लिया है। इससे कई सौ ब्राह्मण सपरिवार अन्नाभाव से मर रहे हैं। मेरे पिता भी ब्रह्मोत्तर ज़मीन के ज़ब्त होने पर निरवलम्ब हो गये। जब स्त्री और पुत्र का दुःख सहन नहीं हुआ, तब इन्होंने शरीर त्याग कर दिया। अब मेरी माता और दो छोटे २ भाई अन्नाभाव से मृतप्राय हो कर घर में पड़े हुए हैं। मैं इस समय अपनी ब्रह्मोत्तर ज़मीन पर कब्ज़ा बहाल कराने के लिये बादशाह के पास जा रहा हूँ।"

"बालक के मुख से इस बात को सुनकर मेरा हृदय

बड़ा ही व्यथित हुआ। किन्तु उसके साहस एवं सहृदयता को देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने मुस्करा कर कहा, "बच्चा, तुम नितान्त बालक हो। तुम तो दिल्ली के बादशाह को देखने तक न पाओगे। विशेष कर इस समय तो दिल्ली के बादशाह को कोई अख़्तियार ही नहीं है। सम्राट् ने बङ्गाल को कम्पनी के हवाले कर दिया है। और मान लो कि उनको अख़्तियार हो भी तो वे तुम्हारी नालिश को कभी सुनेंगे? तुमने देश छोड़कर बड़ी ग़लती का काम किया है। किन्तु तुम्हारे दुःख की बात को सुनकर मैं बहुत दुःखित हुआ हूँ। यहाँ पर बहुत से धनी लोग मेरे परिचित हैं। मैं उन लोगों से कुछ धन इकट्ठा कर तुम्हें दूँगा। तुम उसी धन को लेकर अपने देश को लौट जाओ। किन्तु सावधानी के साथ जाना। तुम्हारे जैसे लड़के को साथ में रुपये लेकर जाना बड़ा ख़तरनाक है।"

बालक मेरी बात को सुन कर बहुत तर्क वितर्क करने के बाद बोला,—"क्या दिल्ली के बादशाह मेरे सात पीढ़ी की ज़मीन नहीं छोड़ देंगे?"

"उस बालक की बुद्धि बड़ी विलक्षण थी। जब मैंने सब बातें समझा कर कह दी तो वह मेरे उपदेशानुसार चलने को तैयार हुआ। मैंने इस जगह के दस प्रतिष्ठित लोगों से दस सोने की मुहरें एवं पचास रुपये इकट्ठा करके उसे दिये। मेरे शिष्यों ने उन मुहरों और रुपयों को उसके कमर में बाँध दिया और वह स्वदेश को चला गया।"

किन्तु कई महीनों के बाद फिर वह बंगाल से वापिस आकर यहाँ पहुँचा; और मेरी दी हुई मुहरों और रुपयों को मेरे हाथ में देकर बोला—"महाराज, मुझे रुपये पैसे से अब

कोई प्रयोजन नहीं, मैं अब अग्नि-कुण्ड में कूद कर आत्म-हत्या कर लूँगा।"

"उसको फिर से इतनी जल्दी आया देख कर एवं उसकी बात सुनकर मैं आश्चर्य में भर गया। उसकी शारीरिक अवस्था भी बड़ी शोचनीय प्रतीत होती थी। उसके शरीर में कोई रोग तो नहीं मालूम पड़ता था किन्तु उसका चेहरा पीला पड़ गया था और शरीर में केवल हड्डियाँ ही हड्डियाँ दिखाई पड़ती थीं।"

"मैं बार बार उसके वर्तमान विपत्ति का कारण पूछने लगा। किन्तु वह कितना ही कहने पर भी अपने मन के भाव को प्रकट नहीं करता था। मैंने उसके दोनों छोटे भाइयों का हाल पूछा। वह ठंढी साँस लेते हुए बोला, 'उन दोनों की मृत्यु हो गई।' तब उसकी माता की दशा पूछी। किन्तु उसने कुछ भी जवाब नहीं दिया। तब मुझे सन्देह हुआ कि इसके हृदय में अपनी माता के प्रति कोई बुरा संस्कार हो गया, इसीसे इसकी ऐसी अवस्था हो रही है।"

"इस बालक पर मुझे बड़ा स्नेह पैदा हो गया था। इसी से इन सब बातों को सुनने के लिये मुझे बड़ा कौतुहल हुआ। मैं उससे बारम्बार कहने लगा—'तुम अपने दुःख की सब बातें मेरे निकट कहो, मैं यथा साध्य तुम्हारे दुःख को दूर करने का उपाय करूँगा।"

बालक बोला—"मेरे दुःख को दूर करने वाला इस संसार में कोई नहीं है। केवल मृत्यु ही मेरे दुःख को दूर कर सकती है।"

मैंने पुनः उससे कहा—"तुम्हें डरने की कोई बात नहीं। मैं तुम्हारी किसी गुप्त बात को कहीं पर प्रकट नहीं करूँगा। तुम अपने वर्तमान दुःख का हाल मुझसे कहो।"

"अन्त में बालक रोते हुए बोला—"महाराज, माता के कलंक को क्या कोई मुख पर ला सकता है ?" ऐसा कहते ही शोकावेग से उसका गला बिल्कुल भर आया । वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ।"

कुछ देर के बाद होश आने पर वह फिर रोने लगा। मैंने तब उससे उस दिन और कुछ नहीं पूछा। किन्तु दूसरे दिन प्रातःकाल चुपके से उसे बुला कर पूछा—"बच्चा, तुम धैर्य धारण करके सब बातें मुझ से कहो। यदि इस सम्बन्ध में तुम्हें कोई भ्रम हो गया होगा, तो मैं उसे दूर करूँगा।" बालक रोते हुए बोला—'मैं अपने देश को लौट कर अपने घर गया था। किन्तु मेरा घर बिल्कुल सूना पड़ा हुआ था। एक परिचित व्यक्ति के मुँह से सुना कि मेरे भागने के चार ही दिन के बाद मेरे दोनों भाइयों की मृत्यु हो गई। मेरी माता ने देवीसिंह की ज़नानी-बाड़ी में दाख़िल होकर वेश्या-वृत्ति को ग्रहण कर लिया है।'

"वेश्या-वृत्ति को ग्रहण कर लिया है"—इस बात को कहते समय बालक का कण्ठ तीन बार रुका। वह ज़ोर ज़ोर से रोने लगा। उसकी इन सब बातों को सुन कर मेरे मन में बड़ी व्यथा हुई। बाद में बहुत सोच विचार करके मैंने उससे कहा—"बच्चा, अपनी माता के सम्बन्ध में तुझे व्यर्थ सन्देह पैदा हो गया है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारे जैसी सुसंतान को जिसने अपने गर्भ में धारण किया था, वह कभी ऐसे कुकार्य में प्रवृत्त नहीं हो सकती।"

किन्तु बालक ने मेरी बात पर विश्वास नहीं किया। उसने आत्म-हत्या करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। उसको आत्म-हत्या करने का संकल्प छोड़ देने के लिये मैंने कहा,

"बच्चा, मैं फल देख कर वृक्ष की प्रकृति का निर्णय कर सकता हूँ। मनुष्य दो प्रकार से साधु जीवन को प्राप्त करता है। कोई कोई माता-पिता के सदाचरण को पा करके सच्चरित्र बनते हैं, और कोई कोई सद्शिक्षा के द्वारा सच्चरित्र होते हैं। केवल सद्शिक्षा के द्वारा जो सच्चरित्र होता है, उसे अपनी प्रकृति के साथ घोर संग्राम करना पड़ता है। उसकी इच्छा, वासना उसे सदा असत् मार्ग की ओर ले जाती है। किन्तु ज्ञान के द्वारा उस अदम्य वासना को वह परास्त करता है। दूसरी ओर जो माता-पिता द्वारा सच्चरित्रता को प्राप्त करते हैं, वे बाल्यावस्था ही से अपनी प्रकृति के अनुसार सन्मार्ग पर चलते हैं। तुम तेरह वर्ष के बालक हो। तुम में जो साधु-चरित्र मैं देखता हूँ वह कुछ शास्त्र-शिक्षा का फल नहीं है। तुमने अबतक कुछ ऐसी शिक्षा नहीं प्राप्त की है जिससे तुम कुवासना, और कुमार्ग पर चलने वाली इच्छा को परास्त कर सकते। इसलिये तुमने अपने हृदय की इस पवित्रता एवं साधुता को अपनी माता की प्रकृति से प्राप्त किया है, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि पाप, मिथ्या प्रवञ्चना के प्रति तुम्हारी माता के हृदय में इतनी घृणा न होती तो तुम इतनी थोड़ी अवस्था में इस प्रकार का पवित्र जीवन नहीं पाते। तुम्हारी माता अवश्य ही साध्वी है। वह अब तक भी कुपथ-गामिनी नहीं हुई है। तुम नितान्त भ्रम-जाल में पड़ गये हो!"

मेरी इस बात को सुनकर बालक को कुछ आश्वासन हुआ। किन्तु उसने मुझ से फिर पूछा—"महाराज, यदि मेरी माता सचमुच कुपथ-गामिनी नहीं हुई हैं, तब मेरे पड़ोसी ने ऐसी झूठी बात क्यों कही ? उससे तो मेरी माता की कोई दुश्मनी नहीं थी।"

मैंने कहा—"बच्चा ! इस संसार की भाव-गति कुछ जानी नहीं जाती—जिस व्यक्ति का मन जिस तरह का होता है, वह दूसरे के चरित्र को उसी भाव से देखता है। देवीसिंह के आदमी तुम्हारी माता को पकड़ कर ले गये हैं, इस बात को सुन कर उसने यह धारणा कर ली है कि तुम्हारी माता ने धर्म को छोड़ दिया है। उसके इस प्रकार के सिद्धान्त निश्चित करने का और कौन सा कारण हो सकता है ? उसने और कभी तो तुम्हारी माता को धर्म छोड़ते नहीं देखा। वह इस प्रकार की अवस्था में पड़ने पर जो करता, वही तुम्हारी माता ने भी किया होगा, ऐसा ख़याल करके उसने ऐसी निराधार बात कही है।"

"मेरी इस अन्तिम बात को सुन कर बालक का सन्देह बहुत कुछ कम हो गया। कई दिन के बाद उसने आत्म-हत्या करने का संकल्प त्याग कर दिया, एवं कहाँ जाऊँ, किस प्रकार से जीवन-निर्वाह करूँ, इसके सम्बन्ध में मुझ से सलाह पूछी। मैंने उससे अपने देश लौट जाने को कहा। उसने कहा—"स्वदेश जाने पर लोगों के ताने सुन कर पुनः आत्म-हत्या करने की इच्छा होगी, मैं कभी स्वदेश को नहीं जाऊँगा।" मैंने तब समझा कि इसका देश को लौट जाना ठीक नहीं। इसलिये यहीं रह कर मैंने उसे शास्त्रादि अध्ययन करने के लिये कहा। थोड़े ही दिनों में उसने अनेक शास्त्रों में पारदर्शिता प्राप्त करली, प्रायः पांच सात वर्ष हुए, तब वह पंजाब देश को चला गया। सुना है कि वहाँ पर उसने एक प्रधान सेनाध्यक्ष की पदवी को प्राप्त किया है। इस समय पंजाब में वह दयाल बाबू के नाम से परिचित—"

परमहंस के मुँह से इस बात को सुनते ही लक्ष्मणसिंह

को अपरिमित आनन्द हुआ। प्रेमानन्द को देश भेज कर वह स्वयं अकेले पंजाब में क्षेत्रनाथ को ढूँढ़ने चला।

उन्नीसवाँ अध्याय

दयाल बाबू

लक्ष्मणसिंह काशी छोड़कर पञ्जाब की ओर चला। उस समय रास्ते आदि की सुविधा नहीं थी। पथिकों को एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश को जाने में कई जङ्गल एवं पहाड़ पार करने पड़ते थे। किन्तु कमलादेवी को सुखी करने के लिये लक्ष्मणसिंह किसी दुःख को दुःख नहीं समझता था।

वर्तमान बीसवीं शताब्दी का नया सम्प्रदाय लक्ष्मण के ऐसे आचरण को प्रशंसनीय नहीं कह सकता। बहुत से ऐसे लोग भी मिलेंगे जो लक्ष्मणसिंह को जाहिल-गँवार तक कहने में नहीं चूकेंगे। किन्तु विचारशील मनुष्य लक्ष्मण के इस निःस्वार्थ प्रेम में देवत्व-भाव को स्पष्ट देख सकेंगे।

इस बीसवीं शताब्दी के स्वार्थपरता के विद्यालय में अध्ययन न करने तथा डरपोकपन के मन्त्र से दीक्षित न होने से, यदि शिक्षा पूरी न हुई समझी जाय तो लक्ष्मणसिंह अवश्य ही अशिक्षित थे। किन्तु यदि हृदय को उन्नत एवं विशाल बनाना शिक्षा का उद्देश्य हो, तो लक्ष्मण को निपट गँवार नहीं कहा जा सकता। बीसवीं शताब्दी की सत् शिक्षा ने भारत के नवयुवकों को शुष्क बना करके, उनके हृदय की भावुकता को नष्ट कर दिया है। उसके स्थान में अभिमान एवं आत्म-सुख-चिन्ता ने उनकी अन्तरात्माओं पर अधिकार कर लिया है। ऐसी शिक्षा के

अभाव ही से लक्ष्मण का आचरण एवं व्यवहार नव्य सम्प्रदाय के आचरण एवं व्यवहार से स्वतन्त्र था।

कोई कोई ऐसा भी पूछ सकते हैं कि लक्ष्मण ने कमला देवी के लिये इतना कष्ट, इतनी यन्त्रणायें सहीं, इससे उसे क्या लाभ हुआ? इस प्रश्न का उत्तर हम यही देते हैं कि महात्मा ईसामसीह के लिये स्टिफेन एवं पाल आदि शिष्य प्राण त्यागने से कुण्ठित क्यों न हुए? हनूमान ने प्राणों की बाजी लगाकर भी श्रीरामचन्द्र के कामों का उद्धार क्यों किया? चैतन्य देव के निमित्तरूप एवं सनातन ने संसार के पद-प्रभुत्व का क्यों परित्याग किया? ईसा, रामचन्द्र एवं चैतन्य के भीतर उनके भक्त जिस सौन्दर्य्य को देख कर मोहित हो गये थे, लक्ष्मण ने भी कमलादेवी में उसी भाव को देख कर उसके चरणों में अपने जीवन को अर्पित कर दिया था। हमने पहले ही लिख दिया है कि बीसवीं शताब्दी की शिक्षा द्वारा लक्ष्मण की भावुकता का नाश नहीं हुआ था, इसीलिए वह कमला-देवी के अन्तस्थित पवित्र भाव को देख कर सहज ही मोहित हो गया था।

लक्ष्मण रास्ते में अनेक कष्टों एवं यन्त्रणाओं को सहता हुआ प्रायः दो मास के बाद पञ्जाब देश में आ पहुँचा।

कमला देवी के ज्येष्ठ पुत्र क्षेत्रनाथ प्रायः आठ वर्ष से पंजाब देश में आकर निवास कर रहे थे। उन्होंने बारह तेरह वर्ष की अवस्था में बंगदेश का परित्याग किया था। इस समय उनकी अवस्था तेईस चौबिस वर्ष की हो गई थी। पंजाब के बहुत कम लोग इस बातको जानते हैं कि उनका नाम क्षेत्रनाथ भट्टाचार्य है। यहाँ पर वे 'दयाल बाबू' के नाम ही से सर्वत्र परिचित हैं। वे पंजाब में एक प्रधान सेनाध्यक्ष का

पद पाकर खूब धन बटोर रहे थे। किन्तु अपने सुख-आमोद में विशेष धन नहीं खर्च करते थे। इनका पैदा किया हुआ धन दीन-दुखियों के उपकार में ख़र्च हो जाता था। ज्योंही इन्हें ख़बर लगती कि अमुक व्यक्ति अन्नाभाव से कष्ट पा रहा है, त्यों ही स्वयं उसके घर जाकर उसे रुपये पैसे देते, उसका हाल-चाल पूछते, एवं शक्ति के अनुसार उसके दुःख को दूर करने के लिये उपाय भी करते थे। वे अपने उपार्जित धन को सोलह भागों में विभक्त करते, एवं उसके पंद्रह भाग दीन-दुखियों के कष्ट को दूर करने के निमित्त दान कर देते थे। बाकी एक अंश का आधा अपने खर्च में लाते एवं आधा माता के लिये रख छोड़ते। परमहंस की बात को स्मरण करके वे मन ही मन सोचते कि यदि माता जीवित होगी तो कभी न कभी मुलाक़ात हो जायगी। यदि मिलना हुआ तो यह सञ्चित धन उसके भरण-पोषण के लिये दूँगा। किन्तु प्रत्येक महीने माता के लिये रुपये रखते समय आँख के आँसुओं की धारा से उनकी छाती भींग जाती। वे एकान्त में बैठकर कभी कभी सोचते, 'हाय! मेरे दोनों छोटे भाई अन्नाभाव से मर गये, अतएव जितने दिन तक मेरे हाथ में रुपये रहेंगे, तब तक यथाशक्ति किसी के भी अन्न-कष्ट को निवारण करने में कभी त्रुटि नहीं करूँगा।'

जिस समय लक्ष्मणसिंह क्षेत्रनाथ के घर पर पहुँचे, उस समय वे बहुत से कंगाल लोगों को घर के आँगन में बिठाकर वस्त्र बांट रहे थे। इन दीन-दुखियों में एक स्त्री एक फटे-पुराने वस्त्र के टुकड़े को कमर से जांघ तक ढके हुए उनके सामने आकर खड़ी हो गई। इस स्त्री का कमर से मस्तक तक अंग योंही खुला हुआ था। इसको देखते ही क्षेत्रनाथ की आँखों से आँसू की बूँदें टपकने लगीं। वे तत्क्षण उस स्त्री के हाथ में

चार पाँच प्रकार के वस्त्र एवं कुछ रुपये रख अपने घर में जाकर ज़ोर ज़ोर से रोने लगे। बारह तेरह वर्ष पहले क्षेत्रनाथ ने जब दिल्ली के बादशाह के पास जाने के लिये घर को छोड़ा था, उस समय उसकी माता भी इसी प्रकार वस्त्र के एक फटे-पुराने टुकड़े से लज्जा निवारण करती थीं। आज इस भिखारिणी दरिद्रा को उसी तरह के फटे-पुराने वस्त्र पहने देख कर अपनी माता के तत्कालीन दुःख-कष्ट को याद क्षेत्रनाथ को हो आई। अपनी रुलाई को वे रोक नहीं सके। वे अपने नौकर को अन्यान्य भिक्षुकों को वस्त्र वितरण करने का आदेश देकर आप तत्क्षण घर में चले गये।

वस्त्र बांटने के बाद वह नौकर जल्दी जल्दी घर में आया और बोला, "हजूर, आप के घर से आपकी माता का पत्र लेकर एक आदमी आया है। वह दरवाज़े पर खड़ा है।"

क्षेत्रनाथ शोक से विह्वल होकर रो रहे थे। नौकर की एक बात भी वे नहीं सुन सके। नौकर आश्चर्य में भरकर मौन हो गया।

कुछ समय के बाद वह फिर बोला, "हज़ूर आप के घर से आपको माता का पत्र लेकर एक आदमी आया है।"

नौकर की बात सुनकर वे मन ही मन सोचने लगे कि मैं कहीं स्वप्न तो नहीं देख कर रहा हूँ? मेरी पूज्या माता के पास से पत्र लेकर आदमी आया है!!! माता के कष्ट-दुःख की स्मृति ने मुझे पागल तो नहीं बना दिया है? यदि मान लिया जाय कि माँ जीवित हैं, तो भी वह किस प्रकार से यहां पर आदमी भेज सकती हैं? मेरा कौन ऐसा बन्धु-बांधव है जो मुझे ढूँढ़ने के लिये पंजाब आया होगा? और उन्हें इस बात का पता ही क्यों कर लग सकता है कि मैं इस समय

यहाँ पर हूँ? ज्ञात होता है कि इस मातृ-शोक ने ही मुझे भ्रान्त बना दिया है। मुझे जान पड़ता है कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ।

नौकर फिर बोला, "हजूर, आपके देश से आदमी आया है।"

तब वे अत्यन्त कष्ट के साथ अपने को रोक कर आखों से आँसू पोंछते हुए बाहर आये और नौकर से बोले, "कौन आया है, उसे यहाँ आने के लिये कहो।"

तब नौकर लक्ष्मणसिंह को बुला लाया। लक्ष्मणसिंह ने नौकर के साथ घर में प्रवेश करते समय देखा कि असंख्य दीन-दुखी "दयाल बाबू की जय हो" ऐसा कह कर आशीर्वाद देते हुए नये वस्त्रों को हाथ में लेकर बाहर हो रहे थे। क्षेत्र-नाथ के पास आकर बैठते हुए लक्ष्मणसिंह ने कहा, "महाशय, मैं वंगदेश से आ रहा हूँ। क्या आप ही का नाम क्षेत्रनाथ भट्टाचार्य है?"

क्षेत्रनाथ बोले-"हाँ, मेरा ही नाम क्षेत्रनाथ भट्टाचार्य है।"

लक्ष्मण—"मुर्शिदाबाद के जगन्नाथ भट्टाचार्य आप ही के पिता थे?"

क्षेत्रनाथ—"हाँ।"

लक्ष्मण—"ब्रह्मोत्तर ज़मीन ज़ब्त हो जाने पर आप ने बारह तेरह वर्ष से अपने देश को परित्याग कर दिया है?"

क्षेत्रनाथ—"आप इन बातों को क्यों पूछ रहे हैं?"

लक्ष्मण—"मैं गत ग्यारह बारह वर्ष से आप का पता लगा रहा हूँ। कई महीने हुए काशी के एक परमहंस से आप का पता पाकर यहाँ आया हूँ। आप मुझे अपना शत्रु नहीं? सहो-दर भाई समझें। आप की माता कमलादेवी को मैं गर्भ-धारिणी माता के सदृश मानता हूँ।"

जननी का नाम सुनते ही क्षेत्रनाथ की दोनों आँखों से आँसू गिरने लगे। कुछ समय तो वे निर्वाक् रहे। बाद में आत्मसंयम पूर्वक पूछा—"मेरी माता इस समय कहाँ पर किस अवस्था में हैं, क्या आप को यह ज्ञात है?"

इस प्रश्न के उत्तर में लक्ष्मण एक एक कर के सब बातों को बतलाने लगे। जिस तरह कमलादेवी क्षिप्तावस्था में देवीसिंह के आदमियों के द्वारा पकड़ी गई थीं, जिस प्रकार से देवीसिंह की ज़नानी-बाड़ी से मुक्त होकर रामसिंह के घर में उन्होंने आश्रय लिया, एवं तब से उनको सुखी करने के लिये उनके पुत्र को ढूँढ़ने एवं परमहंस से भेंट होने इत्यादि सारी घटनाओं को क्षेत्रनाथ के निकट लक्ष्मण ने कह-सुनाया।

लक्ष्मण की बातों को सुनते समय क्षेत्रनाथ की आँखों से लगातार आँसू गिर रहे थे। किन्तु लक्ष्मणसिंह की बात ख़तम होते ही क्षेत्रनाथ अपनी छाती को हाथ से पीटते हुए बोले—"हा परमेश्वर! मेरे समान पापात्मा इस संसार में और कौन है? परम साध्वी मातृदेवी के चरित्र के सम्बंध में मेरे मन में पापपूर्ण सन्देह क्यों कर पैदा हुआ था। शास्त्र कहता है-विवेक ईश्वरीय वाणी है। तब मुझे विवेक ने क्यों प्रतारित किया? हो सकता है, मुझ में विवेक ही न हो, अथवा मेरा विवेक ही दूषित हो गया हो। अभी इन पापी प्राणों को विसर्जित कर के पाप का प्रायश्चित करूँगा।"

यह बात कह कर वे तुरन्त मूर्च्छित होकर गिर पड़े। लक्ष्मण उनके मस्तक को अपनी गोदी में रख कर हवा करने लगे। एवं नौकर को मस्तक पर जल गिराने के लिये उन्होंने कहा।

कुछ समय के बाद होश आने पर वे उच्च स्वर से रोने

लगे। बारम्बार अपने को तिरस्कार करते हुए आक्षेप के साथ कहने लगे, "हाय, मैं कैसा पापात्मा हूँ! कैसा नराधम हूँ! बारह वर्षों से मेरी माता इतना कष्ट भोग रही हैं! यह पापी मुँह माता को नहीं दिखाऊँगा।"

लक्ष्मण उसे ज्ञान की बहुत सी बातें कह कर सान्त्वना देने लगा। किन्तु किसी तरह से उनका रोना बन्द नहीं हुआ। वे रोते हुए अपने मस्तक को लक्ष्मण के पैरों पर रख कर बोलने लगे, "भाई, तुम धन्य हो। तुम देवता हो। तुम्हीं मेरी पुण्यशीला माता के सुयोग्य पुत्र हो। मेरे जैसे पापी पुत्र के मां कह कर पुकारने पर वे कलंकित होंगी। भाई, मैं यह प्राण विसर्जित करके इस पाप का प्रायश्चित करूँगा। तुम स्वदेश को लौट कर माता से कहना कि वे इस पापी अकृतज्ञ सन्तान को भूल जायँ। इस पापात्मा के लिये वे एक बूंद भी आँसू न गिरायें, मैं सचमुच नराधम हूँ। मेरा हृदय अत्यन्त कुटिल है। यदि ऐसा न होता तो पड़ोसी की बात सुनकर मन में इस प्रकार सन्देह ही क्योंकर होता? धन्य है परमहंस को। सचमुच वे भूत-भविष्यत् को बताने के योग्य हैं।"

लक्ष्मण बोले—"भाई तुम पागलों की सी बातें क्यों करते हो! तुम्हारी माता शोक से सदा आंसू बहाती रहती हैं। सैकड़ों चेष्टायें करने पर भी मैं उन्हें सुखी नहीं कर सकता हूँ। देवीसिंह की ज़नानी-बाड़ी में निराहार रहकर उन्होंने तीन चार बार प्राण त्यागने का संकल्प किया था। किन्तु तुम्हारे मुँह को देखने की आशा से ही आत्म-हत्या नहीं की थी। तुम्हारे आत्म-हत्या करने पर वे भी आत्म-हत्या कर लेंगी। इसलिये मातृ-हत्या का पाप तुम्हें निश्चय लगेगा।"

लक्ष्मण की बात सुनकर क्षेत्रनाथ बोले, "मैं बड़ा ही कृतघ्न

सन्तान हूँ। मैं किस प्रकार जननी को मुख दिखाऊँगा? मैं इतने दिनों से उन्हें छोड़े हुए हूँ!"

लक्ष्मण—"भाई, सन्तान के अकृतज्ञ होने पर माता उसे कभी नहीं छोड़ सकती। सन्तान अच्छी हो या बुरी हो, माँ का स्नेह किसी तरह से भी कम नहीं होता है। माता का स्नेह क्या वस्तु है, उसे कोई शब्दों द्वारा नहीं बता सकता; वह कवि की कल्पना को भी परास्त कर सकता है।"

लक्ष्मण के इस प्रकार समझाने पर क्रमशः क्षेत्रनाथ की आत्म-ग्लानि कम होने लगी। लक्ष्मण की सब बातों को सुनकर वे उसको देवता समझने लगे। उन्होंने स्थिर किया कि दो तीन दिन के बाद ही स्वदेश को चलेंगे।

दो तीन दिन में दयाल बाबू के पंजाब छोड़ने की बात सर्वत्र फैल गई। बहुत से लोग आकर इनसे भेंट मुलाकात करने लगे। सभी इनके लिये बहुत दुःखी हुए। दीन-दुःखी लोगों के झुण्ड के झुण्ड आकर कहने लगे—"दयाल बाबू, आप के चले जाने पर हम लोगों की कौन ख़बर लेगा?"

क्षेत्रनाथ सब को आश्वासन देते हुए बोले कि मैं शीघ्र ही अपनी माता को साथ ले यहाँ वापस आऊँगा, मैं नरक तुल्य वंग देश में कभी नहीं निवास कर सकता। सन् १७८३ ई० के जनवरी मास में क्षेत्रनाथ लक्ष्मण को साथ ले कर अपने देश को चले।

बीसवाँ अध्याय

सुप्रीम कोर्ट

विपत्ति, दारिद्र्य एवं दुःख सभी अवस्था में मनुष्य के शत्रु नहीं होते। विपत्ति एवं दुःखराशि बन्धु होकर मनुष्य के हृदय को समुन्नत बनाती है, गुरु होकर उसे सद्-शिक्षा प्रदान करती है; नेता होकर जीवन संग्राम में लड़ने के लिये मज़बूत करती हैं। दूसरी ओर सम्पद् एवं ऐश्वर्य बहुत सी जगहों में शत्रु होकर मनुष्य को अभिमानी बना देते हैं, मद में भर देते हैं, उसके हृदय और मन को कलुषित करते हैं; और अन्ततः उसे आलसी, बिलासी एवं अकर्मण्य बना देते हैं।

चिर सम्पद् एवं अतुल ऐश्वर्य की गोद में पली हुई बंगाल के सैकड़ों ज़मीन्दारों की सन्तान—धनी लोगों की सन्तान—बिल्कुल मूर्ख बन रही थी—पशु-जीवन बिता रही थी। मनुष्य की तरह इनके भी हाथ-पाँव थे, इनका भी अंग-गठन मनुष्य ही की तरह था, इसलिये बाध्य होकर हम भी इन्हें मनुष्य ही कहते हैं। किन्तु इनकी विद्या-बुद्धि, इनके कार्य-कलाप, इनके आचार-व्यवहार देख कर कौन साहस करके कह सकता है कि इनमें भी मनुष्यता है?

बंग-महिला सत्यवतीदेवी इस समय स्वामी के उद्धारार्थ कलकत्ते आई हुई हैं। इसके पहले इन्होंने अलौकिक साहस एवं वीरतापूर्वक अपने श्वशुर को जेलख़ाने से छुड़ाया था। उनका यह साहस, वीरत्व एवं अलौकिक त्याग का भाव उन्हें किसने प्रदान किया था? किस विद्यालय में इन्होंने इस प्रकार की सद्शिक्षा पाई थी? जिस समय सम्पत्ति की गोद में वे सोयी

हुई थीं, उस समय वे कौन थीं? और वर्तमान विपत्तियों ने उन्हें क्या बना दिया था? उनका हृदय तथा मन कहाँ तक समुन्नत हुआ था? इस बात की परीक्षा करने के लिए इनके मुँह को कही हुई बातों को स्मरण करना उचित है। इनके वृद्ध श्वशुर जिस दिन पकड़े गये थे, उस दिन इन्होंने स्वयं कहा था, कि विविध विपत्ति एवं संकट में पड़ कर मैंने बहुत सी शिक्षायें ग्रहण की हैं? सम्पत्ति की गोद से अलग होने के पहले समय समय पर वे अपने स्वामी को देश-सेवा के कामों से अलग रहने को कहा करती थीं। किन्तु इस समय वे कहती थीं कि मेरे पति, देवता हैं। मैं पहले उनको पहचान ही नहीं सकी थी।

यदि ऐसा है तो मनुष्य विपत्ति में पड़ने पर परमेश्वर को क्यों दोष देता है? विपदा तो मनुष्य का बन्धु, गुरु और नेता है।

विपत्तियों ने सत्यवती को अलौकिक साहस प्रदान किया था। वे इस समय स्वामी के उद्धारार्थ कलकत्ता आई हुई हैं। मालदा के अन्तर्गत पांडुया के जंगल से होकर वे बराबर पैदल आईं। और तीन ही दिन के भीतर कलकत्ता आ पहुँचीं। दिन-रात के बीच रास्ते में अधिक विश्राम भी नहीं लिया। रंगपुर में युद्धारम्भ हुआ है। ऐसे समय में प्रेमानन्द के वहाँ पर उपस्थित न रहने से कहीं उनकी सभी चेष्टायें, सभी उद्यम विफल न हो जायँ, इस ख्याल से वंग-महिला सत्यवती प्रायः एक सौ कोस के रास्ते को तीन दिन-रात्रि में ही तय करके कलकत्ता आ पहुँची थीं।

कलकत्ते की यात्रा करने के समय इन्होंने पुरुष की पोशाक पहन ली थी। कलकत्ता पहुँचने पर रामकृष्ण अधिकारी कह कर वे अपना परिचय देती थीं।

किन्तु यहाँ पहुँचते ही इन्होंने सुना कि सुप्रीमकोर्ट में दरख़्वास्त दिये बिना स्वामी के कारागार से मुक्त होने का उपाय नहीं है। इस समय लगान की वसूली के लिये तथा अन्य किसी कारण से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गवर्नर अथवा अन्यान्य कर्मचारी जिन देशी लोगों को क़ैद करते, उनकी मुक्ति के लिये सुप्रीमकोर्ट में दरख़्वास्त करने ही पर हेवियस कार्पस (Habeas Corpus) नामक परवाना जारी होता। सुप्रीमकोर्ट के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों का खूब विवाद चल रहा था। इसलिए ईस्ट इण्डिया-कम्पनी के कर्मचारी जिसको क़ैद करते, सुप्रीम कोर्ट उसे छोड़ देती।

इस स्थान पर पाठकों की जानकारी के लिये सुप्रीमकोर्ट एवं ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों के बीच जो विवाद चल रहा था, उसे भी लिख दिया जाता है।

सुप्रीमकोर्ट के संस्थापन होने के पूर्व कलकत्ते में मेयर कोर्ट नामक एक अदालत थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अंगरेज़ कर्मचारी लोगों में से मेयरकोर्ट के विचारक निर्वाचित होते थे। किन्तु ईस्ट इण्डिया-कम्पनी के कर्मचारियों में से प्रायः सभी अत्याचार एवं निष्ठुराचरण कर के देशी लोगों के धन को लूटते थे। इसलिये मेयरकोर्ट के द्वारा किसी प्रकार से न्याय होने की संभावना नहीं रहती थी। जो रात्रि में अस्त्र-शस्त्र धारण कर के डाके डालते, चोरी करते, वे ही दिन में जजों के गाउन पहन कर मेयरकोर्ट के विचारासन पर बैठ कर इन्हीं अत्याचारों का विचार करते। इसी प्रकार से मेयरकोर्ट का सद्विचार चलने लगा।

किन्तु डंडस आदि इंगलैंड के कितने ही सहृदय लोगों ने मेयरकोर्ट की इस अत्याचार-कहानी को सुना। उन्हें इससे

बड़ा दुःख हुआ। उन लोगों ने इंगलैंड की सरकार की ओर से कलकत्ते में सुप्रीमकोर्ट संस्थापित करने का प्रस्ताव किया। इससे शीघ्र ही मेयरकोर्ट उठा दी गयी और कलकत्ते में सुप्रीम कोर्ट स्थापित हुई। सर इलाइजा इम्पे चीफ़ जस्टिस के पद पर, और हाइड, लिमेइस्टर एवं चेम्बरस जस्टिस के पद पर नियुक्त होकर आये। किन्तु चाहे सुप्रीमकोर्ट हो, अथवा मेयर-कोर्ट हो, जोभी लंका में प्रवेश करते, वे ही हनूमान बन जाते। उनमें कोई भी अमृत फल का लोभ संवरण नहीं कर सकते थे। सभी एकाधिपत्य के लिये लालायित थे। सुप्रीमकोर्ट के जज सभी विषयों में देश के सभी लोगों के ऊपर क्षमता रखना चाहते थे। वारेन हेंस्टिंग्स पहले दो बार अपने विरोधियों के आक्रमण से आत्मरक्षा करने के निमित्त सुप्रीमकोर्ट के शरणागत हुए थे। उस समय उन्होंने सुप्रीमकोर्ट को सर्वोच्च क्षमता प्रदान करने से किसी प्रकार की आनाकानी नहीं की थी। किन्तु इनके विपक्षियों में एक दो मेम्बरों के मर जाने से उनका बल कम हो गया था। इस समय भला वे किस प्रकार सुप्रीम-कोर्ट की अधीनता स्वीकार करते? इसलिये सुप्रीमकोर्ट के साथ गवर्नमेण्ट का विवाद चलने लगा।

सुप्रीमकोर्ट गवर्नमेण्ट के विरुद्ध चलने लगी। लगान बसूल करने के लिये अथवा अन्य कारणों से जिन लोगों को गवर्नमेण्ट क़ैद करती, उनको सुप्रीमकोर्ट छोड़ने लगी।

ऐसे मौक़े पर सुप्रीमकोर्ट के साथ गवर्नमेण्ट का विवाद होने से बहुत से लोग वारेन हेस्टिंग्स एवं गंगा गोविन्दसिंह के अत्याचार से छुटकारा पाने लगे।

रामकृष्ण अधिकारी (सत्यवती) ने कलकत्ते में जिस किसी से पूछा, वे सभी लोग उससे कहने लगे कि सुप्रीमकोर्ट

में दरख़्वास्त करने पर ही प्रेमानन्द दो एक महीने के भीतर छूट जायँगे। किन्तु इस समय रंगपुर में युद्धारम्भ हो गया था। दो एक मास और प्रेमानन्द को क़ैद रखने से उनकी सभी चेष्टायें विफल हो जातीं। उनके युद्धक्षेत्र में उपस्थित न होने से बहुत सा बना बनाया काम बिगड़ने की संभावना थी।

इसके अतिरिक्त, सुप्रीम कोर्ट में दरख़्वास्त देने पर बहुत रुपये-पैसे ख़र्च करने की भी आवश्यकता थी। किन्तु सत्यवती थोड़ा धन भी व्यय करने में समर्थ नहीं थी।

कलकत्ते का जेल भी देवीसिंह के कारागार की तरह नहीं था कि जो जेल में प्रवेश करके वे अपने स्वामी से भेंट-मुलाक़ात कर सकती; इसलिये वह अत्यन्त चिन्ताकुल हो गई। इस समय गङ्गा गोविन्दसिंह कलकत्ते में नहीं थे। वे अपनी माता का श्राद्ध करने के निमित्त अपने पैतृक वासस्थान को गये हुए थे।

कलकत्ते से सैकड़ों ब्राह्मण और पंडित गङ्गा गोविन्दसिंह की माता के श्राद्ध के उपलक्ष में उनके वासस्थान को जा रहे थे। ये लोग आपस में बातचीत करते थे कि गङ्गा गोविन्दसिंह अपनी माता के श्राद्ध के दिन कल्प-वृक्ष होकर सबकी प्रार्थना पूर्ण करेंगे। उस दिन वे जो चाहेंगे, तत्काल ही उन्हें दे देंगे।

इन लोगों की बातें सुनकर सत्यवती ने मन ही मन स्थिर किया कि मैं ब्राह्मण-कुमार के वेश में गङ्गा गोविन्दसिंह के पास जाकर अपने स्वामी के छुटकारे के लिये प्रार्थना करूँगी। गङ्गा गोविन्दसिंह अपने व्रत का प्रति पालन करने के लिये निश्चय ही मेरे स्वामी को क़ैद से छोड़ देंगे।

इस प्रकार से स्थिर करके वह भी अन्यान्य लोगों के साथ गङ्गा गोविन्दसिंह के घर को चल दी।

इक्कीसवाँ अध्याय

दत्तयज्ञ से भी बढ़कर

"Ganga Govind—a name at the sound of which all India turns pale—the most atrocious, the boldest, the most dangerous villain that ever the rank servitude of that country has produced."

—*Edmund Burke.*

अर्थात्—गंगा गोविन्द—के नाम मात्र को सुनने से भारतवासियों का चेहरा पीला पड़ जाता है! वह बड़ा ही नृशंस, अत्यन्त दुस्साहसी और घोर कुचक्री था। शायद् ही भारत की भीषण गुलामी ने इसके जैसा दूसरा दुष्टात्मा पैदा किया हो!

—एडमण्ड बर्क।

सौ सवा सौ वर्ष पहले गंगा गोविन्द—इस नाम के सुनते ही बंगालियों का हृदय काँप जाता था। देश के सभी ज़मीन्दार इसके पैरों पर अपना माथा टेकते थे। हाथ में नज़र लेकर इसके सामने खड़े रहते थे। बंगाल के छोटे बड़े, आबालवृद्ध सभो गंगा गोविन्द् से भय खाते थे। ऐसा क्यों न करते? भारतवर्ष के गवर्नर जेनरल वारेन हेस्टिंग्स तक गंगा गोविन्द् के कृतज्ञता-पाश में आबद्ध हो, इनके क्रीतदास हो रहे थे। गंगा गोविन्द् देश के सब लोगों से धन चूस कर वारेन हेस्टिंग्स का पाकेट भरने लगे; प्राणपण से चेष्टा करके हेस्टिंग्स को घूस-रिश्वत दिलवाने लगे, हेस्टिंग्स के उपकार के लिये वे प्राण-त्याग करने से भी पीछे नहीं हटते थे, इसीलिये हेस्टिंग्स भी गंगा गोविन्द् के क्रीतदास से हो गये थे।

इस समय गंगा गोविन्दसिंह को मातृ-वियोग हुआ था। उन्होंने मन ही मन स्थिर कर लिया था कि माता का श्राद्ध विशेष समारोह से करूँगा। नवकृष्ण मुन्शी ने अपनी माता के श्राद्ध में ९ लाख रुपये खर्च किये थे। इनका पद-प्रभुत्व नवकृष्ण की अपेक्षा बहुत बढ़ा चढ़ा था। यदि नवकृष्ण की माता के श्राद्ध की अपेक्षा इनका मातृश्राद्ध अधिक समारोह के साथ न हो, तो इनका पद व प्रभुत्व वृथा है।

गंगा गोविन्द ने मातृश्राद्ध के समय वारेन हेस्टिंग्स से सहायता मांगी। हेस्टिंग्स ने फ़ौरन बंगाल के प्रत्येक ज़िलों के कलक्टर एवं उनके दीवानों के नाम पत्र लिख कर भेजे—"गंगा गोविन्दसिंह की माता के श्राद्ध को स्वयं मेरी माता का श्राद्ध समझ कर इस श्राद्ध के निर्वाहार्थ तुम लोग अपने २ ज़िलों से जितने प्रकार के उत्कृष्ट खाने योग्य पदार्थ मिल सकें, उन्हें अधिक परिमाण में भेजो। इस विषय में किसी प्रकार की शिथिलता तथा लापरवाही न करना। तुम लोगों की भेजी हुई चीज़ों का मूल्य बाद में दिया जायगा।"

हेस्टिंग्स का इस आशय का पत्र पाकर प्रत्येक ज़िले के कलक्टर के दीवान अपने अपने इलाक़े के अन्तर्गत भिन्न २ बाज़ारों में नाना प्रकार के फल, मूल एवं अन्यान्य भोज्य वस्तुओं को खरीदने के लिये बरकन्दाज़ों को भेजने लगे। सारे बंगाल में तहलका मच गया। श्रीहट्ट की पूर्वी सीमा से लेकर बिहार के पश्चिमी प्रांत तक, एवं रंगपुर दिनाजपुर के उत्तर प्रान्त से लेकर समुद्र तट के डायमण्ड बन्दर के दक्षिण प्रान्त तक—देश भर के बाज़ारों में केवल गंगा गोविन्दसिंह के मातृश्राद्ध के लिये चीज़ें खरीदी जाने लगीं।

किन्तु सभी द्रव्य उधार मूल्य पर खरीदा जाता। हेस्टिंग्स

ने सभी कलक्टरों के पास लिखा था कि श्राद्ध के बाद चीज़ों के मूल्य का हिसाब तैयार होगा। कलक्टर के दीवानों ने अपने अधीन जमादारों एवं बरकन्दाज़ों को चीज़ें खरीदने के लिये आदेश दिया। जमादार एवं बरकन्दाज़ जिस दुकान में जो चीज़ें पाते, उधार मूल्य पर उन सब चीज़ों को लाने लगे। उनका मोल भाव तक नहीं करते, वे बनियों से कहते, "सरकारी अफ़सर के हाथ जिन्स बेच रहे हो, बिल भेजते ही रुपये पा जाओगे। इनका मोल-भाव करने से प्रयोजन ही क्या है?"

इन सब वस्तुओं के ख़रीदने में भिन्न २ ज़िलों के बरकन्दाज़ों ने दुकान्दारों के साथ जैसे व्यवहार किये थे, उन्हें विस्तारपूर्वक लिखने से पुस्तक का कलेवर बहुत अधिक बढ़ जायगा। किन्तु पाठकों से हम क्षमा माँगते हैं। पुस्तक का कलेवर हम अधिक नहीं बढ़ाना चाहते। इस सम्बन्ध में संक्षेप रूप में दो एक घटनाओं को लिख देने पर पाठक सब बातों को अच्छी तरह से समझ जायँगे।

जिन फलों के थोड़े ही दिन में पक कर नष्ट हो जाने की सम्भावना थी, वे कृष्णनगर के निकटवर्ती स्थानों में ख़रीदे गये। नदिया ज़िले के अन्तर्गत शान्तिपुर के बाज़ार में एक ग्यारह वर्ष की बालिका केले बेचने आयी थी। कलक्टर के बरकन्दाज़ उस समय केले आदि विविध फलों को संग्रह कर रहे थे। उन लोगों ने बालिका के हाथ से केले ले लिये।

वह बालिका आँखों में आँसू भर कर कहने लगी-"मेरी माँ अन्धी है-कल सबेरे ही से मेरे घर में चांवल नहीं है-कुछ खाने को नहीं मिला है-इन केलों को बेंच, चावल ख़रीद कर ले जाऊँगी-मुझे केला का दाम दे दो।"

बरकन्दाज़ घुड़क कर बोला,—"चुप रह री हरामज़ादी, बाद में दाम मिलेगा—इस वक्त घर जा।"

बालिका भय और त्रास से ख़ाली हाथों घर चली गई।

हुगली के अन्तर्गत वर्त्तमान उलु बेड़िया के निकटवर्त्ती किसी स्थान में चौदह वर्ष का एक लड़का नारियल बेंच रहा था। बरकन्दाज़ नारियल लेकर चले।

लड़का रोकर कहने लगा,—"नारियल के पैसे दो। मैं पिता के लिये गाँजा ख़रीद कर ले जाऊँगा। पिता के पास आज एक दम गाँजा नहीं है। आज गाँजा लेकर न जाने से पिता मुझे खूब मारेंगे। अरे मेरे नारियल के पैसे! मेरे नारियल के पैसे दो!!"

बरकन्दाज़ साहब लड़के को धक्का देकर चलते बने। लड़का अपने पिता के भय से घर लौट कर नहीं आया। भाग कर कहाँ चला गया, इसका पता न चला।

दिनाजपुर में एक स्त्री एक टोकरी आलू लेकर बैठी हुई बेंच रही थी। एक बरकन्दाज़ आया और उसकी टोकरी को रख कर उससे बातचीत करने लगा।

वह स्त्री अपनी छाती के नीचे टोकरी को रख कर लगातार बोलने लगी,—"मैं जानती हूँ, तुम पैसे नहीं दोगे; पैसे नहीं दोगे। मैं नहीं दूँगी, नहीं दूँगी।"

बरकन्दाज़ उस स्त्री को ठेल कर उसके सब आलू लेकर चलते बने।

बाकरगंज के अन्तर्गत काउखाली के बाज़ार में सत्रह अठारह वर्ष का एक मुसलमान युवक सात आठ टोकरी चावल बेंचने आया था। चावल की टोकरियाँ उसके सामने रखी हुई थीं। उसके पिता, चचा एवं मामा नदी के घाट पर

एक बड़ी नौका के आदमियों के साथ चावल का दाम ठीक कर रहे थे। इसी समय ईस्ट इण्डिया-कम्पनी के बरकन्दाज़ वहाँ पर चावल खरीदते हुए पहुँचे और उस युवक के सामने रखे हुए चावलों को ले जाने के लिये उद्यत हुए। युवक ज़ोर ज़ोर से चिल्ला कर कहने लगा,—"ओ बाबू–ओ चाचा–ओ मामू–बरकन्दाज़ चावलों को लिये जाते हैं।"

उस युवक के पिता, चचा एवं मामा उसके रोने-चिल्लाने को सुन कर फौरन दौड़े हुए आये। बरकन्दाज़ों के हाथ से चावल छीन कर वे उनकी खूब मरम्मत करने लगे। खूब पीटे जाने के बाद बरकन्दाज़ों ने कोतवाल के पास जाकर यह इज़हार किया कि हम लोगों के ख़रीदे हुए चावलों को काउखाली के मुसलमानों ने डाका डाल कर छीन लिया। कोतवाल ने जाँच कर के काउखाली के बाज़ार से तीस आदमियों का, डकैत कह कर, ढाके को चालान किया। काउखाली में बहुत से डाकुओं का घर था। इनके चालान होने के तीन चार महीने के बाद इनमें से प्रत्येक को पाँच पाँच वर्ष का कारावास मिला।

इस प्रकार दीवान गंगा गोविन्दसिंह के मातृ-श्राद्ध की सामग्री एकत्रित की जाने लगी। श्राद्ध का दिन निकट आने पर ये सब चीजें क्रमशः उनके घर पर पहुँचने लगीं। प्रायः बीस लाख मनुष्यों के खाने योग्य चीज़ें इकट्ठी की गईं। गंगा गोविन्दसिंह का घर श्राद्ध के पन्द्रह दिन पहले ही से लोगों से परिपूर्ण हो गया। अनुमानतः तीन कोस के घेरे में लोगों के ठहरने के लिये छप्पर के मकान तैयार किये गये थे।

इधर देश के जितने राजा, ज़मीन्दार, तालुकेदार थे, सभी निमंत्रित हुए। गंगा गोविन्दसिंह के निमंत्रण को सब लोगों

ने फौज़दारी अदालत के सम्मन से बढ़ कर समझा। इस निमंत्रण की पूर्त्ति न करने से गंगा गोविन्दसिंह असन्तुष्ट हो सकते थे। ब्रह्मा, विष्णु, महेश के असन्तुष्ट होने पर लोगों को पनाह मिल सकती थी किन्तु गंगा गोविन्दसिंह के असन्तुष्ट होने पर किसी को पनाह मिलने की संभावना नहीं थी।

नदिया के राजा कृष्णचन्द्र ने निमंत्रण-पत्र पाकर अपने पुत्र राजा शिवचन्द्र को गंगा गोविन्दसिंह के घर जाने के लिये कहा। राजा शिवचन्द्र अत्यन्त जात्यभिमानी पुरुष थे। वे गंगा गोविन्दसिंह के समान कायस्थ के घर जाने को पहले राज़ी नहीं हुए।

तब राजा कृष्णचन्द्र क्रुद्ध होकर बोले, "बाबू, यदि तुम नहीं जाओगे, तो मैं ही रोगी शरीर को लेकर गंगा गोविन्दसिंह के घर जाऊँगा। गंगा गोविन्दसिंह को मैं कभी असन्तुष्ट नहीं कर सकता।"

राजा शिवचन्द्र ने देखा कि मेरे न जाने से पिता रुग्ण शरीर को लेकर गंगा गोविन्दसिंह के घर जायंगे। इसलिये उन्होंने जाना स्वीकार कर लिया। राजा कृष्णचन्द्र प्रायः रुग्णावस्था ही में समय बिताते थे। इसी से समय समय पर वे शिवचन्द्र को कलकत्ता जाकर गंगा गोविन्दसिंह का दरबार करने के लिये कहा करते थे। किन्तु शिवचन्द्र गंगा गोविन्द के पास जाना कभी क़बूल नहीं करते थे। इसी से महाराज कृष्णचन्द्र गंगा गोविन्दसिंह के पास पत्र में लिखते:—

"दरबार असाध्य है, पुत्र अबाध्य है?"

ऐसी दशा में केवल गङ्गा गोविन्दसिंह का भरोसा है।

गङ्गा गोविन्दसिंह के मातृश्राद्ध के पूर्व दिन राजा शिवचन्द्र आकर पहुँच गये। गङ्गा गोविन्दसिंह बड़े समादर से आव

भगत करके श्राद्ध की समस्त आयोजना दिखलाने लगे।

शिवचन्द्र एक हज़ार आदमी साथ लेकर आये थे। इन्होंने मन ही मन सोचा था कि बहुत से लोगों को साथ लेकर जाने से गङ्गा गोविन्दसिंह उनके खाने पीने का सामान देने में असमर्थ होंगे। इसलिये मैं अनायास ही गङ्गा गोविन्दसिंह को नीचा दिखा कर चला आऊँगा।

शिवचन्द्र के पहुँचने पर गङ्गा गोविन्दसिंह ने प्रायः पाँच हज़ार आदमियों के खाने योग्य सामान उनके निवासस्थान पर भेज दिया। शिवचन्द्र ने फ़ौरन कुल चीज़ों को कंगालों को दान दे दिया। गङ्गा गोविन्दसिंह ने पुनः पाँच हज़ार लोगों के लायक सामान भेज दिया। शिवचन्द्र ने उसे भी ग़रीब लोगों को बाँट दिया। शिवचन्द्र की इच्छा थी कि गङ्गा गोविन्दसिंह को तंग करूँगा। किन्तु गङ्गा गोविन्द ने इतनी सामग्री इकट्ठी की थी कि उन्होंने पाँच बार पाँच पाँच हज़ार आदमियों के लिये खाने का सामान शिवचन्द्र के पास भेजा। अन्त में शिवचन्द्र अवाक् होकर गङ्गा गोविन्दसिंह से बोले—"भाई! तुम्हारा यह जो दत्तयज्ञ का आयोजन है—वह कुबेर का भण्डार हो गया है।"

गङ्गा गोविन्दसिंह हंस करके बोले, "दत्तयज्ञ से भी बढ़कर है?" शिवचन्द्र इस बात को सुन कर मनही मन अत्यन्त क्षुब्ध हुए। उन्होंने समझा था कि मेरी बात के प्रत्युत्तर में गङ्गा गोविन्द विनीत भाव अवलम्बन करके नम्रता दिखायेंगे। किन्तु गङ्गा गोविन्द इसके बदले में विशेष गर्वपूर्वक बोले कि "यह दत्तयज्ञ से भी बढ़कर है—"

तब गङ्गा गोविन्द का वह अभिमान देखकर शिवचन्द्र ज़रा गम्भीर मुख हो बैठ रहे।

गङ्गा गोविन्द उनके मनोगत भाव को समझ कर बोले,

"महाराज! क्या यह दक्षयज्ञ से अधिक नहीं है। दक्षयज्ञ में शिव का आगमन नहीं हुआ था किन्तु मेरे घर तो स्वयं शिवचन्द्र उपस्थित हैं।"

खुशामद की बातों से सभी खुश होते हैं। इस बात को सुनकर शिवचन्द्र अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। घर से चलते समय सोचा था कि स्वयं गङ्गा गोविन्दसिंह के घर का जल-स्पर्श तक नहीं करूँगा। किन्तु अन्त में इस श्राद्ध के उपलक्ष में उनके घर भोजन तक किया।

अभ्यागत राजाओं एवं ज़मीन्दारों का यथोचित आदर पूर्वक आव-भगत किया गया। रात्रि में वे सोने के लिये शयनागार में गये। देशी चिर-प्रचलित प्रथा के अनुसार कोई भी माता की मृत्यु के बाद एक मास तक पत्नी की शय्या पर शयन नहीं करता। किन्तु गङ्गा गोविन्दसिंह आधी रात को प्रायः निद्रावस्था में चिल्ला उठते थे, इससे इनकी सहधर्मिणी को इस समय भी इनके शयनागार के पासवाले कमरे में सोना पड़ता था। गङ्गा गोविन्दसिंह के चिल्ला उठने पर वे उनकी शय्या के पास जातीं और स्वामी के मस्तक पर जल गिरातीं एवं पंखा झलती थीं। स्वामी के स्वप्न की बात को वे मरते दम तक किसी को जानने देना नहीं चाहती थीं।

गङ्गा गोविन्द ने विश्राम करने के लिये शयनागार में प्रवेश किया। सुख की नींद सोना उनके भाग्य में कहाँ बदा था? नींद लगने के साथ ही वे और दिनों की तरह स्वप्न में देखने लगे कि हाथ में छुरी लिये हुए कमलादेवी अपने मरे हुए दोनों बच्चों को गोद में लेकर उन पर दौड़ी हुई आती है। पास आते ही छाती में छुरी घुसेड़ देती है। मरे हुए दोनों बच्चों को भी देह के ऊपर पटक देती है और पीछे से कमला

के स्वामी जगन्नाथ भट्टाचार्य अपने जनेऊ के द्वारा गले को कस रहे हैं।

गङ्गा गोविन्द की सहधर्मिणी ने इसके एक दिन पहले उन्हें कह रखा था कि इस बार जब आप कमलादेवी को स्वप्न में देखें, उसी समय स्वप्न की दशा में ही उनके पैरों मे मस्तक रख कर बोलें, "माँ, मेरी रक्षा करो—इस ब्राह्मण-हत्या के पाप से मेरा उद्धार करो।"

सहधर्मिणी का यह उपदेश गङ्गा गोविन्दसिंह को आज निद्रितावस्था में स्मरण हो आया। कमला देवी के पैरों तले मस्तक रखकर बोले, "माता तुम परम साध्वी हो। मुझे क्षमा-करो-इस ब्रह्महत्या के पाप से मेरा उद्धार करो।"

किन्तु स्वप्नावस्था में गङ्गा गोविन्द के यह कहते ही कैसी भयानक अवस्था उपस्थित हुई। वे निद्रितावस्था में देखने लगे कि सैकड़ों ब्राह्मण, सहस्रों किसान दौड़ते हुए उसी के तरफ़ आ रहे हैं। ये सभी कहने लगे,—"लगान बढ़ा कर हेस्टिंग्स को प्रसन्न रखने के निमित्त तुमने ही हमें हमारे अधिकारों से वंचित कर रखा है। हम लोगों की ब्रह्मोत्तर ज़मीन, हम-लोगों की सारी ज़मीन्दारी तुम्हीं ने चौपट कर दी। भूख प्यास के मारे हमारे बाल बच्चे मर गये। आज बारह वर्ष से तुम अत्याचार कर रहे हो इसका बदला अभी लेंगे।"

इन ब्राह्मणों में चार पाँच पुरुषों के गले में बड़ी २ रस्सियाँ लटक रही थीं। मालूम होता है कि उन लोगों ने अपने स्वत्व से वंचित होने पर सन्तान के दुःख-कष्ट को न सहने के कारण फाँसी लगा कर प्राण-त्याग किये थे। इनमें से कोई तो छाती पर चढ़ बैठा, कोई मुख चाप कर बैठ गया। गङ्गा गोविन्द की एक दम घिग्घी बँध गई। आज

उन्हें चिल्लाने की भी सामर्थ्य नहीं रही। छाती एवं गले को पत्थर से दबाने से जो दशा होती है, आज गंगा गोविन्दसिंह की वही अवस्था हुई।

कुछ समय के बाद वे देखने लगे कि सामने रक्त की एक नदी प्रवाहित हो रही है। सैकड़ों मृतशरीर उस नदी में बहे जा रहे हैं। इन मृत शवों से दुर्गन्धि निकल रही है। सामने खड़े हुए ब्राह्मण एवं किसान लोग गङ्गा गोविन्द को इसी नदी में फेंक देने के लिये उनके हाथ पाँव बाँध रहे हैं।

हाथ पाँव बाँधे जाने के बाद ज्यों ही उन लोगों ने उनकी छाती एवं गले को पकड़ कर उठा लिया, और खड़े होकर उस नदी में फेंकने का उपक्रम किया, त्योंही वे अत्यन्त उच्च स्वर से चिल्ला उठे।

उनकी आज की चिल्लाहट के शब्द से उनकी सहधर्मिणी के अतिरिक्त गृह-स्थित अन्यान्य लोग भी जाग कर जल्दी उनके शयनागार में दौड़े हुए आये। सब लोगों ने देखा कि वे जग कर शय्या पर बैठे काँप रहे हैं।

दूसरा कोई उनके स्वप्न का वृत्तान्त न जानने पावे, इस अभिप्राय से उनकी सहधर्मिणी ने गृह-स्थित अन्यान्य लोगों को बिदा कर, दमयन्ती की तरह अपने स्वामी के मस्तक को गोदी में लेकर उस पर जल गिराने एवं हवा करने लगीं।

कुछ देर के बाद गङ्गा गोविंद कुछ सुस्थ होकर स्त्री से बोले,—"प्रिये, तुम्हारे उपदेशानुसार आज स्वप्नावस्था में मैंने कमलादेवी को सम्बोधित कर के कहा, 'माँ, मुझे क्षमा करो।' इस बात के कहते ही वे अदृश्य हो गईं, किन्तु तत्काल ही सैकड़ों ब्राह्मण एवं हज़ारों की संख्या में किसान मेरी ओर दौड़े हुए आये और मुझे बाँध कर सामने की एक रक्त

की नदी में फेंक देने को उद्यत हुए। वे लोग जिस समय छाती पर चढ़ कर बैठ गये, उस समय मेरा गला रुद्ध हो गया।"

गङ्गागोविंदसिंह की इन सब बातों को सुन कर उनकी स्त्री कुछ देर तक चुप रह कर चिन्ता करने लगीं। किन्तु कैसे आश्चर्य की बात है! साध्वी रमणी किसी पुस्तक अथवा शास्त्रों का अध्ययन न करने पर भी केवल स्वाभाविक बुद्धि के द्वारा, धर्म के निगूढ़ तत्त्वों के सम्बंध में समय समय पर अनेकानेक युक्तिसंगत अनुमान कर सकती हैं। गङ्गा गोविंद की स्त्री अत्यन्त पुण्यवती थीं। ज्ञात होता है कि इन्हीं के पुण्य-फल से उत्तर काल में लाला बाबू के समान परम धार्मिक महात्मा ने इस परिवार में जन्म-ग्रहण किया था।

पुण्यवती साध्वी अपने स्वामी के स्वप्न के हाल को सुन कर बोली—"नाथ! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि कमला-देवी से क्षमा प्रार्थना करने पर भगवान् ने प्रसन्न हो तुम्हारे अन्यान्य पापों एवं कुकृत्यों पर तुम्हारी निगाह फिराई है। एक कुकृत्य पर नज़र पड़ने से क्रमशः अन्यान्य कुकृत्यों पर भी निगाह जाती है। इन सभी लोगों के सामने तुम क्षमा प्रार्थना करो, एवं तुम्हारे द्वारा जिन लोगों का अनिष्ट हुआ है, उनके साथ उपकार करने की चेष्टा करो। परमेश्वर निश्चय ही तुम पर सदय होकर इस दुष्कृति से तुम्हारी रक्षा करेंगे।"

गङ्गा गोविन्दसिंह बोले—"प्रिये, मुझे बड़ा भय लगता है। अब मैं और क्षमा प्रार्थना नहीं करूँगा। एक व्यक्ति के निकट तो क्षमा प्रार्थना करने पर हज़ारों लोगों ने आकर घर दबाया था। फिर उन हज़ार लोगों के निकट क्षमा-प्रार्थना करने पर तो लाखों आदमी आकर मेरा प्राण ले डालेंगे। जैसा स्वप्न देखा है, उससे अब तक भी मेरा हृदय काँप रहा

है! इन सब बातों को विस्मृति-सागर में डुबाये बिना मुझे सुख-शान्ति नहीं मिल सकती।"

यों कह कर गङ्गा गोविन्द सिंह निद्रा लेने के लिये अपनी स्त्री की गोद में मस्तक रख कर सोये। किन्तु पूरी नींद अभी लगने भी नहीं पाई थी कि फिर उन्हें भयानक दृश्य दीखने लगे। वह पहले की रक्त की नदी इस बार एकबारगी समुद्र हो गई थी। इस समुद्र का कहीं पार नहीं दिखाई पड़ता था। उसी मर्य्यादारहित रक्त सागर के पास में वे सोये हुए पड़े थे। उन्होंने देखा कि बहुत दूर से एक दौड़ती हुई स्त्री उनके तरफ़ आ रही है। उस स्त्री के पीछे पीछे हज़ारों लोग हाथ में लाठी आदि विविध अस्त्र शस्त्र को लेकर दौड़े हुए आ रहे हैं। उस स्त्री के आते ही उन्होंने देखा कि यह तो मेरी माता हैं। स्वप्नावस्था में उठ बैठे। उनकी माँ उनके देह को पकड़ कर बोली—"बेटा, मुझे बचाओ—मेरी रक्षा करो, वह देखो, सैकड़ों लोग मेरे पीछे दौड़ते हुए आ रहे हैं।" पीछे के लोगों का झुण्ड क्रमशः पास पहुँच गया। उस समय उनकी माता उनकी छाती में छिप जाने की चेष्टा करने लगीं।

उस झुण्ड में से कोई श्री हट्ट की भाषा में, कोई दिनाजपुर की भाषा में गाली देने लगे। इनमें एकादशवर्षीया एक बालिका के पीछे एक वृद्धा लकड़ी टेकती आ रही थी। ज्ञात होता है कि वह बालिका अंधी को लेकर भिक्षा माँगने जा रही हो। किन्तु गङ्गा गोविंद के पास पहुँचते ही वह घायल बाघिन की तरह दांतों को किड़मिड़ करती हुई अपनी लकड़ी से उनकी पीठ पर वार करने लगी और पीछे से "भूख-प्यास से मेरा प्राण निकल रहा है" कह कर कण्ठ पकड़ लिया।

इसके बाद अस्थिचर्मावशेष एक लम्बा पुरुष गाँजाखोर की तरह 'खो, खो, खो' करके खाँसता हुआ उसके पास आया और इनका हाथ पकड़ कर उस रक्तसागर के किनारे ले गया। समुद्र के बीच एक बालक का मृत शव बहता हुआ जा रहा था। गाँजेखोर ने उस बालक के शव को समुद्र से उठा कर ज्योंही उनकी तरफ़ फेंका, त्योंही वे चौंक उठे।

कुछ समय के बाद उन्होंने देखा कि लोगों की भीड़ से चार पाँच मनुष्यों ने दौड़ते हुए आकर उनकी माँ को उस रक्तसागर में फेंकना चाहा। वे तत्काल 'माँ' 'माँ' कह कर चिल्लाते हुए एकबार फिर उठ कर खड़े हो गये।

"फिर क्या हुआ—फिर क्या हुआ ?" कह कर उनकी सहधर्मिणी भी त्रस्त होकर उनके साथ ही उठ खड़ी हुई एवं उनके मस्तक पर जल गिराने लगी।

दो घड़ी रात्रि के रहने पर इस प्रकार फिर गङ्गा गोविन्द सिंह की निद्रा भंग हुई। जागने पर भय के मारे उन्होंने पुनः नींद लेने की चेष्टा नहीं की। चिन्ताकुल हो स्वप्न की बातों पर विचारने लगे। उन्हें संसार का पद व प्रभुत्व सारहीन प्रतीत होने लगा। किन्तु रात्रि के बीत जाने पर फिर वे बातें संसार के कोलाहल में बिलीन हो गईं। उन्होंने पूर्वरात्रि की मानसिक यन्त्रणा एक बारगी भुला दी।

बाईसवाँ अध्याय

नदी का जल नदी में

आज गंगा गोविन्दसिंह का मातृ-श्राद्ध है। प्रातःकाल होते ही उनके ग्राम से लेकर तीन कोस तक की सारी ज़मीन एक बारगी लोगों की भीड़ से भर गयी। निमन्त्रित ब्राह्मण तथा दूसरे निमन्त्रित पुरुषों के पूर्व-निर्दिष्ट घरों में ढेर की ढेर भोजन-सामग्री भेजी जाने लगी।

सैकड़ों भिखमंगे ब्राह्मण दान की आशा से आये और एक स्वतंत्र गृह में बैठ करके दान का रास्ता देखने लगे। निमन्त्रित शास्त्रज्ञ, ब्राह्मण और पंडित अपने वासस्थान में बैठ कर दूर से आये हुए अनेकों पंडितों के साथ शास्त्र-चर्चा करने लगे। वे निमंत्रित होकर आये थे। अतः भिखमंगे ब्राह्मणों की तरह साधारण दान-गृह में जाकर याचना करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

छद्मवेशी रामकृष्ण अधिकारी भिखमंगों के साथ साधारण दान-गृह में बैठे हुए दाता यजमान की राह देख रहे थे। कुछ समय के बाद ढेर के ढेर रुपये लेकर गंगा गोविंद के कर्मचारी भिखारियों को बिदा करने के लिये आये और किसी के हाथ चार रुपये, किसी के हाथ में पाँच रुपये इस प्रकार से देने लगे। भिखमंगों में से कई तो इतने ही रुपये पाकर संतुष्ट हो, चलते बने। किन्तु अन्य कितने ही और कुछ पाने की आशा में राह देखने लगे। जब वे लोग रामकृष्ण अधिकारी को रुपये देने लगे तो इन्होंने रुपये लेने से इन्कार करते हुए कहा—"स्वयं दाता-यजमान को छोड़ कर और दूसरे किसी के हाथ से मैं दान ग्रहण नहीं करूँगा"।

गंगा गोविन्दसिंह आज एक स्थान पर बैठ नहीं पाते थे। वे कभी यहाँ कभी वहाँ, कभी ज़मीदारों में तो कभी पंडितों में, इस तरह सब बातों की पूछताछ करते फिरते थे।

साधारण दान-गृह में भिखमंगे बहुत गोलमाल मचा रहे थे। गोलमाल सुनते ही वे उधर चले। जो पहले चार पाँच रुपये पा चुके थे, उनमें से कई और कुछ चाह रहे थे। गंगा गोविन्दसिंह ने वहाँ आते ही और एक एक रुपया देने के लिये कहा। सभी "महाराज की जय हो" कह कर आशीर्वाद देने लगे।

रामकृष्ण अधिकारी बहुत से लोगों के पीछे से आकर बोले, "महाराज! मैं रुपये पैसे का प्रार्थी नहीं हूँ। गत पौष मास रंगपुर के जो कई लोग क़ैद कर लिये गये हैं, उनके छुटकारे के लिये मैं प्रार्थना करता हूँ।"

इस ब्राह्मण-कुमार की बात सुनते ही गंगा गोविन्दसिंह का चेहरा चमक उठा। उन्होंने छल करके किसी मतलब को पूरा करने के लिए इन लोगों को कैद कर रखा था। उस छल की बात को देवीसिंह, गुडलैंड एवं हेस्टिंग्स के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था। ब्राह्मण-कुमार की इस बात को सुनकर वे बोले, "ब्राह्मण-कुमार, किसी कैदी को छोड़ देना मेरी सामर्थ्य की बात नहीं। यदि तुम रुपये पैसे चाहोगे, तो अभी मिल जायेंगे।"

रामकृष्ण बोले,—"महाराज! मुझे रुपये पैसे से कोई प्रयोजन नहीं। रंगपुर के जो पन्द्रह *आदमी पकड़ कर क़ैद किये गये हैं, उन्हें छोड़ देने की भीख आप से मांगता हूँ।"

---

* देखो परिशिष्ट नं० १७।

गंगा गोविन्द—किसी को क़ैद से छोड़ना मेरे लिये असाध्य है।

रामकृष्ण—महाराज, आपने प्रतिज्ञा की है कि शक्ति के अनुसार सब की प्रार्थना पूर्ण की जायगी। शक्ति रहते मेरी प्रार्थना पूर्ण न करने से आपका यह व्रत भंग हो जायगा।

गंगा गोविन्द—तुम्हारी इस प्रार्थना को पूर्ण करने की मुझ में शक्ति नहीं; तुम जितने रुपये कहो, अभी दे सकता हूँ।

रामकृष्ण—आप रुपये दान देकर केवल जल में जल डाल रहे हैं। नदी के जल को लेकर पुनः उसी में उलीचने से कोई लाभ नहीं होता।

गंगा गोविन्द—जल में जल उलीचता हूँ? सो कैसे।

रामकृष्ण—देश के सब लोगों की अर्थ-सम्पत्ति, रुपये-पैसे लूट कर, उनका कुछ अंश आप फिर इन लोगों को दे रहे हैं। नदी का जल लेकर नदी ही में उलीच रहे हैं।

रामकृष्ण को इस बात को सुनते ही उन्हें गत रात्रि का स्वप्न एकाएक याद हो आया। कुछ देर तक वे बिल्कुल आवाक् होकर खड़े रहे। रामकृष्ण पुनः बोले "इस तरह नदी के जल को नदी में उलीचने से आप की माता को स्वर्ग नहीं मिल सकता। यदि माता के स्वर्ग में जाने की इच्छा है तो सब निरपराध लोगों को अभी छोड़ दो।"

गंगा गोविंदसिंह को इस तरह से अपमानित एवं तिरस्कृत करने का किसी ने साहस नहीं किया था। तीन चार आदमी रामकृष्ण को मारने चले। गंगा गोविंदसिंह उन्हें मारने से मना करते हुए बोले,—"आज किसी अभ्यागत अतिथि को कड़े शब्द मत कहो। तथा उसे घर से बाहर मत निकालो।

यह कह कर वे दूसरी जगह चले गये। रामकृष्ण अत्यन्त निराश हुआ। उसने यह आशा की थी कि मातृ-श्राद्ध के दिन गंगा गोविन्दसिंह निश्चय ही मेरी प्रार्थना को पूर्ण करेंगे। किन्तु उसकी वह आशा पूर्ण नहीं हुई। वह मन मसोस कर रह गया और उसने सोचा कि आने जाने में व्यर्थ ही समय नष्ट हुआ।

रामकृष्ण अधिकारी निराश होकर पुनः कलकत्ता चले। अब सुप्रीम कोर्ट में दरख़्वास्त देने के अतिरिक्त दूसरा उपाय ही नहीं रह गया था। किन्तु सुप्रीम कोर्ट में दरख़्वास्त देने में बहुत धन की आवश्यकता थी। दूसरी ओर इससे दो एक मास के भीतर छूटने की सम्भावना नहीं थी। रंगपुर के लोग प्रेमानन्द के आने की ओर टकटकी लगाये हुए थे। अतः क्या करना चाहिये, इसका वे कुछ भी निर्णय नहीं कर सकते थे।

इधर मातृ-श्राद्ध के दो एक दिन के बाद गंगा गोविन्द कलकत्ता लौट आए और भिन्न भिन्न ज़िलों के कलक्टरों को अपने अपने भेजे हुए द्रव्यादि के मूल्य का हिसाब लिख कर भेजने को लिखा; किन्तु सभी ज़िलों से कलक्टरों के दीवानों ने लिख भेजा कि बहुत थोड़े मूल्य की सामग्री भेजी गई थी। प्रजा एवं ज़मीन्दारों में से अधिकतर लोगों ने स्वेच्छा से ही दीवान बहादुर की माता के श्राद्ध के उपलक्ष में ये चीजें दी थीं। इनमें कोई भी इसका मूल्य लेना स्वीकार नहीं करते थे।

किसी किसी कलक्टर के दीवान ने लिख भेजा, "दीवान बहादुर के पत्र को पाकर अत्यन्त लज्जित हुआ। श्राद्ध के थोड़े दिन शेष रहने पर ख़बर मिली थी। इस ज़िले के सब स्थानों

से द्रव्यादि को संग्रह करने का अवसर नहीं मिला। जो थोड़े बहुत फलमूल भेजे गये, वह मेरे निजी बगीचे के थे।"

किन्तु एक एक ज़िले से प्रायः बीस पचीस हज़ार रुपये के मूल्य के द्रव्य भेजे गये थे। उन वस्तुओं के बटोरने के समय उनका चतुर्थांश तो बरकन्दाज़ों ने रख लिया था। कितना ही अंश दीवानों के घर गया था। इतने पर भी आश्चर्य यह कि दीवानों में से अनेकों ने लिखा कि उनके निजी बगीचे से फलमूल भेजे गये थे।

तेईसवाँ अध्याय

ज़ेलखाने से छुटकारा

It was in a struggle to make him (Ganga Govind) do his duty, that, we fell under a charge of neglect of duty and disobedience of order. We were therefore divested of our Trust.

—*Evidence of Mr. Peter Moore in the trial of Hastings.*

(अर्थात् गङ्गा गोविन्द से अपना कर्त्तव्य करने को कहना, झगड़े का कारण हो गया जिससे उन्हें हमीं लोगों पर हुक्म-अदूली एवं कर्तव्य-पालन में लापरवाही दिखाने का दोषारोपण किया गया। हमलोग अन्त में अपने ट्रस्ट से हाथ धो बैठे। —हेस्टिंग्स के मुक़दमे में मि० पेटर मूरे की गवाही।

सत्यवती पुनः कलकत्ते आकर स्वामी के उद्धार के लिये चेष्टा करने लगीं। उसे शीत, वृष्टि, धूप कुछ भी मालूम नहीं पड़ता था। उसके मन में स्वामी को छुड़ाने के अतिरिक्त और कोई बात ही नहीं थी। दिन में वृक्ष तले बैठती और रात में

वृक्ष के नीचे ही सोती थी: आहार-निद्रा का उसने प्रायः परित्याग ही कर दिया था। जिस जीर्ण वस्त्र से दिन में वह लज्जा का निवारण करती, रात्रि में उसी को बिछा कर सो जाती थी। किन्तु इससे शरीर में कोई रोग प्रवेश नहीं करने पाया। जिस समय सुख-सम्पत्ति के बीच श्वशुर के दो तल्ले घर में निवास करती थी, उस समय किसी रात्रि में घर का दरवाज़ा बन्द न करने से रात की ठण्ढी हवा रोग का कारण हो जाया करती थी। किन्तु आज १२ दिन से वह वृक्ष के नीचे शयन कर रही थी। कोई रोग उसके शरीर में न घुसने पाया। विपद उसके शरीर को रोग के आक्रमण से रक्षा करने वाले कवच का काम करती थी। चिन्तानल सर्वदा उसके हृदय के बीच प्रज्वलित रहता था, इसीसे सत्यवती को शीत की अधिकता मालूम नहीं पड़ती थी।

माघ का महीना प्रायः समाप्त हो रहा था। आज माघ को २१ वीं तिथि है। माघ मास की पहली तीथि को ही रामानन्द देवीसिंह के आदमियों द्वारा पकड़े गये थे। उस पहली तिथि से आजतक बंग-कुलवधू सत्यवती जिन दुसाध्य कामों को करती आ रही थी, उनपर विचार करने से आश्चर्यचकित होना पड़ता है। इन इक्कीस दिनों के कष्ट और यन्त्रणाओं ने, इन इक्कीस दिनों की परीक्षा ने उसे इक्कीस वर्ष की अभिज्ञता प्रदान की थी।

पाठकों को स्मरण होगा कि प्रेमानन्द गोस्वामी दो तीन मास पहले काशी में लक्ष्मण से बिदा लेकर स्वदेश आये थे। वे पहले दिनाजपुर में पहुँचे और वहाँ पर देवीसिंह के अत्याचार को देखा। बाद में दिनाजपुर से पिता एवं स्त्री के अन्वेषणार्थ रंगपुर चले गये। वहाँ पर पिता और पत्नी के बारे

में कुछ भी पता नहीं चला। रंगपुर के अधिकांश ज़मीन्दार घरबार छोड़कर चले गये। तब इन्होंने ख़याल किया कि हो सकता है कि मेरे पिता एवं स्त्री भी किसी शिष्य के साथ भाग गये हों।

रंगपुर के जन-साधारण के कष्टों को देखकर, उन्हें असाधारण दुःख हुआ। वे प्रजा के अत्याचारों को रोकने के निमत्त उपदेश करने लगे। इस समय ऐसा कोई भी नहीं था जो अत्याचार-पीड़ित प्रजा के साथ सहानुभूति दिखावे। प्रेमानंद की सहानुभूति पाकर प्रजा एवं बहुत से ज़मीन्दार उत्साहित हुए। कई लोगों ने तो दृढ़संकल्प कर लिया कि जीवन देकर भी अत्याचार का विरोध करेंगे। बहुत से भागे हुए ज़मीन्दार भी इनका साथ देने को सहमत हुए।

देवीसिंह प्रजा की ऐसी अभिषाला जानकर अत्यन्त भयभीत हुआ। अत्याचारी प्रायः बहुत भीरु एवं कापुरुष होते हैं। देवीसिंह के समान भीरु एवं कापुरुष लोग बंगाल में बहुत थे। प्रजा-विद्रोह की आशंका से देवीसिंह बहुत डर गये। उनके मौसेरे भाई गुडलैंड साहब भी अत्यन्त संकट में पड़े। वे दोनों दो एक ज़मीन्दारों को अपनी ओर करने को चेष्टा करने लगे। बंगदेश में कापुरुष ज़मीन्दारों का अभाव कभी नहीं रहा है। गौर मोहन चौधरी नामक एक ज़मीन्दार पहले कई बार हरेराम, सूर्यनारायण एवं भेखधारी सिंह के द्वारा अपमानित हो चुका था। किन्तु इस समय देवीसिंह का अनुग्रह प्राप्त करने की आशा से उसने उनका पक्ष लिया एवं छल द्वारा प्रेमानन्द एवं दूसरे कई लोगों को पकड़वा कर देवीसिंह के पास भेज दिया। विद्रोह को दमन करने के लिये देवीसिंह ने इन लोगों को एक बारगी कलकत्ते की जेल में भेज दिया।

देवीसिंह ने जो जो अत्याचार किये थे, उनके प्रकट होने पर क्या गुडलैंड, क्या गंगा गोविन्द और क्या स्वयं वारेनहेस्टिंग्स सभी को नीचा देखना पड़ता। ये सभी इन अत्याचारों को आश्रय देनेवाले थे। इसलिए सभी इस बात की चेष्टा करने लगे कि किसी तरह से अत्याचार प्रगट न होने पावे। गंगा गोविन्द ने छल करके देवीसिंह के भेजे हुए इन लोगों को जेल में क़ैद करके रखा। प्रेमानन्द आज प्रायः बीस दिन से जेल में थे। जेल से मुक्त होने का कोई उपाय करने में वे समर्थ नहीं हुए। उनकी स्त्री सत्यवती भी कलकत्ता आकर आज तक कैद से छुड़ाने की कोई तरकीब सोचने में समर्थ नहीं हुई थी।

आज माघ की २१ वीं तिथि है। सत्यवती एवं जगा कलकत्ते के एक आम रास्ते के बगल में एक वट-वृक्ष के नीचे बैठ कर सोच रहे थे। मन ही मन परमेश्वर से अपने स्वामी की कारा-मुक्ति के लिये प्रार्थना कर रहे थे। सैकड़ों लोग सड़क से होकर भिन्न भिन्न २ आफ़िसों को जा रहे थे। एक भद्र पुरुष हाथ में बहुत से काग़ज़ पत्र लिये हुए इसी रास्ते से होकर उत्तर को जा रहा था। उसको पता न लगते हुए उसके हाथ से एक काग़ज़ गिर पड़ा। परन्तु वह भद्र पुरुष बराबर आगे बढ़ता ही गया।

सत्यवती ने उस भद्र पुरुष के हाथ से रास्ते पर काग़ज़ को गिरते हुए देखा और जगा को उस व्यक्ति के पीछे २ दौड़ कर उस कागज़ को दे आने के लिये कहा। जगा उस भद्र पुरुष के पीछे २ दौड़ता हुआ गया और उसने कागज़ को उसे दे दिया। भद्र पुरुष कागज़ को पाकर चौंक उठा। अपने हाथ में जो कागज़ थे, उन्हें खोल कर देखा तो ज्ञात हुआ कि उन्हीं काग़ज़ों में से अनजान से वह कागज़ खुल

कर गिर पड़ा था। इस कागज़ को पाकर वे अत्यन्त सन्तुष्ट हुए एवं जगा से बोले, "भाई तुमने मेरा बड़ा उपकार किया। इन कागज़ों के खो जाने से आज मेरी खैरियत नहीं थी। गंगा गोविन्द मेरा परम शत्रु है। वह निश्चय ही मेरे अपकार की चेष्टा करता।"

इस भद्र पुरुष का नाम रामचन्द्रसेन था। जब गंगा गोविन्दसिंह को कौंसिल के अधिकांश मेम्बरों ने सन् १७७५ ई० में बरख़ास्त कर दिया था तब फ्रांसिस फिलिप के अनुरोध से ये ही नायब दीवान बनाये गये थे। किन्तु हेस्टिंग्स एवं वारवेल ने कर्नल मान्सन की मृत्यु के बाद इनको पदच्युत करके गंगा गोविन्द सिंह को पुनः काम पर बहाल किया।

सेन महाशय ने जगा से पूछा "क्या तुम कलकत्ते में नौकरी तलाश करने के लिये आये हो? तुम्हारे द्वारा मेरा बड़ा उपकार हुआ है। यदि तुम्हें कुछ प्रार्थना करनी हो तो मुझसे कहो।"

जगा बोला—"महाशय, मैं यहाँ पर किसी नौकरी की तलाश में नहीं आया हूँ, मेरे मालिक रामकृष्ण अधिकारी उस पेड़ के तले बैठे हुए हैं। उन्होंने ही यह कागज़ पाकर मेरे द्वारा भेजा है। उनके एक आत्मीय को गङ्गा गोविन्दसिंह ने जेल में क़ैद करके रखा है। क्या आप उनके छुटकारे का कोई उपाय कर सकते हैं?"

तब रामचन्द्रसेन रामकृष्ण के पास आये, एवं उनकी सब बातें सुनकर बोले—"अधिकारी महाशय, आप भय न करें। आपको सुप्रीमकोर्ट में कोई दरख़्वास्त नहीं देनी पड़ेगी। आपके आत्मीय लोगों के छुटकारे का मैं आज ही एक उपाय कर दूँगा। आप मेरे साथ राजस्व-कमिटी के आफ़िस में चलें।"

राम कृष्ण अधिकारी एवं रामचन्द्रसेन दोनों राजस्व-कमिटी

के दफ़्तर में गये। रामचन्द्रसेन ने पिटर मूरे साहब के समक्ष उनकी सारी बातें बयान कीं। पिटर मूरे ने इनकी बात को सुन कर गंगा गोविन्दसिंह से उक्त कैदियों को जेल में रखने का कारण पूछा।

गंगा गोविन्दसिंह उन्हें जेल में रखने का कोई सन्तोष-जनक कारण न दिखा सके और असली कारण भी इनसे वे नहीं कह सकते थे। मूरे साहब ने उनको खूब खरी २ सुनाई, एवं प्रेमानन्द की रिहाई का परवाना निकालने को कहा।

तीसरे पहर गंगा गोविन्दसिंह ने वारेन हेस्टिंग्स के पास जाकर सब बातों को बयान किया। हेस्टिंग्स मूरे साहब के प्रति अत्यन्त असन्तुष्ट हुए। हेस्टिंग्स ने पहले ही निश्चित कर रखा था कि राजस्व-कमिटी का सब काम गंगा गोविन्द-सिंह चलायेंगे। कमेटी के मेम्बरों पर केवल दस्तखत भर करने का भार रहेगा। मूरे साहब ने गंगा गोविन्दसिंह के कार्य में हस्तक्षेप किया, इससे हेस्टिंग्स ने पहले इनको ढाका भेजा। बाद में क्रमशः सात घाट का जल पिला कर के छोड़ा।

चौबीसवाँ अध्याय

स्वामी-स्त्री

प्रेमानन्द गोस्वामी एवं उनके साथियों की रिहाई का पर-वाना लेकर जब राजस्व-कमिटी का चपरासी जेल को चला, तब पुरुष-वेषधारी सत्यवती एवं जगा भी इसके पीछे पीछे चले। चलते समय सत्यवती ने प्रेमानन्द को अपना असली परिचय देने से जगा को मना किया।

प्रेमानन्द के जेल से छूट कर बाहर होते ही, जगा एवं सत्यवती उनके पास जाकर खड़े हुए। प्रेमानन्द पहले जगा को पहचान न सके, किन्तु उसने ज्योंही आत्म-परिचय देना आरंभ किया, त्योंही उन्होंने उसे पहचान लिया, एवं उससे पूछा कि इस समय रामानन्द गोस्वामी कहाँ पर हैं? जगा एक एक करके सारी बातों को कह गया। किंतु सत्यवती के आज्ञानुसार उसने रामकृष्ण अधिकारी के नाम से ही उसका परिचय दिया।

प्रेमानन्द, रामकृष्ण अधिकारी को पहचान न सके। बहुत देर तक उसके मुँह की ओर आँख फाड़ फाड़ कर के देखते रहे। किन्तु मन ही मन सोचने लगे कि जब ये इतना कष्ट सह कर मुझे छुड़ाने के लिये आये थे; तब ये मेरे कोई आत्मीय कुटुम्बी अवश्य हैं।

सत्यवती टकटकी लगाकर अपने स्वामी के मुख की ओर ताकती रही। इस दुरवस्था में स्वामी के मुख को देखने में उसके हृदय में जो अपार आनन्द का स्रोत प्रवाहित होने लगा, उसका शब्दों द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। पति-प्राणा साध्वी ने ज्यों ही अपने स्वामी के मुख को देखा, त्यों ही उसका हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो गया।

सत्यवती ने आज बारह वर्ष के बाद अपने स्वामी के मुख का अवलोकन किया। जो पहले यह विश्वास करती थी कि बारह वर्ष पहले ही स्वामी की मृत्यु हो गई, उसने अपने स्वामी को जीवित देखा। आज उसके हृदय में जैसे आनन्द की हिलोरें उठ रही थीं, उसका वर्णन करने का यदि हम प्रयत्न करेंगे तो भाषा, वाक्य एवं कल्पना सभी को परास्त होना पड़ेगा।

प्रेमानन्द कुछ देर तक पुरुष-वेषधारी सत्यवती के मुख की ओर ताक कर बोले,—

"महाशय, आप अवश्य ही मेरे कोई आत्मीय कुटुम्बी हैं। आज बारह वर्ष से किसी आत्मीय स्वजन से भेंट मुलाकात नहीं हुई, इसी के कारण मैं आप को पहचान नहीं रहा हूँ।"

रामकृष्ण बोले—"आप के देश छोड़ कर चले जाने पर आप की फूआ सदा आप के लिये रोया करती थीं। उनके कष्ट को दूर करने के लिये मैं रंगपुर एवं दिनाजपुर में जाकर आप का पता लगाने लगा। इस समय आप की स्त्री एवं पिता पाँडुया के जंगल में हैं। वहाँ पर कमलादेवी नामक एक और स्त्री है। उनसे सुना कि आप कलकत्ते में क़ैद कर लिये गये हैं। तब मैं आप को कारागार से छुड़ाने के लिये यहाँ आया। किस कष्ट के साथ आप को जेल से छुड़ाया है, उसे जगा के मुँह से तो आप सुन ही चुके हैं।

प्रेमानन्द—मेरी फूआ के साथ आप का कौन सम्बन्ध है?

रामकृष्ण—वे मेरी सास हैं।

प्रेमानन्द—क्या मेरी फुफेरी बहिन की शादी आप ही से हुई है? पर मैं तो यह भी नहीं जानता कि मेरी कोई फुफेरी बहन भी है। हाँ, एक फुफेरा भाई था, जिसे मरे हुए बहुत दिन हो गये।

रामकृष्ण—आप को जानने की संभावना भी नहीं है। क्योंकि आप के देश छोड़ कर चले जाने के पीछे ही आप की फुफेरी बहन का जन्म हुआ था। उनकी अवस्था इस समय ग्यारह वर्ष से अधिक नहीं है। गत वर्ष माघ मास में उनके साथ मेरी शादी हुई थी।

प्रेमानन्द—आप देखने में तो सत्रह अठारह वर्ष के युवक

हैं, किन्तु आप में साहस तो मैं अपूर्व देखता हूँ। इसी अल्पा-वस्था में आपने परोपकारार्थ इतना कष्ट स्वीकार किया, यह बड़े आनन्द का विषय है।

रामकृष्ण—परमेश्वर जानते हैं कि मैं कभी भी आपको दूसरा नहीं समझता। हां, आपसे साक्षात् नहीं हुआ था।

प्रेमानन्द—मालदा के सभी लोग आप को परोपकारी कह कर प्रशंसा करते हैं। आप जैसे परोपकारी सम्बन्धी के लिये थोड़ा कष्ट कर दिया, यह क्या अधिक है?

जगा इन लोगों को आपस की बातें सुनकर अपनी हँसी को और नहीं रोक सका। जगा को कुछ हँसते हुए देख कर सत्यवती ने वहाँ से हट जाने के लिये उसे इशारा किया। प्रेमानन्द इस इशारे को जान न सके। जगा दूसरी जगह चला गया।

प्रेमानन्द बोले,—महाशय, मैं आप का बहुत आभारी हूँ। किन्तु अभी हमें रंगपुर जाना होगा। आप जल्दी से मालदा जाकर मेरे पिता, कमला देवी एवं फूआ से मेरे छुटकारे का समाचार दें। रंगपुर का कार्योद्धार होने पर पांडुया जाऊँगा और उनके साथ भेंट मुलाकात करूँगा?

रामकृष्ण—आपने अपनी स्त्री से कहने के लिये तो कुछ कहा ही नहीं। उनके पूछने पर मैं क्या कहूँगा।

प्रेमानन्द—मेरे पिता से जो कहेंगे, वही उनसे भी कहियेगा।

रामकृष्ण—आपकी स्त्री आपके लिये अत्यन्त व्याकुल हो रही हैं। एक बार उन्हें दर्शन देकर के वहाँ जाइये।

प्रेमानन्द—इस समय तो एक मुहुर्त की भी देरी नहीं कर

सकता। नहीं तो क्या वृद्ध पिता एवं कमलादेवी को देखने न जाता ?

रामकृष्ण—मेरे यहाँ आने के समय आपकी स्त्री ने मुझे आपको साथ में लेकर पाँडुया के जंगल में आने के लिये बारम्बार चेताया था।

प्रेमानन्द—अभी तो बिलकुल समय नहीं है। मुझे इस बात का कुछ पता ही नहीं कि रंगपुर में क्या हो रहा है, मेरे ही परामर्श से वे युद्ध के लिये तैयार हुए थे। मुझे अपने प्राणों की बाज़ी लगा करके भी उनके कल्याण की चेष्टा करनी होगी।

रामकृष्ण—मालदा हो करके ही तो रंगपुर जाना होगा। इसमें एक दिन से अधिक का विलम्ब नहीं होगा।

प्रेमानन्द—इस समय तो एक दिन के विलम्ब से भी सर्वनाश हो सकता है।

रामकृष्ण—मुझे क्षमा कीजियेगा। आप एक विद्वान् पुरुष हैं, आपके सामने मैं एक बालक हूँ। किन्तु मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि आप को अपनी स्त्री पर कुछ भी प्रेम नहीं है। यदि स्त्री के प्रति प्रेम होता तो बिना भेंट मुलाकात किये क्यों चले जाते।

प्रेमानन्द—क्या कर्त्तव्य का उल्लंघन करके स्त्री के प्रति प्रेम प्रदर्शित करना उचित है ? मैं तो समझता हूँ कि प्राण निकलते तक भी कर्त्तव्य-मार्ग से विमुख होना उचित नहीं।

रामकृष्ण—स्त्री के प्रति भी तो कुछ कर्त्तव्य हैं।

प्रेमानन्द—हाँ, है! स्त्री की रक्षा करना, उसका भरण पोषण करना, शक्ति के अनुसार उसे सुखी रखने की चेष्टा करना, इन्हें ही मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। प्राण निकलते दम तक मैं कर्तव्य-पालन से अलग नहीं हो सकता। ग्यारह वर्षों तक जो विदेश में भटकता फिरता रहा हूँ, वह भी कर्तव्य ही के

अनुरोध से। जिसने मेरी प्राण रक्षा की थी, उसकी भलाई की चेष्टा न करने से अकृतज्ञ होना पड़ता। इसलिये उसी के कार्य से ग्यारह वर्ष तक विदेशों में रहा। विशेषतः उस समय मुझे इस बात का स्वप्न में भी ध्यान नहीं था कि मेरे पिता एवं स्त्री को ऐसी दुर्दशा में पड़ना होगा। मेरे विदेश जाने के समय वे एक शिष्य के घर में निर्विघ्न निवास कर रहे थे।

रामकृष्ण—महाशय, मैं बालक हूँ। मुझे क्षमा कीजियेगा। आप से पहले का परिचय न होने पर भी आप मेरे ख़ास रिश्तेदार हैं। इसलिये छल-कपट से रहित होकर आप से बात कहता हूँ। यदि स्त्री पर आप का अगाढ़ प्रेम होता तो आप उससे बिना मुलाकात किये कभी नहीं जाते।

प्रेमानन्द—स्त्री के प्रति जिस प्रकार की आसक्ति लोगों को कर्त्तव्य-पथ से भ्रष्ट करती है, लोगों को भोगासक्त बनाती है लोगों को स्वार्थी बनाती है, वैसी आसक्ति का न होना ही अच्छा है। मुझ में स्त्री के प्रति उस प्रकार की आसक्ति नहीं है। मैं स्त्री के लिये उस तरह का पागल नहीं हूँ।

रामकृष्ण—किन्तु जो स्त्री स्वामी के प्रत्येक काम से सहानुभूति प्रकट करके सदा कर्तव्य-मार्ग पर स्वामी का साथ देती है, उसके प्रति प्रगाढ़ आसक्ति होने पर भी—जहाँतक मेरा ख़याल है—कर्तव्य-साधन में कभी बाधा नहीं पड़ती। हाँ, किसी स्वार्थी स्त्री के प्रति प्रगाढ़ आसक्ति होने से लोग ज़रूर क्रमशः कर्तव्य-मार्ग से च्युत हो जाते हैं।

प्रेमानन्द—सहृदय स्वामी के प्रत्येक काम में सहानुभूति प्रकट करे, ऐसी स्त्री, संसार में बहुत दुर्लभ है। वैसी स्त्री जिसके भाग्य में है, उसका प्रगाढ़ अनुराग एवं दाम्पत्य-प्रणय

उन्हें कर्तव्य-पथ से भ्रष्ट करना तो दूर, बल्कि उन्हें कर्तव्य-मार्ग पर परिचलित करता है।

रामकृष्ण—मालूम होता है कि आप के भाग्य में ऐसी स्त्री नहीं मिली, इसी से स्त्री पर आपका प्रेम नहीं है।

प्रेमानन्द—इस समय इन सब विषयों पर बातचीत करने का उपयुक्त समय नहीं है। इन सब बातों को छोड़ दीजिये।

रामकृष्ण—अवश्य ही इन सब बातों के कहने सुनने का यह उपयुक्त समय नहीं है। किन्तु आप की स्त्री के अनुरोध को मैं एक बारगी छोड़ भी नहीं सकता था। उन्होंने मुझे बारम्बार आपके मन की अवस्था को जानने के लिये कहा है। आप की बातों के आभास से अब मैंने स्पष्ट जान लिया कि स्त्री के प्रति आपको विशेष प्रेम नहीं है। आप मन में यह समझते हैं कि वह (स्त्री) मेरे कामों में सहानुभूति प्रकट करने में असमर्थ है, इसलिये उस पर प्रेम नहीं करते।

प्रेमानन्द—मैं उस पर प्रेम करता किन्तु वह मेरे कामों के प्रति सहानुभूति रखने में बिल्कुल असमर्थ है। जब हमारे देश के पुरुषों तक ने मेरे काम के प्रति सहानुभूति प्रकट न की तब उसे क्यों कर दोष दूँ? क्योंकि वह तो स्त्री ही ठहरी।

रामकृष्ण—यदि आप की स्त्री आपके इन कार्यों से सहानुभूति प्रकट करे, तब तो आप उसे चाहेंगे न?

प्रेमानन्द—इन सब बातों को इस समय छोड़ दें। मैं रंगपुर की भावना से अस्थिर हो रहा हूँ। ये सब बातें इस समय अच्छी नहीं लगतीं।

रामकृष्ण—बारह तेरह वर्ष पहले आपने अपनी स्त्री से क्या यह नहीं कहा था कि यदि वह आपके कार्यों से सहानुभूति प्रकट करेगी, तो आपकी वह एक मात्र आराध्य देवी होगी?

प्रेमानन्द इस बात को सुन कर रामकृष्ण अधिकारी के मुंह की ओर आँखें फाड़ फाड़ कर देखने लगे। वे सोचने लगे कि इस बात को मालदा रहते समय मैंने अपनी स्त्री से कई बार कहा था। किन्तु यह युवक इस बात को किस प्रकार से जानता है?

रामकृष्ण बोला—महाशय! आश्चर्य क्यों हो रहा है? आपकी मृत्यु हुई समझ कर जिस समय आपकी स्त्री विलाप कर रही थी, उस समय ये बातें मुख से निकालती थी।"

प्रेमानन्द ने समझा कि हो सकता है मेरी स्त्री ने मेरे शोक से विह्वल हो कर—मालूम होता है—विलाप करते समय इन सब बातों तो कह दिया है। किन्तु रामकृष्ण को सम्बोधन करके वे बोले, "महाशय, मैं बारम्बार आप से अनुरोध करता हूँ कि इन सब बातों को इस समय छोड़ दीजिये। मैं रंगपुर की चिन्ता से अस्थिर हो रहा हूँ। इस समय आप से बिदा होना चाहता हूँ। आपने मेरा जैसा उपकार किया है उससे तो इस प्रकार आप से बिदा माँगना अकृतज्ञता है। किन्तु कर्त्तव्य के अनुरोध से आज दिखाऊ तौर पर अकृतज्ञ होना पड़ता है।

रामकृष्ण इस बात को सुनकर, प्रेमानन्द का हाथ पकड़ कर बोले, मुझे क्षमा कीजियेगा। बारह वर्ष के बाद आप जैसे सम्बन्धी को पाकर अभी बिदा नहीं दे सकता। हाँ, यदि आप रंगपुर जाना ही चाहते हैं, तो रास्ते में दो एक दिन आप का साथ दूँगा। आपके साथ तो रंगपुर तक चलता, किन्तु आपके पिता अत्यन्त बीमार हैं। मुझे जल्दी पांडुया जाना होगा।"

प्रेमानन्द सोचने लगे कि अब तो बड़ी विपत्ति में पड़ा।

इसको साथ लेकर रंगपुर जाने में रास्ते भर स्त्री के विषय में बातें करके यह तो मुझे पथ-भ्रष्ट कर देगा। यह तरुण वयस्क युवक है, इसको ऐसी रसिक बातें ही अच्छी लगती हैं। रिश्ते में मैं इसका साला भी हूँ। इसीसे दिल्लगी कर रहा है। किन्तु फिर बोले—"यदि आप पांडुया जाकर मेरे वृद्ध पिता की ऐसी नाज़ुक हालत में सेवा शुश्रूषा करेंगे, तो मेरा बड़ा उपकार होगा। आप अत्यन्त अल्पवयस्क युवक हैं। रंगपुर में इस समय युद्ध होगा। वहाँ पर आप का जाना ठीक नहीं होगा।"

रामकृष्ण—रंगपुर में युद्ध होगा तो मेरा वहाँ जाना क्यों नहीं उचित होगा? आप जो जाते हैं!

प्रेमानन्द—इस समय मुझे प्राण-विसर्ज्जन करने में भी भय नहीं है। आप अल्पवयस्क युवक हैं। आप क्यों व्यर्थ में जाकर वहाँ विपत्ति में फसेंगे?

रामकृष्ण—मैं भी आप के साथ प्राण-विसर्ज्जन करने के लिये तैयार हूँ। ऐसे सम्बन्धी के साथ प्राण देने में भय ही क्या है? मरने के बाद स्वर्ग में जाकर दोनों आदमी एकत्र बैठ कर गप्प लड़ायेंगे।

प्रेमानन्द सोचने लगे कि यह तो बड़ा बक्की लड़का है। किन्तु इसे जिस तरह से हो, अभी बिदा करना ही होगा। यह सोच कर वे जगा को बुलाने लगे। इन्होंने मन में यह सोचा कि जगा को जल्दी से पांडुया जाने के लिये कहने पर यह बक्की लड़का भी बाध्य होकर जगा के साथ पांडुया चला जायगा।

किन्तु सत्यवती प्रेमानन्द के मन की बात समझ कर बोली—"यदि आप मुझसे बिदा ही लेना चाहते हैं, तो कान में एक

बात सुन कर चले जाइये। आप की स्त्री ने इस बात को आप से कहने के लिये बारम्बार अनुरोध किया था।"

यह कह कर प्रेमानन्द के कान के पास मुख लेजा कर उसने धीरे धीरे दो एक बातें ज्यों ही कहीं, त्यों ही प्रेमानन्द चौंक कर रामकृष्ण के मुख की ओर ताकने लगे। किन्तु कुछ स्थिर न कर सके। तब पुरुष वेषधारी सत्यवती अपने स्वामी के गले से लिपट कर रोती हुई बोली, "नाथ! पहले अज्ञानता के कारण समय समय पर आपके सदनुष्ठान में बाधा दिया करती थी। कभी कभी आपका तिरस्कार भी करती थी। किन्तु विपत्ति में पड़कर समझ लिया कि आप सचमुच देवता हैं। इस समय छाया की तरह मैं आपका अनुकरण करूँगी। आपके सभी शुभ अनुष्ठानों में सहायता करूँगी। सभी कामों में सहानुभूति प्रकट करूँगी। इस चिर-अपराधिनी के पहले अपराधों को क्षमा करो।"

स्त्री को इस अवस्था में देखकर प्रेमानन्द के नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगी। प्रायः आध घण्टे तक सत्यवती स्वामी के गले को पकड़ कर खड़ी रही। दोनों निर्वाक् थे। किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकलती थी।

कुछ समय के बाद जगा के पास आने पर प्रेमानन्द ने सत्यवती से कहा, "तुम्हें पांडुया के जंगल में पहुँचा करके ही मुझे रंगपुर जाना होगा। किन्तु पैदल ही चलना होगा। मुझे डर लगता है कि तुम इतनी जल्दी २ चल सकोगी या नहीं!"

सत्यवती बोली—"नाथ! इस विषय में आप को चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। विपत्ति ने शरीर को भी खूब बलिष्ठ कर दिया है। मैं तीन दिन और तीन रात में यहाँ तक आई थी। पांडुया जंगल से रंगपुर तक जाने में विलम्ब न

होगा। रंगपुर के लोग पांडुया जंगल में आप के लिये घोड़े रख गये हैं। इसलिये रास्ते भर पैदल चलने में जो समय लगेगा, उसकी अपेक्षा थोड़े ही समय में पांडुया होकर रंगपुर पहुँच जायंगे। उनके साथ इसी समय चल कर मुलाक़ात न करने पर—जहाँ तक मुझे जान पड़ता है—फिर पिता पुत्र की भेट नहा हो सकेगी।"

इसके बाद प्रेमानन्द, उनके दूसरे चौदह साथी सत्यवती एवं जगा, सब लोग मिलकर मालदा की ओर चले। ये लोग दो दिन दोही रात्रि में पांडुया के जंगल में आ पहुँचे।

पचीसवां अध्याय

आसन्नकाल की चिन्ता

सत्यवती के कलकत्ता चले जाने पर कमलादेवी एवं रूपा प्राणपण से वृद्ध रामानन्द की सेवा-शुश्रूषा करने लगे। रामानन्द की परमायु प्रायः समाप्त हो चली थी। देवीसिंह के आदमियों के प्रहार से वे उसी दिन मर गये होते, किन्तु केवल स्वस्थ शरीर होने ही से आज तक वे जीवित बचे रहे।

रामानन्द इस समय केवल आशा-पथ की ओर ताक रहे थे। प्रत्येक क्षण रूपा एवं कमलादेवी से पूछते, "वह हमारे बच्चे को ले आई?" कुटी के पास किसी वृक्ष की पत्तियों के गिरने को भी पाँव की आहट समझ कर फ़ौरन रूपा को बाहर जाकर देख आने के लिये कहते कि 'कौन आ रहा है'। रूपा जिस समय बाहर से लौट कर कहता, "कोई नहीं है" उस

समय दीर्घ निश्वास छोड़कर बोलते "मैं देखता हूँ कि प्रेमानन्द से अब भेंट नहीं होगी।"

कमलादेवी बहुत सान्त्वना देती हुई बोलती "आप चिंता न करें, आपके साथ उनकी ज़रूर भेंट होगी।"

× × × ×

आज माघ मास की २४वीं तिथि है। रामानन्द को देवीसिंह के आदमियों से छुटकारा पाये २४ दिन हो गये। गत दिवस ही से उनके जीने की बिल्कुल आशा नहीं रह गयी थी। रूपा कल ही रामानन्द के गाँव गौड नगर को जाकर उनके कई आत्मीय लोगों को बुलाकर लाया। इनमें कई लोगों ने रामानन्द को इस अवस्था में उनके पैतृक वासस्थान को ले चलने का प्रस्ताव किया। किन्तु कमलादेवी उस प्रस्ताव से सहमत नहीं होती थी।

अभी तक रामानन्द में पूर्ण ज्ञान बना हुआ था। वे उपस्थित सब लोगों को सम्बोधित करके बोले—

"यदि मेरी मृत्यु के पहले बहू और प्रेमानन्द न पहुँच पावें तो उन्हें सैकड़ों चेष्टायें करके भी मेरे ऋण-परिशोध के लिये कहना जिसमें मेरी मृत्यु के बाद मेरे श्राद्ध के पहले ही ऋण-परिशोध हो जाय। क्योंकि ऋणावस्था में रहने पर किसी का श्राद्ध करने पर उसे श्राद्ध का फल नहीं मिलता। और मेरी भिक्षा की झोली में एक काग़ज़ का टुकड़ा रखा हुआ है। उस काग़ज़ पर जो बातें लिखी हुई हैं, उन्हें भी मेरे समाधि-स्तम्भ पर लिख देना होगा।"

रामानन्द की बात अभी ख़तम भी नहीं हुई थी कि कुटी के पास कई लोगों के पाँवों का शब्द सुनाई पड़ा। रूपा ने बाहर आकर देखा कि सत्यवती, प्रेमानन्द, जगा एवं अन्यान्य तेरह

चौदह आदमी कुटी की तरफ़ आ रहे हैं। वह तत्काल कुटी में प्रवेश करके बोला, "प्रेमानन्द ठाकुर पहुँच गये!"

रामानन्द इस बात को सुनकर आनन्द से पुलकित हो गये। आकस्मिक हर्ष से उन्हें कुछ उत्तेजना हो आई। उनमें उठने की शक्ति बिलकुल नहीं रह गई थी। किन्तु वे उठकर बैठने की चेष्टा करने लगे। रूपा ने इनके मन की बात समझ कर गोदी में लेकर उठाया। प्रेमानन्द एवं सत्यवती के गृह में प्रवेश करते ही रामानन्द गोस्वामी ने बाँह पसार कर उन्हें गोदी में लेने के लिये प्रयत्न किया। किन्तु उनमें हाथ उठाने की भी शक्ति नहीं थी। प्रेमानन्द ने उनके चरणों में प्रणाम करके, उनके दोनों पैरों को गोदी में ले लिया। सत्यवती पास में जाकर पीठ पर हाथ फेरने लगी।

इस समय घर के उपस्थित लोग अवाक् हो गये। किसी के मुँह से बात नहीं निकलती थी। पिता-पुत्र की आँखों से आँसू निकलते देखकर सभी आँसू बहाने लगे।

कुछ समय के बाद रामानन्द पहले से निस्तेज होने लगे। क्रमशः एक बारगी अचैतन्य हो गये। उनकी वाणी बन्द हो गई। तब प्रेमानन्द ने उनको रूपा की गोदी से अपनी गोदी में ले लिया। सत्यवती अञ्चल से हवा करने लगी। वायु करने के लिये कुटी में ताड़ की पत्ती तक नहीं थी।

प्रायः आध घण्टे के बाद रामानन्द को होश हुआ। किन्तु शरीर में ज़रा भी बल नहीं था। अत्यन्त कष्ट एवं भग्न स्वर में पुत्र एवं पुत्र-वधू से कहने लगे—"बच्चा, मैं ऋण-ग्रस्त की दशा में चला! ऋण-परिशोध के लिये क्या करोगे?"

सत्यवती नेत्रों में आँसू भर, रोती हुई बोली—"मैं आत्म-विक्रय कर के भी आपका ऋण चुकाऊँगी। मैं रानी भवानी

के घर दास्य वृत्ति अवलम्बन कर के आपको ऋण से मुक्त करूँगी।"

प्रेमानन्द ने स्त्री से पूछा—"किसके ऋणी हैं?"

सत्यवती बोलीं—'जीवन भर में एक बार छोड़कर और कभी एक रुपया कर्ज़ नहीं लिया था। दुर्भिक्ष के समय पूर्णिया की ब्रह्मोत्तर ज़मीन के लिये देवीसिंह ने खज़ाना तलब किया था! उस समय रानी भवानी के पास जाकर पचास हज़ार रुपये कर्ज़ लिये थे। इसके अतिरिक्त और कोई ऋण नहीं है।

रामानन्द ऋण की बात कहते ही पुनः अचैतन्य हो गये। प्रेमानन्द उस समय पिता को होश में लाने के लिये पुकारने लगे—दद्दा दद्दा।

कोई उत्तर नहीं।

"दद्दा! दद्दा! ऋण के लिये आप इतना कष्ट क्यों पा रहे हैं। मैं जिस तरह से हो सकेगा, आपको उऋण करूँगा।"

रामानन्द—(अत्यन्त क्षीण स्वर में) "किस तरह से—रुपये—क—हां—से—पा—ओ—गे?"

प्रेमानन्द—"मैं रंगपुर से लौट कर आते ही आपके ऋण को चुका दूँगा।"

रामानन्द—"ब—ड़ी—देरी—हो—गी—बार—ह—वर्ष—का—ऋ—ण—।"

सत्यवती—(रोती हुई) "पिता, मुझे छोड़ कर कहाँ चले? तुम्हारे स्वर्ग चले जाने पर मैं एक मुहूर्त की भी देरी न करके तुम्हारे ऋण-परिशोध के लिये राजशाही चली जाऊँगी। मैं भवानी के घर दासी बन कर तुम्हारे ऋण को चुकाऊँगी।"

रामानन्द—"ऋ—णी—को—स्व—र्ग—न—हीं।"

प्रेमानन्द—"ऋण की चिन्ता आप छोड़ दें। जिस तरह से होगा मैं ऋण को चुकाऊँगा।"

रामानन्द—"व—ह—का—ग़ज़—"

प्रेमानन्द एवं सत्यवती ने रामानन्द की इस बात का कुछ अर्थ नहीं समझा। तब कमलादेवी बोली,—"कुछ ही देर हुए इन्होंने कहा था कि मेरी झोली में एक काग़ज़ है। उस काग़ज़ पर जो बातें लिखी हुई हैं, उन्हें ही मेरे समाधि-स्तम्भ पर लिख देना।"

रामानन्द की भिक्षा की झोली को सत्यवती प्राणनगर के जंगल से भागते समय साथ में लेती आई थी। उसी झोली में से एक पीले रंग का काग़ज़ का टुकड़ा मिला। प्रेमानन्द ने उस काग़ज़ को पढ़ कर देखा। उसमें यह लिखा हुआ थाः—

"पापात्मा दुर्म्मति रामानन्द गोस्वामी ने आत्म-रक्षार्थ जिस पथ का अवलम्बन किया था, वह केवल आत्म-विनाश का पथ है। समाज के अत्याचार-पीड़ित लोगों को अत्याचारियों के निष्ठुराचरण से रक्षा करने के निमित्त बिना आत्मोत्सर्ग किये कोई भी संसार में आत्म-रक्षा नहीं कर सकता। यदि कोई आत्म-रक्षा करने की इच्छा करे तो वह रामानन्द के सुपुत्र प्रेमानन्द की तरह समाज-व्याप्त पाप एवं अत्याचार के साथ संग्राम करने को तैयार हो जावे। दुर्मति रामानन्द गोस्वामी के दान, धर्म, सदाव्रत एवं अतिथि शाला आदि कुछ भी वर्त्तमान अत्याचार से उत्पन्न होने वाली इस धधकती हुई आग से उनकी रक्षा नहीं कर सके। मूढ़-मति पापात्मा रामानन्द की अन्तिम घड़ी की इस दुरवस्था का इतिहास पढ़ कर के भी यदि तुम में ज्ञान का उदय न हो, तुम्हारी निन्द्रा

भंग न हो, तुम्हारा मोहान्धकार दूर न हो, तब तुम में निश्चय रूप से मनुष्यात्मा नहीं है। तुम रामानन्द की तरह भ्रमजाल में पड़े हुए हो। रामानन्द की तरह खूब कष्ट भोगोगे।''

प्रेमानन्द के इस कागज़ के पढ़ते ही सत्यवती रोती हुई बोली,—"मेरे ससुर पुण्यात्मा थे, धार्मिक थे। मैं अपने ससुर के समाधि-स्तम्भ पर 'पापात्मा' 'दुर्म्मति' आदि शब्द कभी नहीं लिखने दूँगी।"

तब प्रेमानन्द ने पापात्मा शब्द काट कर, वहाँ पर 'पुण्यात्मा' शब्द 'दुर्म्मति' शब्द के जगह पर "सदाचारी" एवं 'मूढ़-मति' के स्थान पर 'परम वैष्णव' शब्द रख दिये।

इसके बाद रामानन्द की साँस घन घन करने लगी। उनमें और बातचीत करने की सामर्थ्य न रही। सत्यवती उनके कान के पास मुँह ले जाकर 'राम नाम' कहने लगी। पुत्र और पतोहू पर अन्तिम दृष्टि डाल कर परम वैष्णव रामानन्द ने आँखें मूँद लीं। इस घोर अत्याचार से परिपूर्ण नरक के समान वंगदेश को त्याग कर वैष्णव श्रेष्ठ रामानन्द स्वर्ग को सिधारे।

मृत्यु के बाद प्रेमानन्द सत्यवती से बोले, 'मैं अभी रंगपुर चला जाऊँगा, पिता की अन्त्येष्टि क्रिया होने तक भी नहीं ठहर सकता। मेरे ही उत्तेजना दिलाने से रंगपुर की प्रजा संग्राम के लिये अग्रसर हुई थी। प्राण विसर्जन करके भी उनके मंगल की कामना करना मेरा परम धर्म है। तुम गत १२ वर्षों से पिता की सेवा शुश्रुषा करती रही हो। धन्य हो तुम! पिता के मुख पर अग्नि देना तथा श्राद्धादि कर्म भी तुम्हीं करोगी। तुम और मैं एक अंग, एक आत्मा हैं। तुम्हारे ही श्राद्ध करने से वे मुक्ति-लाभ करेंगे। मैं तो कृतघ्न संतान हूँ। मेरे जीवित रहते हुए गत १२ वर्षों से मेरे पिता ने जो

कष्ट भोगे हैं, उसका दुःख मेरे हृदय से कभी दूर नहीं होगा। उपस्थित आत्मीय स्वजनों के साथ पिता की मृतदेह लेकर तुम इसी समय गौड़ को चली जाओ। मेरे पैतृक गृह में मेरी माता के समाधि-स्तम्भ के दक्षिण में पिता का समाधि-क्षेत्र प्रस्तुत कराना। एवं शीघ्र ही समाधिस्तम्भ बनवा कर के इस कागज़ में लिखी हुई बात को उस पर लिखवा देना।"

यह कह कर प्रेमानन्द रंगपुर की ओर चले गये। इधर रामानन्द की मृतदेह के साथ साथ सत्यवती, कमलादेवी, रूपा, जगा गौड़ को चले। रामानन्द के आत्मीय ब्राह्मण लोग मृतदेह को कन्धे पर लेकर चले।

अन्त्येष्टि क्रिया हो जाने पर सत्यवती ने रामानन्द के समाधिस्तम्भ पर यों लिखवाया,—

समाधिस्तम्भ

पुण्यात्मा सदाचारी रामानन्द गोस्वामी ने आत्म-रक्षार्थ जिस पथ का अवलम्बन किया था वह केवल आत्म-विनाश का मार्ग था। समाजस्थ अत्याचार-निपीड़ित लोगों को अत्याचारियों के निष्ठुराचरण से रक्षा करने के लिये आत्मोत्सर्ग न करने पर कोई भी इस संसार में आत्मरक्षा नहीं कर सकता। यदि कोई आत्म-रक्षा करने की इच्छा करे, तो वह रामानन्द के सुपुत्र प्रेमानन्द की तरह समाज-व्याप्त पाप और अत्याचार के साथ संग्राम करने के लिये प्रस्तुत हो जाय।

धर्मात्मा रामानन्द गोस्वामी का दान, धर्म, सदाव्रत एवं अतिथिशाला आदि कुछ भी उन्हें वर्तमान समाज-व्याप्त अत्याचारानल-सम्भूत दावाग्नि से रक्षा न कर सका।

परमवैष्णव रामानन्द के अन्तिम काल की इस दुरवस्था के

इतिहास को पढ़कर भी यदि तुम्हारी नींद भंग नहीं होगी, तुम में ज्ञान का उदय न होगा, तुम्हारा मोहान्धकार दूर न होगा, तो निश्चय ही तुम में मनुष्यात्मा नहीं, रामानन्द की तरह तुम भी भ्रम जाल में पड़े हो। तुम भी रामानन्द की तरह अत्यंत कष्ट भोगोगे।

११८९ साल का २४ वाँ माघ, जनवरी सन् १७८३ ई० को
सत्यवती द्वारा प्रतिष्ठित

छब्बीसवाँ अध्याय

ऋणमुक्त

रामानन्द के समाधि-स्तम्भ के स्थापित हो जाने पर सत्यवती श्वसुर के ऋण-परिशोध का उपाय का सोचने लगी। कमलादेवी से बहुत परामर्श करने के बाद उसने यह स्थिर किया कि ऋण के बदले में श्वसुर के पैतृक गृह को रानी भवानी के नाम कबाला कर दिया जाय। उस घर से वे लोग अभीतक बेदख़ल नहीं थे। किन्तु उस गृह के मूल्य द्वारा यदि समग्र ऋण न चुकाया जा सके, तो रामानन्द के ऋण-परिशोध न होने तक मैं (सत्यवती) रानी भवानी के गृह में दासी होकर रहूँ।

मन ही मन इस प्रकार स्थिर करके सत्यवती रूपा को साथ लेकर नाटोर को चलीं। जगा एवं कमला देवी उनके लौटने तक ग्रालदा के गृह में वास करने लगे।

सत्यवती दो ही तीन दिन के बीच में ही नाटोर पहुँच गईं और रानी भवानी के साथ साक्षात् करने को चेष्टा करने

लगी। उनके पास पहनने को एक फटा पुराना वस्त्र था। इस प्रकार कंगालिन के वेश में राज महल के द्वार पर उपस्थित होने पर; दरबानों के द्वारा अपमानित होने एवं पीटे जाने का भी डर था। इसी आशंका से उन्होंने पास की किसी स्त्री के घर में आश्रय ग्रहण किया। बाद में उसी स्त्री के द्वारा रानी भवानी के निकट ख़बर भेजी।

रामानन्द गोस्वामी का नाम रानी भवानी के लिये अपरिचित नहीं था। रामानन्द गोस्वामी पर रानी भवानी विशेष श्रद्धा रखती थीं। इसलिये यह सुनकर कि रामानन्द की पुत्र-वधू विपत्ति में पड़कर मुझ से मुलाक़ात करने को आई है, शीघ्र ही उन्होंने उन्हें अपने घर में लाने के लिये एक पालकी एवं तीन चार दासियों को भेजा। सत्यवती को कंगालिन के वेश में देख कर इनकी भेजी हुई दासियों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

सत्यवती मालदा से पैदल ही नाटोर तक आई थीं। उन्हें पालकी की कोई वैसी ज़रूरत न थी। किन्तु रानी असन्तुष्ट होंगी, इसी डर से इच्छा न रहते हुए भी पालकी पर चढ़ कर राजमहल के अन्तःपुर में प्रवेश किया। रानी ने उन्हें स्नेह एवं आदरपूर्वक बिठाया।

रानी भवानी ने उन्हें जीर्ण मलिन वस्त्र पहना हुआ देखकर उनकी वर्तमान दुरवस्था का कारण पूछा। तब सत्यवती ने सन् १७७१ ई० में प्रेमानन्द के देवीसिंह के आदमियों द्वारा पकड़े जाने से लेकर विगत चौदह वर्ष तक जिस प्रकार के कष्ट एवं यन्त्रणाएँ भोगी थीं, उन सबको एक, एक करके बयान किया। परम दयावती कोमल-हृदया रानी भवानी उनकी इस विपत्ति की कथा को सुनकर हाहाकार करके रोने लगीं।

अन्तमें जिस उद्देश्य से सत्यवती यहाँ पर आई थीं, उसके कहने पर रानी क्रोधपूर्वक बोलीं—

"बेटी! क्या रामानन्द गोस्वामी मुझे चण्डालिनी नहीं समझते थे?"

सत्यवती—"आपको वे परमाराध्य देव-कन्या जानते थे।"

रानी—"यदि ऐसी बात होती तो इस दुरवस्था में भी तुम ऋण-परिशोध के लिये इतनी व्यस्त न होतीं। विशेष करके मैंने तो रामानन्द गोस्वामी से इन रुपयों को पुनः लेने का कभी विचार तक नहीं किया था।"

सत्यवती—उन्होंने तो लौटाने के हेतु से ही आपके दिये हुए रुपयों को ग्रहण किया था। यदि आप ये रुपये नहीं लेंगी, तो वे चिरकाल के लिये ऋणी बने रहेंगे।

रानी—यदि मैं दान किये हुए रुपयों को ग्रहण करूँगी तो मुझे भी धर्म-भ्रष्ट होना पड़ेगा।

सत्यवती—क्या आपने दान करके उन्हें रुपये दिये थे?

रानी—बेटी, दुर्भिक्ष के साल बहुत से जमीन्दारों को लगान अदा करने की शक्ति न थी। अर्थ लोलुप कम्पनी के लोगों ने ज़मीन्दारों से देय लगान को तलब किया। ज़मीन्दारों को धमकाने भी लगे कि यदि वे लगान अदा न करेंगे, तो उन्हें अपनी ज़मीन्दारी से हाथ धोने पड़ेंगे। उस समय अपनी ज़मीन्दारी का लगान न दे करके भी, मैंने किसी को बीस हज़ार, किसी को पचीस हज़ार रुपये दिये। इसीसे बहुत से ज़मीन्दारों की ज़मीन्दारी बच गई थी। किन्तु मेरे निजी बाहिरबन्द परगने की मालगुज़ारी न दी जा सकी। कम्पनी ने मुझे उस परगने से बेदख़ल कर दिया। *मुझे उस एक परगने

* देखो परिशिष्ट नम्बर १

के चले जाने से कुछ भी कष्ट न हुआ। किन्तु बहुत से ग़रीब ज़मीन्दारों एवं ब्रह्मस्व ज़मीन के मालिकों ने अपनी अपनी पैतृक सम्पत्ति की रक्षा की, इससे मुझे विशेष प्रसन्नता हुई। उस वर्ष जिन जिन लोगों को रुपये दिये थे उनमें से किसी से भी उन रुपयों को मैं नहीं लेती। रामानन्द गोस्वामी को रुपये देते समय मैंने यह ख़याल तक नहीं किया था कि उनसे इन रुपयों को लूँगी। इसलिए वे किसी प्रकार भी मेरे निकट ऋणी नहीं रहे।

सत्यवती—उन्होंने कहा था कि मैंने कागज लिख करके रुपये लिये थे। इन रुपयों को उन्होंने ऋण-स्वरूप अवश्य लिया था।

रानी—मैंने उनसे कभी भी काग़ज़ लिख देने को नहीं कहा था। उन्होंने जब काग़ज़ लिख देने को कहा तो मैंने बारम्बार निषेध किया। किन्तु उनकी सनक तो तुम लोगों से छिपी हुई नहीं है। काग़ज़ न लिखने पर उन्होंने रुपये लेने से इन्कार किया और चलने को भी उद्यत हुए तब अन्त में मैंने कहा, आप की जो इच्छा हो, लिख दें। उन्होंने इस प्रकार का काग़ज़ लिख दिया—"धर्म को साक्षी रख कर आप से ५०,००० रुपये कर्ज़ लेता हूँ।"

सत्यवती—तब तो उन्होंने ऋण समझ करके रुपये लिये ही थे। उनके इस ऋण के परिशोधार्थ मैं उनके निजी गृह को कवाला कर दूँगी और मैं स्वयं परिचारिका रूप में आप के गृह में रहूँगी।

रानी—इस विपत्ति के समय इच्छा होने पर, यहीं रहो। मैं तुम्हें अपनी कन्या की तरह अपने घर में रखूँगी। मेरी पुत्रवधू तुम्हारी सेवा शुश्रूषा करेगी।

सत्यवती—मृत्यु-शैया पर पड़े हुए अपने ससुर के सामने मैंने स्वीकार किया है कि, उनके ऋण को मैं चुकाऊँगी। उनके ऋण को न चुकाने पर मैं प्रतिज्ञा से च्युत हूँगी।

रानी—गोस्वामी ने ऋण लिया होगा तभी न तुम उसका परिशोध करोगी? उन्होंने धर्म की साक्षी दे करके मुझसे रुपये लिये थे। मैं भी धर्म की साक्षी देकर के कहती हूँ कि मैंने कभी उनको ऋण-स्वरूप रुपये नहीं दिये थे। वे मेरे निकट किसी दशा में भी ऋणी नहीं हैं। यदि तुम इतने पर भी उस रुपये को ऋण समझती हो तो मैं पुनः धर्म की साक्षी देकर के कहती हूँ कि रामानन्द गोस्वामी को मैं ऋण से मुक्त करती हूँ।

सत्यवती—क्या बिना रुपये पाये ही ऋण-भार से मुक्त कर दिया?

रानी—(मुस्कराकर) जिनको परम पुण्यवती पुत्र-वधू ने अपने पुण्य-बल से अपने श्वसुर एवं स्वामी को कारागार से मुक्त किया था, उस पुत्र-वधू की पद-धूलि के मूल्य के बदले में ऋण-भार से रामानन्द गोस्वामी को मुक्त कर दिया।

रानी भवानी को स्नेह से भरी हुई इन बातों को सुनकर सत्यवती की आँखों से आनन्दाश्रु निकलने लगे। रानी के अनुरोध से वे दो तीन दिन वहीं पर रहीं। रानी भवानी स्नेह के साथ अपनी पुत्र-वधू रानी सर्वानी के साथ उन्हें एक ही आसन पर बिठातीं, साथ ही भोजन करातीं। पुत्र-वधू ही की तरह उनपर स्नेह करतीं। तीन दिन के बाद बहुत सा धन-रत्न दे करके उन्होंने सत्यवती को पालकी पर चढ़ा मालदा भेज दिया।

सत्ताईसवाँ अध्याय

मुग़लहाट का युद्ध

पितृ-वियोग के बाद प्रेमानन्द एक मुहूर्त की भी देरी न करके घोड़े पर चढकर रंगपुर की ओर चल पड़े। रंगपुर की अत्याचार-पीड़ित प्रजा ने ७वीं माघ से ही देवीसिंह के लोगों से युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीन रङ्गपुर में तथा दिनाजपुर में जितने बरकन्दाज़ एवं सिपाही थे, वे सभी प्रेमानन्द के रङ्गपुर पहुँचने के पहले ही प्रजा द्वारा मारे जा चुके थे।

रङ्गपुर के कलक्टर गुडलैंड साहब ने इस समय अनन्योपाय होकर लेफ़्टिनेण्ट मैकडोनाल्ड साहब को सैन्याध्यक्ष के पद पर नियुक्त किया। किन्तु प्रजा स्थान स्थान पर मुक़बला करती थी। उन्हें परास्त करना लेफ़्टिनेण्ट मैकडोनाल्ड साहब के लिये बड़ा दुःसाध्य हो गया। तब चतुर गुडलैंड ने पाँच नम्बर का हुक्मनामा जारी किया। *इस हुक्मनामे के बल से लेफ़्टिनेण्ट साहब जिस किसी को पकड़ते उसे जान से मार डालते। और जिस ग्राम में जाते, उस गाँव के सारे किसानों एवं मज़दूरों के घरों को जलाना आरम्भ कर देते। प्रेमानन्द के परामर्श से जिन गावों की प्रजा दलबद्ध हो गयी थी, उनका तो कुछ भी नहीं हुआ, किन्तु अनेकानेक निरपराध किसानों एवं मज़दूरों की जानें गईं एवं उनके घरद्वार भस्मी-भूत हो गये।

प्रेमानन्द ने गन्तव्य स्थान को जाते समय देख लिया कि रङ्गपुर का एक एक गाँव शून्य हो रहा है। किसानों एवं मज़-

---

* देखो परिशिष्ट नं० १८

दूरों के घरों के नामोनिशान तक नहीं रह गये। गाँव के जिन सब स्थानों में घर वग़ैरह थे, इस समय वहाँ पर स्तूपाकार भस्म राशि पड़ी हुई थी। यदि वे पकड़ कर कलकत्ता न भेजे गये होते तो कभी ऐसी अवस्था न होती। व्यर्थ ही लोगों के प्राण लेने के लिये उन्होंने किसी को परामर्श नहीं दिया था। उन्होंने युद्धार्थी लोगों को साफ़ साफ़ कह दिया था कि जो अपने अपने स्वार्थ के अनुरोध से, राज्यलाभ के उद्देश्य से तथा पद-प्रभुत्व लाभ करने के अभिप्राय से युद्ध करते हैं, वे आततायियों की भाँति हज़ार २ नर-हत्यायें करके अपने हाथों को कलंकित करते हैं, मानव-जाति का घोर अनिष्ट साधन करते हैं, एवं अन्त में ईश्वर के निकट अपराधी होते हैं। किन्तु पक्षान्तर में जब विशेष लोगों की स्वाधीनता के रक्षार्थ एवं देशव्यापी अत्याचार को रोक कर समस्त मानव जाति के उपकारार्थ जो अस्त्र धारण करते हैं, वे इच्छा करके कभी नर-हत्या नहीं करते, समस्त मानव जाति की मंगल-साधना ही उनका एक मात्र उद्देश्य होता है; इसलिये जिस परिमाण में बल-प्रयोग करके अत्याचार रोका जा सके, उससे अधिक बल प्रयोग करके कभी भी पशुवत् आचरण न करना।

किन्तु अशिक्षित प्रजागण उनके इन उपदेशों के मर्म को समझने में बिल्कुल असमर्थ थे। इसलिए एक ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लोग जिस प्रकार पशुवत् आचरण करके अनेकानेक निरपराध लोगों के प्राण-विनाश कर रहे थे, दूसरी ओर उसी प्रकार रङ्गपुर की प्रजा भी वैसे ही कम्पनी के बरकन्दाज़ों एवं सिपाही लोगों के प्राण लेने लगी।

प्रेमानन्द ने रङ्गपुर पहुँचकर मुग़लहाट के निकटवर्ती स्थान में नूरुल मुहम्मद एवं दयाराम के साथ साक्षात् किया। नूरुल

मुहम्मद नवाब की उपाधि धारण करके प्रजा के सेनापति हुए थे। दयाराम नुरुल मुहम्मद के दीवान होकर देश की अन्यान्य प्रजा से युद्ध का ख़र्च वसूल करते थे।

ये लोग प्रेमानन्द को पाकर अत्यन्त आनंदित हुए। किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लोगों ने अकस्मात् आ करके इन लोगों पर आक्रमण कर दिया। नूरुल मुहम्मद के पक्ष के अधिकांश लोग पाट ग्राम में थे। इसी समय कलक्टर गुडलैंड के साथ इनकी संधि का प्रस्ताव चल रहा था। इसलिए मुग़लहाट में पचास से अधिक लोग नहीं थे। किन्तु ज्योंही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सैनिक संग्रामार्थ इन लोगों के पास पहुँचे त्योंही ये लोग भी निःशङ्क चित्त से संग्राम-क्षेत्र में अग्रसर हुए। केवल थोड़े से अस्त्र शस्त्र लेकर प्रायः चार घण्टे तक युद्ध किया। लोगों की संख्या न्यून होने से अन्त में इन्हें परास्त होना पड़ा। ये रण-क्षेत्र से भागकर अनायास ही आत्म-रक्षा कर सकते थे, किन्तु यह समझ करके कि संग्राम-क्षेत्र से भाग जाने की अपेक्षा सम्मुख समर में प्राण-विसर्जन करना ही श्रेयस्कर है, इनमें से एक आदमी भी नहीं भागा। दयाराम ने इस युद्ध में प्राण विसर्जन किया, नूरुल मुहम्मद ज़ख़्मी हुए। इसके कई दिन बाद इनकी मृत्यु भी हो गई। प्रेमानन्द अन्यान्य लोगों के साथ सायंकाल तक युद्ध करते रहे। दोनों पक्ष के अनेकों लोग हताहत हुए। इसलिए सन्ध्या के बाद अन्धकार होते ही युद्ध बन्द हुआ। प्रेमानन्द आठ आदमियों को साथ लेकर पाट ग्राम चले गये।

पाटग्राम के सैनिक मुग़लहाट की दुर्घटना का हाल सुनकर अत्यन्त दुःखित हुए। किन्तु प्रेमानन्द उन्हें समझाते हुए बोले—

"भाई, जय पराजय दोनों हम लोगों के लिये समान है। हम लोग राज्य-लाभ के निमित्त युद्ध करने नहीं आये हैं। देश में फैले हुए अत्याचार को निवारण करके समस्त मानव-जाति का उपकार साधन करना ही हम लोगों का एकमात्र उद्देश्य है। हम लोगों के बिल्कुल पराजित होने पर ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी देवीसिंह के समान नर-पिशाच को लगान वसूली का भार देकर प्रजा के ऊपर और अत्याचार करने का कभी साहस नहीं करेगी। जिस अत्याचार के निवारणार्थ युद्धक्षेत्र में आये थे वह अत्याचार दूर हो गया। इसलिए हम लोगों को दुःखी होने का कारण नहीं दिखाई पड़ता। किन्तु यदि हम लोग संग्राम के लिए प्रस्तुत नहीं होते, तो इस अत्याचार का स्रोत चिरकाल तक प्रवाहित होता। चिरकाल तक देवीसिंह के कारागार में सैकड़ों प्रजाओं के प्राण नष्ट होते, सैकड़ों कुलों का धर्म भी नष्ट होता।"

"इस भयानक अत्याचार के निवारणार्थ जिन्होंने संग्राम-क्षेत्र में प्राण विसर्जित किये हैं, इतिहास में उनके नाम स्वर्णाक्षरों में लिखे जायेंगे। भावी वंशावली उनको देवता समझकर पूजा करेगी। समस्त मानव-जाति के उपकारार्थ जिन्होंने इस अनित्य देह का विसर्ज्जन किया, वे वास्तव में देवता हैं।"

अट्ठाईसवाँ अध्याय

पाटग्राम का कलंक

प्रेमानन्द ने पाट ग्राम पहुँच कर सोचा कि मुग़ल हाट के युद्ध के बाद और युद्ध न होगा। उनके ऐसा सोचने का विशेष कारण था। कलक्टर गुडलैंड साहब परवाने के द्वारा इस बात को फैलाने लगे कि प्रजा के अस्त्र शस्त्र परित्याग देने पर भविष्य में खजाना वसूली के सम्बन्ध में उन पर कोई अत्याचार न होगा; ११८७ साल में जिस निर्ख से उन्होंने ख़ज़ाना दिया था, उसकी अपेक्षा अधिक निर्ख से उनके पास से कोई खज़ाना नहीं लिया जायगा और अबवाब या किसी की नाजायज़ रक़म भी उन्हें न देनी पड़ेगी।

इन परवानों को जारी होते देखकर प्रेमानन्द ने प्रायः सारी प्रजा को बिदा कर दिया। केवल अस्सी नव्वे आदमी उनके साथ पाटग्राम में रह गये।

किन्तु मुग़लहाट के युद्ध के दो दिन के बाद १७८३ ई० के २२ वीं फरवरी को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सिपाही वस्त्रों के नीचे अस्त्रशस्त्र छिपा कर बरकन्दाज़ों के वेश में इनके पास आने लगे। प्रेमानन्द एवं इनके पक्ष के लोगों ने सोचा कि ये लोग गुडलैंड साहब का परवाना लेकर आ रहे हैं।* किन्तु क्रमशः एक एक दो दो करके बहुत लोग आकर इकट्ठे हो गये।

प्रेमानन्द के पक्ष के लोगों के पास उस समय अस्त्रशस्त्र कुछ भी नहीं थे। सिपाहियों ने बरकन्दाज़ों के वेश में आकर

* देखो परिशिष्ट नम्बर १६।

इन पर आक्रमण कर दिया। प्रेमानन्द ने अन्यान्य सब लोगों को भाग जाने के लिये कह कर स्वयं संग्राम-क्षेत्र में नूरुल-मुहम्मद की तरह प्राण-विसर्जन करना स्थिर कर लिया। वे अपने अनुगत लोगों से बोले, "तुम लोग भाग कर जीवन रक्षा करो, किन्तु मैं भाग कर के कभी भी आत्मरक्षा नहीं करूंगा।"

उनके पक्ष के सभी लोग एक स्वर से बोले—"हम लोग अपने नेता को छोड़ कर कभी आत्म-रक्षा न करेंगे।"

यह कह कर वे उन्हें घेर कर खड़े हो गये। वे सभी कहने लगे, "देवीसिंह के कारागार ही में तो पच मरते। किन्तु जिसके सत् परामर्श एवं उपदेश को ग्रहण करने से हम लोगों के पुत्र पौत्र देवीसिंह के अत्याचार से छुटकारा पावेंगे, जिस के उपदेश-ग्रहण करने से भविष्य में हम लोगों की माता, स्त्री, बहिन एवं कन्या का कभी धर्म-भ्रष्ट होना न पड़ेगा, आज उसे अकेले संग्राम-क्षेत्र में छोड़ कर हम लोग कभी भाग कर नहीं जा सकते।"

सभी प्रेमानन्द को घेर कर खड़े हो गये। प्रेमानन्द की जीवन-रक्षा करने के लिये सभी अपने अपने जीवन को विसर्जन करने लगे।

इधर विपक्षी दल ने गोला चला कर के एक एक करके पांच मिनट में प्रायः ६० आदमियों को धराशायी कर दिया। जिस समय केवल ३० आदमी अवशेष रह गये, उस समय प्रेमानन्द ने उन्हें भाग करके आत्मरक्षा करने के लिये कहा, किन्तु इन्हें छोड़ कर उन लोगों ने भाग जाने से इन्कार कर दिया।

उस समय प्रेमानन्द ने सोचा कि व्यर्थ मेरे लिये ये क्यों प्राण विसर्जन करें। विशेषतः विपक्षदल जब छद्म वेश में

आया है, ऐसी दशा में भाग कर ग्राम-रक्षा करने में कोई दोष नहीं; विपक्ष दल आततायी की भांति काम कर रहा है। अन्त में वे अवशेष ३० आदमियों को साथ में लेकर भाग चले। पाटग्राम का यह युद्ध बंगाल के इतिहास में 'पाटग्राम का कलंक' के नाम से प्रसिद्ध है।

पाटग्राम के युद्ध में जो कई लोग मारे गये थे, उनको छोड़ कर प्रेमानन्द के पक्ष के अन्य एक आदमी को भी सिपाही तथा जमादर लोग न पकड़ सके। किन्तु विद्रोही प्रजा को पकड़ कर के ले जाने का हुक्म था। इसलिये कम्पनी के जमादार, बरकन्दाज़ एवं सिपाही के दल के दल चारों तरफ़ छूटे। सब गाँव शून्य हो गये थे। लोग कहीं न मिलते थे। तीन मज़दूर पाटग्राम के रास्ते से सन्ध्या समय घर को जा रहे थे। शेख मुहम्मद जमादार ने उन्हें पकड़ करके साथ में ले लिया। ॐ

दूसरा जमादार मिरज़ा मुहम्मद ताहर दूसरी ओर गया था। वह बहुत चेष्टा करने पर भी एक आदमी को भी न पा सका था। किन्तु रास्ते के बगल में एक वृद्धा चाण्डालिनी का २२ वर्ष की अवस्था का पुत्र गत दो वर्ष से ज्वर एवं प्लीहा रोग से जर्जरित हो रहा था। मिरज़ा मुहम्मद ताहर किसी दूसरे को न पाकर के उसी चाण्डालिनी के पुत्र को लेकर चला। किन्तु प्लीहा बढ़ जाने से उसके पेट का भार प्रायः आध मन का हो गया था। वह पैदल नहीं जा सकता था।

चाण्डालिनी आकर के रोती हुई बोला,—"बाबू लोग, यदि मेरे बच्चे को ले जाना ही चाहते हों, तो गोदी में करके ले

ॐ देखो परिशिष्ट नं० २०।

जाओ। मेरे बच्चे का शरीर अस्वस्थ है, सबेरे कुछ दही चिउरा खाने को देना।

ताहर महम्मद आख़िर क्या करते। जीते मनुष्य को पकड़ कर लाने का हुक्म था। मरे मनुष्य को ले जाने से कोई लाभ न था। इसलिये आखिर में उसी चाण्डालिनी के पुत्र को कन्धे पर धरके ले चलने के लिए दो बरकन्दाज़ों को हुक्म दिया। वे इस प्लीहा रोगग्रस्त आदमी को कन्धे पर करके चले।

इसी प्रकार तिलकचंद आदि अन्यान्य जमादारों में से जिधर जो गये थे, उनमें कोई एक अन्धे को, कोई किसी लँगड़े को पकड़ कर विशेष समारोह के साथ चले।

सैनिकों ने युद्ध में विजय लाभ किया। उस पर जमादारों एवं बरकन्दाज़ों ने करीब २२ लोगों को—जो जीते हुए बचे थे, पकड़ कर लाये थे। इससे जमादारों के आनंद की और सीमा नहीं थी। सबों ने मन ही मन स्थिर कर लिया कि गुडलैंड साहब से इनाम इकराम मांगेंगे।

उन्तीसवाँ अध्याय

पीटरसन साहब

कुकृत्य, दुराचरण एवं अत्याचार करके कोई उसे छिपा नहीं सकता। ईश्वर के अखण्ड नियम के अनुसार काल पाकर सभी प्रकट हो जाता है। लोग बहुत लुका छिपा-कर नर-हत्या करते हैं, किन्तु वह कभी छिपी नहीं रहती।

देवीसिंह, गंगा गोविन्दसिंह, गुडलैंड एवं हेस्टिंग्स ने रंगपुर, दिनाजपुर के अत्याचार को छिपाने के लिये कितनी ही चेष्टायें कीं, किन्तु समय पर सभी प्रकट हो गईं। कारागार

वासिनी अनाथा रमणियों का क्रन्दन समुद्रपार होकर इंगलैंड पहुँचा। शान्त, सुशील, लज्जावती वंग महिलाओं ने अतिक्षीण स्वर से कारागार में बैठ कर जो क्रन्दन किये थे, वही दुर्बल क्रन्दन-ध्वनि, वही आर्त्तनाद, समय पर महात्मा एडमण्ड बर्क के सुगंभीर कण्ठ-ध्वनि से प्रकाशित होकर जगद्व्याप्त हो पड़ा; करुण-रस से भरी हुई, वह करुणध्वनि जीती भाषा में—इतिहास—में उल्लिखित होकर भावी वंश के कानों तक पहुँचती है।

देवीसिंह के निष्ठुराचरण एवं अत्याचार के कारण प्रजा के विद्रोही हो जाने पर, कलकत्ता की कौंसिल ने इस विद्रोह के मूल कारण के अनुसन्धानार्थ पीटरसन साहब को रंगपुर भेजा। पीटरसन साहब को नियुक्त करते समय हेस्टिंग्स ने सोचा कि पीटरसन साहब पूर्व घटना के सम्बन्ध में कोई जांच-पड़ताल नहीं करेंगे। विद्रोही होकर प्रजा ने जिस प्रकार के आचरण किये हैं, उसके सम्बन्ध में केवल रिपोर्ट करेंगे। किन्तु इस बार हेस्टिंग्स को लोक-निर्वाचन के सम्बन्ध में बड़ा भ्रम हुआ। पीटरसन को नियुक्त करके उन्हें अपनी इच्छानुसार लाभ न हुआ।

पाठकों की जानकारी के लिये संक्षेप में इस स्थान पर पीटरसन साहब का परिचय दिया जाता है।

इनके पिता एक बड़े ही धार्मिक व्यक्ति थे। पुत्र के भारतवर्ष में जाने की बात को सुनकर वे अत्यन्त भयभीत हुए। उन्हें ऐसा विश्वास हो गया था कि अंगरेज़ लोग भारतवर्ष जाते समय उत्तमाशा अन्तरीप तक पहुँचते ही धर्मपुस्तक बाइबिल को समुद्र में फेंक देते हैं। एवं बंबई के किनारे पर पहुँचते ही हाथ में तलवार लेकर जहाज़ से उतरते हैं।

इन अंगरेज़ों के कुत्सित दृष्टान्त से अपने पुत्र को बचाने के

अभिप्राय से, उन्होंने पीटरसन के कोट के ऊपर वाले पाकेट में एक प्रकार का बाइबिल रखकर पाकेट का मुँह बन्द कर दिया था। उन्होंने विचार किया था कि भारतवर्ष में पहुँच कर मेरा पुत्र भी अन्यान्य अंगरेज़ों की तरह बाइबिल का पाठ तो करेगा नहीं, किन्तु एक बाइबिल छाती के निकट रहने से हृदय स्थित विवेक एकदम लुप्त नहीं हो जायगा।

वृद्ध पीटरसन को यह आशा एकदम निष्फल नहीं हुई। उसके पुत्र युवक पीटरसन की छाती के निकट बाइबिल रहने से उसका विवेक बर्फ़ की नाईं गल नहीं गया। बाइबिल के कारण उसका विवेक नष्ट नहीं हुआ।

किन्तु वारेन हेस्टिंग्स ने मन ही मन सोचा कि गुडलैंड साहब एवं लार्किन साहब की तरह पीटरसन का ज्ञान भी गल गया है। इसीलिए उन्होंने रंगपुर की वर्त्तमान गड़बड़ का पता लगाने के लिये पीटरसन को रंगपुर भेजा।

पीटरसन ने रंगपुर पहुँचते ही जाँच करना आरंभ कर दिया। शेख़ मुहम्मद, मिरज़ा महम्मद ताहर एवं तिलकचन्द आदि जिन सब लोगों को विद्रोही कह कर के पकड़ कर लाये थे, उन्हें गुडलैंड साहब ने पीटरसन के पास भेज दिया। उन्होंने उन लोगों से ज़बानी इज़हार लेना आरंभ किया।

शेख़ महम्मद मुल्ला जिस चाण्डालिनी के प्लीहा रोगग्रस्त पुत्र को पकड़ कर लाया था, उसी पर सब से पहले पीटरसन साहब की दृष्टि पड़ी। उसका उदर अत्यन्त स्फीत था। इसलिए वह सहज ही लोगों की आँखों को आकर्षित करता था। पीटरसन के नाम पूछते ही वह बोला,—

"मैं अपना नाम नहीं जानता। मैं नीच क़ौम का हूँ।" तब महम्मद मुल्ला अग्रसर होकर बोला, "हजूर! इसका नाम

भोरकसा है।" पीटरसन ने पुनः पूछा,—"भोरकसा, तुमने लड़ाई की है?"

भोरकसा—हज़ूर मैं इस जगह पर नहीं आता था। तब बरकन्दाज़ों ने कहा कि दोनों समय दही-चिउरा खाने को मिलेगा। मैंने कहा—दोनों समय ही चिउरा मिलने पर तो चलूँगा, न मिलेगा, तो नहीं चलूँगा।

पीटरसन साहब इसकी अवस्था देखते ही अवाक् हो गये। पेट की प्लीहा के भार से वह आदमी चल नहीं सकता था। गुडलैंड के समान योग्य कलक्टर को छोड़ कर और कौन इस बात में विश्वास कर सकता था कि यह आदमी भी युद्ध करने गया था।

इसके बाद मिरज़ा महम्मद के लाये हुए आसामियों से पीटरसन ने उनके नाम पूछे। इनमें एक का नाम चूयापानि, दूसरे का नाम झबरू, तीसरे का नाम खिरकठ था।

ये तीनों आदमी पीटरसन के पास आते ही चिल्लाकर बोले,—"हज़ूर, जमादार हम तीनों आदमियों के सिर पर गठरी रख कर लिवा लाये। हम लोग लड़ाई नहीं करते।"

पीटरसन ने इनकी बातें सुन कर उन्हें छोड़ दिया!

अन्त में तिलकचन्द जमादार ने एक अन्धे एवं एक लँगड़े को उपस्थित कर के कहा, "हज़ूर, पाट ग्राम के युद्ध के समय इन लोगों की आँखें नष्ट हो गयीं। ये लोग बड़े दुष्ट हैं। इन्होंने भागने की चेष्टा भी की, किन्तु मैंने पीछे २ दौड़ कर इन्हें पकड़ लिया और इस दूसरे व्यक्ति ने नूरुल की कन्या से शादी की है। यह प्रधान विद्रोही का जामाता है।"

तिलकचन्द की बात सुनते ही अन्धा आदमी बोल उठा,

"धर्मावतार, पाटग्राम के युद्ध में मैं नहीं गया था। मेरे सात पुरुषों के भी आँखें न थीं।"

दूसरे व्यक्ति ने कहा,—"मैं नूरुल महम्मद का जामाता नहीं हूँ। मेरे सात पुरुषों ने भी शादी नहीं की थीं।"

आसामियों की इस प्रकार की अवस्था देख कर उन्होंने इन लोगों को भी छोड़ दिया एवं उपयुक्त प्रमाण पाने के लिये ज़मींन्दार लोगों को तलब किया। ज़मीन्दारों में प्रायः अधिकांश देश को छोड़ कर भाग गये थे। पीटरसन साहब ने उन लोगों को हाज़िर होने के लिये नोटिस दिया। किन्तु कोई ज़मीन्दार हाजिर नहीं हुए। केवल शिवचन्द चौधरी हाज़िर हुए। उन्होंने पीटरसन साहब को विद्रोह का असली कारण बतलाया। पीटरसन साहब के साथ कोई अमला नहीं था। इस कारण उस समय उनका ज़ुबानी इज़हार लिखा नहीं जा सका। पीटरसन ने शिवचन्द का इजहार लिख लेने के लिये गुडलैण्ड के पास भेज दिया। गुड़लैंड ने उनके इज़हार को न लिख कर उसे देवीसिंह के जिम्मे कर दिया। देवीसिंह ने शिवचन्द चौधरी के हाथ पांवों में लोहे की शृङ्खला बाँध करके उसे क़ैद कर रखा। शिवचन्द की दुरवस्था को देख कर और कोई आदमी इज़हार देने को हाज़िर न हुआ।

शिवचन्द ने पीटरसन साहब से कहा था कि देवीसिंह ने अधिक खज़ाना तलब करके प्रजा एवं ज़मीन्दार लोगों के ऊपर घोर अत्याचार किया था। इसीसे प्रजा विद्रोही हो गई।

तब पीटरसन साहब ने देवीसिंह से सन् ११८८ एवं ११८९ साल का जमा वसूली तलब किया। देवीसिंह ने बाध्य हो करके जमा वसूली दाखिल किया। किन्तु गुडलैंड साहब ने इस वसूली जमा की नकल रखने का बहाना करके पीटरसन साहब से

उन्हें वापस लेकर देवीसिंह को दे दिया। देवीसिंह ने उस जमा वसूली को पीटरसन साहब के यहाँ फिर दाख़िल नहीं किया। कलकत्ता आकर गंगा गोविन्दसिंह के निकट उसे दाखिल किया।*

इन सब विघ्नबाधाओं के होते हुए भी पीटरसन साहब की जांच से असली बात तो प्रकट हो ही गई। उन्होंने रिपोर्ट की कि देवीसिंह तथा गुडलैंड साहब के अत्याचार से ही विद्रोह हो रहा है। हेस्टिंग्स एवं गंगा गोविन्दसिंह इससे पीटरसन साहब पर बहुत बिगड़े; उन्हें मिथ्यावादी कह के बरख़ास्त किया एवं इस विषय की जाँच के लिये नया कमीशन नियुक्त किया।

नया कमीशन नियुक्त होकर रंगपुर आया। नूतन कमीशन के सामने पीटरसन साहब को आसामी की हैसियत से खड़ा होना पड़ा। किन्तु इस कमीशन की जाँच पाँच छः वर्ष में भी ख़तम नहीं हुई। सन् १७८४ ई० से १७८६ ई० तक कमीशन की जाँच चलती रही।

सद्विचार की आशा देकर लोगों की आंखों में धूल झोंकने की गरज़ से ही यह कमीशन नियुक्त हुआ था। कमीशन के मुक़र्रर होते ही लोगों में आशा का संचार हुआ। किन्तु इसका अंतिम फल "बह्वारम्भेलघुक्रिया" हुआ। इस कमीशन की अंतिम निष्पत्ति में अभी बहुत देरी है। अन्त में सन् १७८४ ई० के बाद गंगा गोविन्दसिंह आदि उपन्यास में उल्लिखित व्यक्तियों ने और जो २ काम किये, परवर्ती अध्याय में वे ही लिखे जायँगे। पाठक पाँच वर्ष बाद कमीशन की जांच का फल जान जायँगे।

---

* देखो परिशिष्ट न० १२

तीसवाँ अध्याय

शेष कुक्रिया

रंगपुर-विद्रोह के दो वर्ष बाद सन् १७८५ ई० के फरवरी मास में वारेन हेस्टिंग्स ने स्वदेश की यात्रा की। गंगा गोविन्दसिंह हेस्टिंग्स को जहाज़ पर चढ़ाने के निमित्त साथ में जहाज़ तक गये थे। एक दूसरे के मुख को देख कर आँसू गिराने लगे।

कुछ समय के बाद गंगा गोविन्दसिंह ने आँखों में आँसू भरे एवं रोते हुए हेस्टिंग्स से किञ्चित भूमि की भिक्षा माँगी। बंगाल देश की सारी ज़मीन हेस्टिंग्स को पैतृक सम्पत्ति थी। इसलिए गंगा गोविन्द के समान विश्वस्त नौकर को भूमि देना उन्होंने नितान्त आवश्यक कर्त्तव्य समझा, एवं दिनाजपुर के राजा की ज़मीन्दारी के अन्तर्गत सालवारी का परगना गंगा गोविन्दसिंह को दान स्वरूप दे दिया।

पाठकों को स्मरण होगा कि पहले ही दिनाजपुर के राजा की ज़मीन्दारी का कितना अंश देवीसिंह ने छल कर के गंगा गोविन्दसिंह के नाम कवाला कर दिया था। ज़मीन्दारी के जिस अंश के सम्बन्ध में वह जाली कवाला लिखा गया था वही अंश इस समय वारेन हेस्टिंग्स ने गंगा गोविन्द को दान दिया। देवीसिंह एवं गंगा गोविन्दसिंह के पहले फ़रेब एवं कपट को इस समय वारेन हेस्टिंग्स ने अनुमोदन किया और गंगा गोविन्दसिंह को परगने का सालवारी मालिकी स्वत्व प्रदान किया। गंगा गोविन्द हेस्टिंग्स के प्रसाद से दिनाजपुर के राजा की ज़मीन्दारी के एक अंश के मालिक बन बैठे।

किन्तु हेस्टिंग्स के बंगाल छोड़ने पर लार्ड कार्नवालिस भारतवर्ष के गवर्नर जनरल के पद पर नियुक्त होकर आये। लार्ड कार्नवालिस की अमलदारी में दिनाजपुर के राजा की ओर से सालवारी परगने के निमित्त गंगा गोविन्द के विरुद्ध नालिश दायर हुई। कार्नवालिस ने हेस्टिंग्स का भूमि-दान नामंजूर कर के सालवारी का परगना दिनाजपुर के राजा को लौटा दिया।

लार्ड कार्नवालिस के समय रंगपुर दिनाजपुर के विद्रोह के सम्बन्ध में नाना प्रकार की समालोचनाएँ आरंभ हुईं। इस विद्रोह के कारण का अनुसन्धान करने में प्रवृत्त होने पर वे चिरस्थायी बन्दोबस्त की आवश्यकता का अनुभव करने में समर्थ हुए।

वस्तुतः दिनाजपुर का विद्रोह ही लार्ड कार्नवालिस के चिरस्थायी बन्दोबस्त का एक मात्र मूल कारण था, इसमें कोई सन्देह नहीं। बंगालियों ने नूरुल मुहम्मद एवं दयाराम के खून के मूल्य के बदले में जो अधिकार प्राप्त किये, उसे जहाँ तक हमारा अनुमान है, कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। इस्तमरारी बन्दोबस्त के द्वारा वंगदेश का अत्यन्त उपकार हुआ है। इस्तमरारी बन्दोबस्त ही से अँगरेज़ों का राज्य दृढ़ हुआ। किन्तु यदि नूरुल मुहम्मद एवं दयाराम के प्राण विसर्जन नहीं होते तो वंगदेश में कभी इस्तमरारी बन्दोबस्त नहीं होता।

× × × +

प्रेमानन्द गोस्वामी पाटग्राम के कलंक के बाद मालदा जाकर स्त्री एवं कमलादेवी के सहित वास करने लगे। इधर लक्ष्मणसिंह कमलादेवी के पुत्र क्षेत्रनाथ को साथ लेकर बंगाल में आ पहुँचे।

लक्ष्मण ने सोचा कि कमलादेवी इस समय दिनाजपुर के रामसिंह के घर में होंगी। इसलिए क्षेत्रनाथ को साथ लेकर वे पहले दिनाजपुर गये। किन्तु उस स्थान में कमलादेवो से उन लोगों की मुलाक़ात नहीं हुई। उस समय वे क्षेत्रनाथ एवं उनके भाई रामसिंह परिवार के साथ मालदा को चल पड़े। दो ही तोन दिन में वे मालदा आ पहुँचे।

इकतीसवाँ अध्याय

पुत्र-मुख दर्शन

प्रेमानन्द, सत्यवती एवं कमलादेवी इस समय रामानन्द गोस्वामी के पैतृक गृह में निवास कर रहे हैं। कमला देवी लक्ष्मण के आशा-पथ को देखती रहती है। इस समय हमेशा लक्ष्मण के सम्बन्ध की ही बातें चलती हैं। कब लक्ष्मण लौट कर आवेंगे, लक्ष्मण के समान सत्पुरुष इस संसार में और कोई नहीं, सर्वदा इन लोगों में इन सब बातों को लेकर आलोचना हुआ करतो है।

एक दिन प्रेमानन्द कमला देवी को सम्बोधन करके बोले, "माँ! लक्ष्मण ने अपना नाम सार्थक किया। जिस समय दशरथ पुत्र लक्ष्मण राम के साथ वन में जा रहे थे, उस समय अयोध्यावासी सभी स्त्री पुरुष लक्ष्मण की ओर अँगुली-निर्देश करके कहने लगे।

एकः सत्पुरुषो लोके लक्ष्मणः सह सीतया।
यो अनुगच्छति काकुत्स्थं रामं परिचरन् वने।

कमला देवी बोली, "बेटा! इस जीवन में मैं लक्ष्मण के

ऋण का परिशोध कभी नहीं कर सकती। मैं रोज़ लक्ष्मण की मंगल कामना करके शिव की आराधना करती हूँ। मैं सर्वदा शिव से प्रार्थना करती हूँ कि वे लक्ष्मण को सुखी रखें।"

प्रेमानन्द मुस्कराकर बोले, "मा! लक्ष्मण सदा कहते थे कि आपके सुखी रहने ही से मुझे सुख होगा। तब लक्ष्मण को सुखी करो—यह प्रार्थना न करके, यही प्रार्थना करो कि मुझे सुखी करो यह कहने पर भी एक ही बात हो गई।"

कमला देवी बोली, "बेटा! कैसे आश्चर्य की बात है! मेरे द्वारा तो लक्ष्मण का कभी कोई उपकार नहीं हुआ। किन्तु लक्ष्मण मुझे सुखी करने के लिये प्राण-विसर्जन करने से भी कुण्ठित नहीं होते।"

प्रेमानन्द—माँ, तुम अपने को पहचानती नहीं हो। परम साध्वी रमणियाँ अपने जीवन की पवित्रता के दृष्टान्त द्वारा जगत का जो उपकार करती हैं, वैसा उपकार अर्थ, सम्पत्ति, ऐश्वर्य किसी के द्वारा भी नहीं होता। साध्वी स्त्रियों की मृत्यु के बाद भी संसार उनके द्वारा उपकृत होता रहता है। जनक-तनया सीता को संसार परित्याग किये कई युग बीत गये, किन्तु आज भी उनका दृष्टान्त स्त्रियों को सन्मार्ग पर प्रचलित करता है।

दोनों आपस में इस प्रकार वार्तालाप कर रहे थे। सत्यवती इनके पास बैठ करके इनकी बात-चीत सुन रही थी। इतने ही में जगा घर में प्रवेश करके बोली, कि दिनाजपुर के उसी जेल का जमादार रामसिंह दो स्त्रियों एवं दूसरे दो पुरुषों को साथ लेकर हमारे घर आया है।

रामसिंह का नाम सुनकर प्रेमानन्द फ़ौरन निकल बाहर दरवाज़े पर आये। कमला देवी भी उनके पीछे पीछे चली।

आधे रास्ते में जाते ही प्रेमानन्द ने देखा कि रामसिंह, लक्ष्मण सिंह, रामसिंह की स्त्री और लक्ष्मणसिंह की स्त्री तथा एक युवा पुरुष उनके दरवाज़े पर आये हुए हैं। युवक को देखते ही प्रेमानन्द ने समझ लिया कि ये ही कमला देवी के पुत्र होंगे। किन्तु कमला देवी प्रेमानन्द के पीछे से उस युवक की मुखाकृति देखते ही गाय की भाँति दौड़ती हुई दोनों बाहों को पसार, लक्ष्मण एवं उस युवक के गले से जाकर लिपट गयी।

कमला देवी की एक बाँह ने लक्ष्मण के गले को परिवेष्टित कर लिया था, दूसरी बाँह को अपने पुत्र के गले में लगाये हुई थीं। दोनों बाँहों से दोनों आदमियों के मस्तक को वे पागलिनी की भाँति अपनी छाती से लगाती थीं। उनका पुत्र क्षेत्रनाथ उस समय "मैं तुम्हारा चिर अपराधी अकृतज्ञ सन्तान हूँ" यह कह कर मूर्च्छित होकर माता के पैरों तले गिर पड़ा।

इस समय इनमें से प्रत्येक के हृदय में जो भाव उत्पन्न हुए, उन्हें कोई शब्दों द्वारा प्रकट नहीं कर सकता। सहृदय पाठक, पाठिकायें कल्पना द्वारा अपने को उस अवस्था में समझ कर उनके हृदयस्थित भाव को समझ सकेंगे।

क्षेत्रनाथ के मूर्च्छित हो जाने पर प्रेमानन्द ने उन्हें पकड़कर उठाया। होश आने पर बारम्बार अपने को धिक्कारते हुए कहने लगे, "माँ, मैं तुम्हारा अकृतज्ञ सन्तान हूँ। तुमने सचमुच कुपुत्र को अपने गर्भ में धारण किया था। मैं बारह वर्ष तक तुम्हें परित्याग करके विदेश में था। मेरी मृत्यु ही हो गई होती तो अच्छा था।"

किन्तु कमला देवी के मुँह में दूसरी बात न थी। उच्छ्वसित हृदयावेग से उनका गला रूँध गया था। सैकड़ों चेष्टायें करने पर भी वे स्पष्ट रूप में कुछ कहने में समर्थ न थीं। वे

क्या कह रही हैं, कोई समझ नहीं सकता था। केवल 'मेरा बच्चा' 'मेरा बच्चा' यही शब्द सुना जाता था।

वे प्राण पण से लक्ष्मण एवं पुत्र के मस्तक को छाती से लगाने लगीं। दीर्घाकार वीर पुरुष लक्ष्मण पालतू सिंह की नांई, कमला देवी जिस तरफ़ उसकी गर्दन पकड़ कर घुमातीं, उसी तरफ़ अपनी गर्दन को बढ़ा देता। प्रायः आध घण्टे तक ये सभी एक ही भाव में खड़े रहे। किसी के मुँह से शब्द नहीं निकलते थे, सभी अपने को भूल से गये थे।

सत्यवती भी इन लोगों के विलम्ब के कारण वहाँ पर चली आईं। रामसिंह, सत्यवती को देख कर विस्मय पूर्ण नेत्रों से उसके मुख की ओर बारम्बार नज़र डालने लगे।

कुछ समय के बाद प्रेमानन्द सब लोगों को घर के बीच लेकर गये। सत्यवती एवं कमलादेवी ने रामसिंह एवं लक्ष्मण की स्त्री को अत्यन्त स्नेह एवं आदरपूर्वक ग्रहण किया। ये प्रायः एक महीने से कुछ अधिक दिन तक अत्यन्त सुखपूर्वक इस स्थान पर रहे।

एक महीना बीत जाने पर क्षेत्रनाथ बोले कि बंगाल में रहने की मेरी बिलकुल इच्छा नहीं। लक्ष्मण को भी इस बार पंजाब जाने से यहां पर निवास करने की अत्यन्त इच्छा हो रही है। रामसिंह की किसी बात में मतामत प्रदान करने की क्षमता ही नहीं। दो एक मीठी २ बातें कह कर जिधर चाहो, उधर उनको घुमाया जा सकता है। क्षेत्रनाथ की बात पर रामसिंह, लक्ष्मण सभी ने पंजाब जाना स्थिर किया। किन्तु प्रेमानन्द को छोड़ कर जाने की किसी की भी इच्छा नहीं हुई। अस्तु, लोग प्रेमानन्द को भी परिवार के साथ पंजाब चलने का अनुरोध करने लगे।

रामसिंह जब से आये तभी से विस्मयापन्न नेत्रों से सत्यवती के मुख की ओर ताकते रहते।

प्रेमानन्द ने उनके मन का भाव समझ कर एक दिन हँसते हँसते उन से कहा—

"आपने उस भृत्य ननकू की कोई खोज खबर पाई है ?"

उस समय सत्यवती भी वहा पर मौजूद थी। वह हँसने लगी।

रामसिंह बोले, "नहीं–ननकू कहाँ चला गया, इसका कुछ पता नहीं चला"।

प्रेमानन्द—हँसते हुए सत्यवती के प्रति अंगुली दिखाते हुए बोले, "ननकू की भगिनी की तरह है न ?"

रामसिंह बोले, "हाँ, ठीक ननकू के मुख की तरह इनका भी मुँह है।"

प्रेमानन्द—आपने ननकू को पोष्य पुत्र रखने के लिये स्थिर किया था न ? यदि ये ननकू हों तो इन्हें अपनी कन्या बनायेंगे।

रामसिंह ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब प्रेमानन्द ने सब बातें बयान कर दीं। तब रामसिंह सत्यवती से बोले, "बेटी, आज से तुम मेरी कन्या हुई। किन्तु तुम्हें ननकू ही कह कर पुकारूंगा।

रामसिंह, लक्ष्मणसिंह एवं क्षेत्रनाथ के अनुरोध से प्रेमानन्द ने पंजाब देश में जाकर बसने का स्थिर किया। किन्तु ये उनसे बोले कि रंगपुर के इस कमीशन का फल देखे बिना मैं बंग देश को नहीं छोड़ सकता। मैंने बंगाल के अत्याचार के निवारणार्थ विगत २५ वर्षों से अनेकों चेष्टायें की हैं। इस लिये बंगाल की भावी अवस्था क्या होगी, इसे जानने के लिये विशेष उत्सुक हो रहा हूँ। इसके अतिरिक्त रंगपुर के विद्रोही

लोगों में जो दो एक पकड़े गये थे, उन पर कोई दण्डाज्ञा होने पर उसके प्रतिकार के लिये कोई चेष्टा भी करनी होगी।

रामसिंह उनकी बात को सुन कर बोले, "तुम क्यों रंगपुर के लोगों का उद्धार करना चाहते हो। बंगाली कुत्ते की भाँति हैं। तुम जिन ज़मीन्दारों के लिए प्राण देने गये थे, इस समय देखो, कमीशन के सामने कैसी झूठी गवाहियाँ दे रहे हैं। तुमको फँसाने के लिये भी मिथ्या बातें करते हैं।"

प्रेमानन्द इस बात को सुन कर सजल नेत्र हो बोलने लगे—"आप व्यर्थ इन बंगालियों की निन्दा करते हैं। मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि बंगाली जाति सचमुच मूढ़ है। यदि यह जाति मूढ न होतो तो इस दुरवस्था को पहुँचती क्यों? किन्तु मूढ इन लोगों को किसने बनाया? किसने इनके हृदय, मन को मनुष्यत्व से रहित करके जघन्य पशु-जीवन प्रदान किया है? ये तो मातृ-गर्भ से पृथ्वी पर इस रूप में नहीं गिरे हैं?"

रामसिंह—किसने इनको कुत्ता बनाया है?

प्रेमानन्द—देश में प्रचलित शासन-प्रणाली ही प्रजागण का चरित्र गठन करती हैं। देश प्रचलित, राजनैतिक अत्याचार ही साधारण प्रजा को मूढ़ एवं नीच बना कर छोड़ते हैं। आप देख नहीं रहे हैं कि देवीसिंह, रामनाथ दास, गंगा गोविन्द सिंह, आदि के समान अति जघन्य चरित्र के लोगों को ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी उच्च पद प्रदान करती है। जो मिथ्या प्रवंचना एवं खुशामद भरी बातें करते हैं; वे ही शासन-कर्त्ताओं के प्रिय पात्र हैं। इसलिये जन साधारण मिथ्या प्रवञ्चना मूलक व्यवहार ही को विशेष लाभप्रद समझ कर उसी मार्ग का अवलम्बन करते हैं। किन्तु आप मूढ कह कर जिनसे घृणा करते हैं, उन्हें भी मनुष्यात्मा प्रदान किया जा सकता है। यदि

पाटग्राम की अवस्था आप अपनी आखों से देखते तो इनको कभी भी नीच न कहते। सब लोगों को मैंने भाग कर जान बचाने के लिये कहा किन्तु एक आदमी भी मुझको छोड़ कर नहीं भागा। मुझे चारों तरफ से प्राचीर की भाँति परिवेष्टित करके खड़े हो गये। सभी के मुँह में यही बात थी—

"हम लोग प्राण विसर्जन करके प्रेमानन्द के जीवन की रक्षा करेंगे। प्रेमानन्द को छोड़ कर और कौन हमारी बहू बेटियों की धर्मरक्षा के निमित्त प्राण विसर्जन करेगा?"

प्रेमानन्द की बात सुनकर रामसिंह और कुछ नहीं बोले, किन्तु पाटग्राम की अवस्था का स्मरण होते ही प्रेमानन्द के दोनों गाल आँसुओं से भींग गये।

बत्तीसवाँ अध्याय

उपसंहार

सन् १७८९ ई० के फरवरी मास में रंगपुर के कमीशन की जाँच ख़तम हुई। बहुत से वंग कुलांगारों ने देवीसिंह के भय से एवं बहुत से कापुरुष ज़मीन्दारों ने देवीसिंह का अनुग्रह प्राप्त करने के उद्देश्य से झूठी गवाहियाँ दीं। उन्होंने कहा कि देवीसिंह इन सब अत्याचारों के विषय में कुछ नहीं जानते थे। केवल हरेराम ही अत्याचार करता था।

इन सब वंग कुलांगारों ने पीटरसन साहब की जाँच के समय देवीसिंह ने स्वयं जो २ अत्याचार किये, उसे भी कहा था। इसलिये पीटरसन साहब इस समय एक प्रकार से मिथ्या वादी हो गये।

कमीशन की धारणा में यह बात आई कि देवीसिंह एवं

गुडलैंड के विरुद्ध यथेष्ट प्रमाण नहीं हैं। किन्तु विलायती प्रणाली के अनुसार विचार न करने से देवीसिंह एवं गुडलैंड के विरुद्ध भी अपराध लग सकता था।

देवीसिंह छूट गये। उनके पक्ष के बहुत से लोग विद्रोह के समय ही मारे जा चुके थे। केवल हरेराम प्रभृति कई व्यक्ति जीते हुए बचे थे। हरेराम को एक वर्ष क़ैद की सज़ा हुई।※ और प्रजा में से पाँच लोगों पर विद्रोह का अपराध लगाया। लार्ड कार्नवालिस ने इन्हें बंगाल से वहिष्कृत करने की आज्ञा दी। लार्ड कार्नवालिस के शासन-कार्य में यही एक गुरुतर कलंक है। इन्हें विद्रोही करार देने पर भी इनकी स्त्री कन्या के प्रति जैसे अत्याचार हुए थे उनसे इन्हें दण्ड प्रदान करना किसी प्रकार से न्याय-संगत नहीं था।

प्रेमानन्द रंगपुर जाकर इन पाँचों व्यक्तियों को आश्वासन देते हुए बोले, तुम लोगों को डरने की कोई बात नहीं। मैं भी तुम लोगों के स्त्री पुत्र को लेकर पंजाब जाकर वहीं पर तुम लोगों के साथ ही मिलकर रहूँगा।

प्रेमानन्द की इस बात को सुन कर उन्हें विशेष आनन्द हुआ। कुछ दिन के बाद ये बङ्गाल से निकाल दिये गये।

कमीशन की जाँच के समय प्रेमानन्द ने दो तीन बार लार्ड कार्नवालिस के साथ साक्षात् किया। लार्ड कार्नवालिस के साथ बातचीत करके उन्हें यही पता चला कि केवल रंगपुर के विद्रोह के कारण ही वे चिरस्थायी बन्दोबस्त के पक्षपाती हुए हैं। रंगपुर के विद्रोह से देश का एक और भी उपकार हुआ। ब्रह्मतर देवोत्तर प्रभृति कर न लगने वाली ज़मीनों

※ देखो परिशिष्ट नम्बर २१।

के स्वत्व के अनुसंधान के लिये नियमित रूप से बाजाब्ता सिरिश्ता क़ायम हुआ। रंगपुर-विद्रोह के कुछ ही पहले बाजाब्ता सिरिश्ता क़ायम करने के लिये प्रस्ताव हुआ था। किन्तु इस विद्रोह के होने के कारण लार्ड कार्नवालिस ने विशेष आग्रह के साथ बाजाब्ता सिरिश्ता क़ायम किया।

प्रेमानन्द बङ्गाल को सदा के लिये छोड़ कर कमलादेवी के पुत्र क्षेत्रनाथ के साथ पंजाब को चले जाँयगे, यह बात सर्वत्र फैल गई। प्रेमानन्द के बहुत से आत्मीय तथा कुटुम्बी लोग उन्हें पंजाब जाने से मना करने लगे। इनके चचेरे भाई सच्चिदानन्द गोस्वामी अपनी ब्रह्मोत्तर जमीन का मुक़दमा तज़बीज़ कराने के लिये इस समय कलकत्ते में थे। इन्होंने प्रेमानन्द के साथ शास्त्राध्ययन किया था। इन्होंने प्रेमानन्द को पंजाब जाने से मना करते हुए एक लम्बा पत्र लिखा। प्रेमानन्द पंजाब जाने के दो दिन पहले सच्चिदानन्द के पत्र के प्रत्युत्तर में जो पत्र लिखा था, उसी को यहाँ उद्धृत करते हैं।

"परमकल्याणवर श्रीमान् सच्चिदानन्द गोस्वामी

परम कल्याण वरेषु।

"शुभाशीर्वाद के साथ मैं तुम्हारे पत्र के प्रत्युत्तर में यह प्रकट करता हूँ कि मैंने बंगाल को छोड़ देने का सचमुच निर्णय कर लिया है। मैं तुमसे निश्चय रूप से कहता हूँ कि बंगाल देश के अत्याचार एवं अराजकता जल्दी ही दूर नहीं होगी किन्तु समय पाकर यह अत्याचारानल क्रमशः और भी प्रज्वालित होगा। यदि तुम में विचार शक्ति होती, तो वर्तमान अवस्था को देखकर भविष्य में क्या होगा, उसे अनायास ही समझ सकते। तुम्हीं देखो, यह अत्याचार किस प्रकार से दूर हो सकता है।" एक तरफ तो कितने ही अर्थ-लोभी बनिये केवल

अर्थ-संग्रह करने के उद्देश्य से इस देश में निवास कर रहे हैं। दूसरी तरफ नितान्त निस्तेज, पारस्परिक सहानुभूति-शून्य कापुरुष बंगाली जाति है। इन दोनों श्रेणी के लोगों के पारस्परिक सम्मिलन द्वारा जिस प्रकार की अवस्था हो सकती है, वही हो रही है। जल एवं चीनी के मिलाने से मीठा शरबत तैयार होता है। किन्तु जल के साथ मिट्टी मिलाने से शरबत नहीं हो सकता। उसी प्रकार इन बलवान् कार्य कुशल अंग्रेज़ों के साथ अन्य किसी सतेज एवं बलवान् जाति का मुकाबला होता तो परस्पर बन्धुत्व स्थापित होता, एक दूसरे के गुण को ग्रहण करते। किंतु निस्तेज एवं नीचाशय बङ्गाली जाति के प्रति स्वभावतः अंगरेज़ों में घृणा का भाव उदय हो सकता है।

"बंगाली जाति को नीचाशय और निस्तेज समझ करके ही अंगरेजों ने अधिक धन संग्रह करने के लिये देवीसिंह, गंगा गोविन्दसिंह, रामनाथ दास के समान नर-पिशाचों को उच्च पद प्रदान किये हैं। ये नीचाशय बंगाली अंगरेजों का आश्रय पाकर अपने देशी लोगों के प्रति घोर अत्याचार करते हैं। इस प्रकार की अवस्था में देश में अच्छे लोग पैदा भी नहीं हो सकते। मनुष्य उच्च पद चाहता है। दूसरे देश में सच्चरित्र लोग उच्च पद पाते हैं। किन्तु हमारे देश में देवीसिंह, गंगा गोविन्दसिंह सरीखे लोग ऊँची पदवी पाते हैं! इसलिये देश के लोग एवं भावी पीढ़ी भी देवीसिंह एवं गंगा गोविन्दसिंह के बुरे दृष्टान्त का अनुसरण करेगी।

"बंगाल की दुरवस्था पर मैं बहुत विचार करता रहता हूँ। १७६१ ई० में जिस समय मालदा में ग्रे साहब एवं रामनाथ दास ने पहले अत्याचार करना आरंभ किया था, उस समय से लेकर आज ३० वर्ष तक इन बातों की चिन्ता

करता आया हूँ। पहले यह समझता था कि एक न एक दिन इन अत्याचारों का निवारण कर सकूंगा। इस समय बहुत अंशों में निराश हो चुका हूँ। किन्तु इससे यह न समझना कि निराश होने से चेष्टा करना ही छोड़ दूँगा।

"भाई, बंगालियों में एक ही रोग नहीं है। विभिन्न प्रकार के सैकड़ों रोगों ने बंगालियों के जीवन में घर बना लिये हैं। केवल ज्वर होने से अनायास ही एक प्रकार की औषधि का प्रयोग करने से वह ज्वर आराम हो जाता है। किन्तु जिस समय किसी मनुष्य को एक साथ ही ज्वर, खाँसी, आमाशय, प्लीहा, कृत् ये पाँचों रोग हो जाते हैं, उस समय कोई भी औषधि कारगर नहीं होती! एक रोग की औषधि करने से अन्यान्य रोग बढ़ने लगते हैं।

"बंगाली जाति यदि कायरता के कारण केवल राजनैतिक अत्याचारों से निपीड़ित होती, तो सम्मिलित चेष्टा द्वारा राजनैतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिये यत्न किया जा सकता; किन्तु इनकी सामाजिक अवस्था भी कम घृणित नहीं है। जातिभेद, स्त्री जाति की अवरुद्धावस्था, बाल विवाह, बहु विवाह, कौलीन्य प्रथा, सहमरण इत्यादि कुत्सित देशाचार इन्हें क्रमशः अवनतावस्था से और भी अवनति की ओर ले जा रहे हैं।

"तुम शायद समझते होगे कि मैं गत वर्ष तुम्हारे साथ कलकत्ता रहते समय पादरी साहब के साथ समय समय पर बातचीत करता था, इससे मेरा मत ईसाई हो गया है। किन्तु वह बात नहीं है। पादरी से बातचीत करने के बहुत पहले ही से जिस समय लक्ष्मणसिंह के साथ काशी, श्री वृन्दावन, प्रयाग, अयोध्या, दिल्ली प्रभृति प्रदेशों में भ्रमण कर रहा था, उसी समय बहुत से विषयों में मेरे ज्ञान-चक्षु खुल गये थे।

अनेक सामाजिक कुत्सित आचरणों पर मेरी दृष्टि उस समय पड़ी थी।"

"लक्ष्मण के साथ कमला देवी के पुत्र के अनुसंधान में जंगल जंगल, पहाड़ पहाड़ पर भ्रमण किया था। निर्जन में, एक एक जंगलों में बैठ कर, एक एक पहाड़ पर बैठ कर खूब चिन्तन किया है। लगभग ग्यारह वर्ष तक चिन्तन किया है। उस समय मेरे मन से सर्वदा इसी प्रश्न का उदय होता था— बंगाली जाति का कोई जातीय जीवन क्यों नहीं है? बंगाली जाति निस्तेज क्यों है। बंगाली जाति इतनी स्वार्थपर क्यों है? बंगाली इतने नीचाशय क्यों हैं?

"इन सब प्रश्नों पर बारम्बार विचार करके मैंने स्वयं बुराई की जड़ को समझ लिया है। इस देश का यदि एक प्रकृत इतिहास होता, तो तुम भी कुछ चिन्तन करने पर, इन सब प्रश्नों को हल करने में समर्थ होते।

"भाई भारतवर्ष के जिन लोगों में वीरत्व था, शौर्य था, तेज था, मनुष्यत्व था, वे प्रायः सभी मुसलमानों के साथ युद्ध करके इस संसार से चल बसे। किन्तु जिन लोगों ने युद्ध-क्षेत्र से भाग कर अपने जीवन की रक्षा की, उन्हीं की हम लोग सन्तान हैं। भागे हुए लोगों के वंशज होने से ही हम लोग इतने कायर हो गये हैं। किन्तु यह कायरता समय पाकर और बढ़ती जाती है।

"सिराज के सिंहासनच्युत होने से लेकर इन तीस वर्षों से जो घोर अत्याचार हो रहे हैं, जो विश्वव्यापी विप्लव चल रहा है, उससे बंगालियों की कायरता सौगुना बढ़ रही है। देश के जघन्य प्रकृति के जो लोग हम लोगों के पितृ-पितामहों के आजीवन गुलाम थे, वे ही अंगरेजों की कोठियों के

प्यादे किम्वा गुमाश्ते हो गये हैं और इन बीस तीस वर्षों में अतुल ऐश्वर्य सञ्चित करके इस समय देश के प्रधान व्यक्ति बन गये हैं। वंग समाज के नेता हो रहे हैं। किन्तु इनके पुरखे हम लोगों के पुरखों से भी सौगुने कायर थे। हम लोगों के पुरखे तो संग्रामक्षेत्र में एक बार गये भी थे। इन लोगों के पुरखों ने संग्रामक्षेत्र का कभी दर्शन तक नहीं किया था। मतलब यह कि वंग-समाज के वर्तमान नेताओं में अधिकांश कायर ही हैं।

"तुम्हारे साथ एकत्र पढ़ते समय मैंने तुमसे कई बार कहा था कि हम लोगों के शास्त्र के समान और शास्त्र नहीं। किन्तु देश-भ्रमण करने से हमारी वह कुधारणा दूर हो गई। यदि हम लोगों के शास्त्रों में प्रकृत सार पदार्थ अधिक होते, तो बंगालियों की ऐसी दुर्दशा हीं क्यों होती?

"तुम्हें स्मरण होगा कि मेरे पिता ने मुझे म्लेच्छ भाषा सीखने नहीं दी। इसी से मैं फारसी भाषा का अध्मय व नहीं कर सका। किन्तु तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा कि देश-भ्रमण काल में, जिस समय हम दो वर्ष अयोध्या में थे, उस समय मैंने एक मुसलमान से फारसी भाषा सीख ली। मुसलमानों को म्लेच्छ कह कर हम लोग उसे घृणा करते हैं, किन्तु वे भी हम लोगों से कई बातों में श्रेष्ठ हैं। मुसलमानों में प्रकृत इतिहास लिखने की प्रथा बहुत दिनों से चली आती है। हम लोग अपने को 'आर्य' 'आर्य, कह कर क्यों न डींग हाकें, परन्तु हमारे देश का एक भी इतिहास नहीं है। वस्तुतः मुसलमान हम लोगों की अपेक्षा यदि श्रेष्ठ न होते, तो हम लोगों को पराजित करने में समर्थ न होते।

"जिन लोगों का इतिहास नहीं है उनके विषय में यह

कर्म नहीं जाना जाता कि उनमें कभी जातीय जीवन था, या नहीं।

"मैं तुमसे एक बात और कहता हूँ। तुम मेरे मन्त्र को पढ़कर चौंक उठोगे। बंगाली जाति इतनी भीरु है, इसका मूल कारण नारी जाति की अवरुद्धावस्था है। सन्तान में भी माता ही के स्वभाव आते हैं। इसलिये अवरुद्धा भीरु रमणी के कुल के गर्भ से कभी वीर पैदा नहीं हो सकते।

"तुमने अपने पत्र में मुझे तिरस्कार करके लिखा है कि मैंने व्यर्थ ही रंगपुर की प्रजा को विद्रोही होने के लिये परामर्श देकर बड़ा अनुचित किया। किन्तु भाई तुम बड़े भोले हो। तुमने जो न्याय एवं दर्शन का अध्ययन किया है वह श्रम मात्र है, कार्य-कारण की शृङ्खला को तुम कुछ भी समझ नहीं रहे हो।

"रंगपुर के दयाराम एवं नूरुलमहम्मद के प्राण विसर्जन करने ही के कारण इस्तमरारी बन्दोबस्त का प्रस्ताव हुआ है। एवं मिष्कर ब्रह्मोत्र अथच देवत्र ज़मीन के स्वत्व के अनुसन्धानार्थ बाजाब्ता सिरिश्ता क़ायम हुआ है। यदि लार्ड कार्नवालिस का यह प्रस्ताव विलायत से मंजूर हो जायगा तो देश के ज़मीन्दार लोग दयाराम एवं नूरुलमुहम्मद के खून के मूल्य स्वरूप इस अधिकार को प्राप्त करेंगे।

"भाई, एक बात हठात् स्मरण हो आई। ईसाई पादरी कहते हैं कि ईसा के खून के द्वारा जगत् का उद्धार हुआ है। ईसा ने प्राण विसर्जन कर के मानव जाति के उद्धार के लिये उपाय बतला दिये हैं। वस्तुतः प्राण विसर्ज्जन किये बिना कोई जगत् का मंगल साधन नहीं कर सकता। ईसाई पादरियों की यह बात बहुत सारयुक्त मालूम पड़ती है।

"यदि दयाराम नूरुलमहम्मद एवं अन्यान्य भाई लोग प्राण विसर्जन न करते, अथवा रंगपुर का यह विद्रोह न हुआ होता तो लार्ड कार्नवालिस चिरस्थायी बन्दोबस्त के इतने पक्षपाती न होते। फ्रान्सिस फिलिप ने तो २० वर्ष पहले ही स्थायी बन्दोबस्त का प्रस्ताव किया था। किन्तु उस समय वह प्रस्ताव कार्य रूप में क्यों नहीं परिणत हुआ? ईसाई पादरी लोगों की सभी बातें असार नहीं कही जा सकतीं।

"तुम्हें यहाँ पर एक और बात में सावधान किये देता हूँ। आज कल हम लोगों के देश में केवल कृष्ण-चरित्र ही पढ़ा जाता है। भाई, तुम कृष्ण-चरित्र के अतिरिक्त खृष्ट चरित्र भी पढ़ो। कृष्ण-चरित्र में बहुत मत्थो पच्ची करने पर भी तुम क्या देखोगे? यही न देखोगे कि दुग्ध फेननिभ शय्या चार पाँच गोपिकायें। अस्त्र शस्त्र में एक गाय चराने की लाठी एवं बंशी।* किन्तु खृष्ट के चरित्र में अनेक महत् व्यापार देखे जा सकते हैं। जगत् की कल्याण-कामना के लिये प्राण विसर्जन, शत्रु के निमित्त ईश्वर के निकट प्रार्थना, एवं मुख में केवल एक ही ध्वनि—"पिता की इच्छा पूर्ण हो, मेरी इच्छा नहीं।" Father, let thy will be done and not mine.

"तुम लिखते हो कि बाज़ाब्ता सिरिश्ता स्थापित होने एवं विविध विचारक अदालत के खुल जाने से देश का बड़ा कल्याण हुआ है; किन्तु मैं वैसा ख़याल नहीं करता। अङ्गरेज़ी विचार-प्रणाली के दूसरे देश में प्रवर्त्तित हो जाने से जाल, प्रवञ्चना, मिथ्या व्यवहार क्रमशः बढ़ते जायँगे। हमारे देश के लोग मुहर

---

* श्रीकृष्ण चरित्र का ऐसा अनूठा अध्ययन (?) करने के लिए श्रीसच्चिदानन्द ने उन्हें बधाई भेजी थी परन्तु तब तक वे पंजाब चले गए थे।

का जाल करना नहीं जानते थे। मुँगेर के कलक्टर वेटमैन साहब ने इस देश के लोगों को पहले पहल मुहर का जाल करना सिखाया। इन ब्रह्मोत्र ज़मीन के मालिकों में किसी के घर में कोई सबूत नहीं। ईष्ट-इण्डिया कंपनी के कर्मचारी सबूत नहीं दिखाने से ब्रह्मोत्र ज़मीन न छोड़ेंगे। इसलिए बाध्य होकर लोग जाली सबूत प्रस्तुत करना सीखेंगे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लोग जैसे जैसे सबूत तलब करेंगे, बाध्य होकर लोग भी वैसे ही सबूत गढ़ने लगेंगे। मेरे पिता ने रानी भवानी को जो पत्र लिख दिया था, उसमें केवल 'धर्म साक्षी' यही लिख दिया था। किन्तु विलायती प्रणाली के अनुसार तीन गवाहों की आवश्यकता होती है।

"तुम्हारे पत्र के अन्तिम भाग को पढ करके मैं हंसी को और अधिक न रोक सका। मालूम होता है कि तुम सचमुच पागल हो गये हो। तुम लिखते हो कि लार्ड कार्नवालिस हम पर विशेष अनुग्रह करते हैं। मेरे चचेरे भाई होने का परिचय देकर तुमने उन से साक्षात् किया है। अतएव मैं इसी सुयोग में चेष्टा करने पर राय बहादुर अथवा राजा बहादुर की उपाधि प्राप्त कर सकता हूँ।

"भाई मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि कोई बुद्धिमान व्यक्ति तथा किसी भद्र व्यक्ति की सन्तान ईस्ट इण्डिया कम्पनी की दी हुई राय बहादुर तथा राजा बहादुर की उपाधि पाने के निमित्त कभी आग्रह प्रकट करेगा।

"कासिम बाजार के साइक साहब के गुमाश्ते के पुत्र सुनार, किम्बाग्रे साहब के गुमाश्ते के पुत्र ग्वाला, अथवा बारवेल साहब के आम मुख्तार के पुत्र तेली—इस श्रेणी के लोग ही राय बहादुर तथा राजा बहादुर की पदवी पाने के

लिये लालायित होंगे। इनके पिता पितामहों ने अंग्रेजों को कोठियों में बहुत सा धन कमाया है। किन्तु ये लोग भद्र समाज में अब भी स्थान नहीं पाते। इसलिये ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों के अनुरोध से इस आशा से किसी साधारण हितकर कार्य में दस बीस हज़ार रुपये देते हैं, कि कम्पनी से राय बहादुर अथवा राजा बहादुर की पदवी पाकर हम भी भद्र समाज में गिने जाने लगेंगे।

"क्या तुम नहीं जानते कि मेरे ऐसा कुकार्य करने से मेरे पिता-पितामह का नाम कलंकित हो जायगा? परमानन्द गोस्वामी का प्रपौत्र, अद्वैतानन्द गोस्वामी का पौत्र-रामानन्द गोस्वामी का पुत्र-मैं प्रेमानन्द गोस्वामी हूँ-मुझको कौन नहीं पहचानता? तुम क्या नहीं जानते कि मैले कुचैले वस्त्र पहन कर कंगालिन के वेश में मेरी स्त्री रानी भवानी के निकट गई थी, उस समय भी रानी ने बड़े प्रेम एवं सम्मान के साथ उसका आदर सत्कार किया था। राजा रामकृष्ण की प्रधान स्त्री के साथ एक ही आसन पर बैठा कर, मातृ-स्नेह दिखाते हुए हाथ में पंखा लेकर मेरी स्त्री के लिये हवा की थी।

"तब फटे पुराने वस्त्र पहनने पर भी जब मेरी स्त्री केवल चरित्र गुण ही से देश के सर्व प्रधान कुलीन कुटुम्ब कुल-वधू के यहाँ इस प्रकार की समादृत हुई थी, तो मैं राय बहादुर की उपाधि खरीद करने का कोई प्रयोजन नहीं देखता।

"देश के निम्न श्रेणिस्थ लोग इस समय के आदमी बन कर केशवलाल, कृष्णलाल, महेन्द्रलाल यादवचन्द्र इत्यादि बड़े २ भद्रोचित नाम रख रहे हैं, उन्हें ही रायबहादुर या राजा बहादुर की उपाधि की आवश्यकता हो सकती है। इसका कारण यह है कि इनके पिता-पितामहों के विषय में अनुसन्धान

करने पर दधिराम, बच्चाराम इत्यादि इस प्रकार के नाम प्रकट होते हैं।

"इन बच्चाराम एवं दधिराम के पुत्र-पौत्रों के भद्रोचित नाम ग्रहण करने से, तथा राय बहादुर वा राजा बहादुर की पदवी पाने से मैं उनके द्वेष नहीं रखता। निम्न श्रेणीस्थ लोग जितने ही भद्र होंगे, देश का उतना ही कल्याण होगा। मैंने अपनी प्रजा माधवदास के पुत्र जगा एवं रूपा को इस समय बड़े भाई की पदवी दी है। मैं उन्हें भद्र श्रेणी में भी सम्मिलित कर लूँगा। कारण यह है कि इन्हीं लोगों ने मेरे पिता की विपत्ति में भागी होकर उनका साथ दिया था। किन्तु जगा एवं रूपा जिस मार्ग से होकर भद्र समाज में सम्मिलित हो रहे हैं, राय बहादुर उपाधिधारी दधिराम बच्चाराम के वंशधर भी यदि उसी रास्ते से होकर समाज में उठते तो उनका विशेष गौरव होता। चरित्र-गुण से लोक में समादृत होने ही से देश का मंगल होता है। हमारे देश में रुपया होने से वे राय होते हैं। किन्तु मनुष्यत्व न होने से आदमी बन्दर कहा जाता है। इस लिये मनुष्य विहीन धनी लोगों की सन्तान के राय बहादुर होने पर लोग उन्हें राय बन्दर कहने लगते हैं। तब राय बहादुर एवं राय बन्दर एक ही बात हो जाती है। मेरा पत्र बड़ा लम्बा चौड़ा हो गया। अतएव अन्यान्य विषयों को पंजाब पहुँच कर लिखूँगा। यह मत समझना कि वंगदेश के प्रति मेरे हृदय में अनुराग नहीं है। दो तीन वर्ष पर एक एक बार वंग देश में आता रहूँगा।

"अपनी पारिवारिक अवस्था के सम्बन्ध में दो एक बातें तुमसे कह देने की इच्छा होती है। दो वर्ष हुए मुझे एक पुत्र पैदा हुआ है। कमला देवी के पुत्र क्षेत्रनाथ भट्टाचार्य ने मेरी

स्त्री की सबसे छोटी बहिन से शादी की है। वे सभी इस समय मेरे ही घर पर हैं। रामसिंह एवं लक्ष्मणसिंह भी इस समय परिवार के साथ मेरे घर ही पर हैं।

"क्षेत्रनाथ बङ्गाल के लोगों के प्रति बहुत घृणा प्रकट करते हैं। वे बङ्गाल को नर्क समझते हैं। उनके सम्बन्धियों ने उनकी माता के सम्बन्ध में जो झूठी बात फैला दी थी, उसीसे उनमें विशेष घृणा का भाव पैदा हो गया है। वे तो पहले बङ्गाल देश में विवाह करने ही को राज़ी नहीं होते थे। बाद में जब मैंने, कमलादेवी एवं लक्ष्मण ने बहुत समझाया बुझाया तब मेरी स्त्री की छोटी बहिन से शादी की।

"रामसिंह की स्त्री को मैं और मेरी स्त्री दोनों मां कह कर पुकारते हैं। वे भी हम लोगों पर सन्तान की नाईं प्रेम रखते हैं। रामसिंह अब भी मेरी स्त्री को ननकू कह कर पुकारते हैं। मेरी स्त्री प्रति दिन रामसिंह के लिये रसोई बना कर उन्हें खिलाती है। मेरी स्त्री के रसोई बनाने पर उनके मन के मुताबिक रसोई नहीं मिलती।

"मैं कभी कभी अपनी स्त्री को रामकृष्ण अधिकारी कहके पुकारता हूँ। तब वह भी मुझे सम्बन्धी कहके सम्बोधन करती है।

"प्रति दिन तीसरे पहर मैं, मेरी स्त्री, रामसिंह लक्ष्मणसिंह, इनके परिवार के लोग, कमलादेवी, क्षेत्रनाथ एवं इनकी स्त्री हम सभी लोग अपनी खिड़की के पास वाली पुष्करणी के घाट पर जाकर बैठते हैं। उस समय हम लोगों को बड़ा ही आनन्द मालूम होता है। यहाँ बैठ कर रामसिंह रोज तीसरे पहर को एक गिलास सुरा चढ़ा जाते हैं। पीने के एक आध घण्टे के बाद उनका मुँह खुलता है। उस समय वे देवीसिंह एवं देवीसिंह के पिता माता, भ्राता भागिनी, मौसी

आदि सभी आत्मीय स्वजनों के नाम धर कर गाली देने लगते हैं। रोज एक ही प्रकार की भूमिका आरंभ करके गाली देना आरम्भ करते हैं। देवीसिंह के सभी आत्मीय स्वजन लोगों को रामसिंह गाली देने लगते हैं। उस समय हम सब हँसने हँसते लोट पोट हो जाते हैं।

लक्ष्मणसिंह एवं उनकी स्त्री इस समय भी इसी बात में व्यस्त रहते हैं कि किस तरह कमला देवी को सुखी रक्खें। मैं समय समय पर लक्ष्मणसिंह को कहता हूं। सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वनुरक्तः सुहृज्जवे।

नाना प्रकार के कष्ट एवं यन्त्रणाओं के बाद हम लोग सुखी हैं। यदि मेरे पिता को ज़मीन को पुनः कब्जे में ला सको, तो उस जमीन का तुम्हीं उपभोग करना। मैं अपना पैतृक भवन भी तुम्हीं को देता हूँ। किन्तु ब्रह्मत्र ज़मीन के पुनः मिल जाने पर उसके कुछ अंश द्वारा मेरे पिता की अतिथिशाला को पुनः संस्थापित करना।

श्री प्रेमानन्द गोस्वामी।"

इस पत्र के भेजने के तीन दिन के बाद प्रेमानन्द, रामसिंह, लक्ष्मणसिंह, क्षेत्रनाथ, जगा, रूपा एवं सत्यवती की वृद्धा दासी सभी अपने २ परिवार के साथ पंजाब चले गये। देवीसिंह इस्ट इण्डिया कम्पनी के कार्य से बरख़ास्त हो गये।

गंगा गोविन्दसिंह बाजाब्ता सिरिश्ता का भार प्राप्त करके लार्ड कार्न वालिस की गवर्नमेण्ट के समय काम करने लगे। किन्तु इस जीवन में वे कभी सुख की नींद न सो सके। दूसरे का अनिष्ट करने पर इस संसार में कोई भी शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता।

❀ समाप्त ❀

हिंदी प्रेमियों को सूचना

सस्ता-मंडल से प्रकाशित पुस्तकों का परिचय तथा स्थाई ग्राहक बनने के नियम पुस्तक के अंत में 'परिशिष्ट' के बाद दिये हुए हैं, आप उन्हें एकबार ज़रूर पढ लें और मंडल के ग्राहक बनकर इस हिंदी साहित्य सेवा के कार्य्य में ज़रूर सहायता करें।

☞ हमारे यहाँ पर हिंदी की सब प्रकार की उत्तम पुस्तकें भी मिलती हैं। आपको जब कभी किसी पुस्तक के मँगाने की आवश्यकता हो तो इस मंडल के नाम पर ही आर्डर भेजें। गीता प्रेस की छोटी बड़ी पर बहुत सस्ती गीताएँ भी हमारे यहाँ पर मिलती हैं।

पता—सस्ता-साहित्य-मंडल,

अजमेर।

परिशिष्ट

दीवान गंगा गोविन्दासिंह के मामले की कुंजी

NOTE 1.

The Ray Royan was the regular channel of such communication as require the interposition of a native, and not Ganga Govind Singh, whose dismission from the Calcutta Committee had rendered him an improper person to transact affairs of such moment to the Company.—Extract from the Company's General letter to Bengal, the 4th July 1777.

परिशिष्ट १.

ऐसी बातों की सूचना देने का काम रायरायाँ ही नियमित रूप से किया करते थे, जिनके समझने में देशवासियों की आवश्यकता पड़ती थी ऐसे कंपनी के महत्व-पूर्ण कार्यों में गंगा गोविंद-सिंह का हाथ न था। क्योंकि कलकत्ते की कमेटी से अलग कर दिये जाने पर उनका ऐसा करना उपयुक्त न था। उद्धृत—कंपनी का बंगाल सरकार को लिखा खलीता—ता० ४ जुलाई, १७१७.

NOTE 2.

Para 50. The petition of Monohur Mookerjee, stiled the dismissed farmer of Currickpore and Mongheer, pointed out to our particular notice in your revenue letter per syren, exhibits another instance of loss to the company, occasioned by that duplicity which has been

practised by our servant during the late adminstration, in letting and holding of lands and farms in Bengal.

51. We find the circumstance, which Mookerjee's petition, was a complaint made by the Ray Royan that a balance of Rs. 13000 was the due from him as the dismissed farmer of Currickpore and Mongheer, and that the Khalasa peons had been sent to demand the money, but were interrupted by Mr. Wordsworth. To this charge Mr. Wordsworth, who had been an assistant at Mongheer, replies, that the Ray Royan must have been misinformed, because Dundhu Bahadur and Karparam Ray were the two farmers dismissed from Currickpore and Mongheer, and that the facts were too notorious to be doubled. Mookerjee also declares, on his examination, that he was Mr. Bateman's servant, and not the farmer of the district in question; that Mr. Bateman was Collector, Dundhu Bahadur farmer of one Perguna only and Karparam of the other; and that at Mr. Bateman's request he (Mookerjee) became security for payment; that he never saw Dundhu Bahadur, that Kerparam, was one of his own people, that he believe no such man as Dundhu Bahadur exists in Bengal and that he was security only for Mr. Bateman; that Mr. Bateman gave in proposal under the seals of Dundhu Bahadur and Kerparam, that seals were cut in the above mentioned names, and affixed to the Kabuliate by Mr. Bateman's Moonshy, who wrote the Kobuliate, and always kept the seals in his own hands; that Mr. Bateman had the possession, and enjoyed the profits of the farms, and paid him 200 Rupees per month as his muttasudie; that

Mr. Bateman told him Dundhu Bahadur and Kerparam were only nominal persons; that on asking Mr. Bateman if the two pergunnahs were his own, he replied, that he had one share in Mongheer, and Mr. Vansittrat two shares, but that he was the sole proprietor of Currikpore, that the Mehals or district having been put under the council at Moorshedabad. Mr. Baber told the petitioner, that Mr. Bateman was not to recieve the profit that year, but that they (meaning the said council) were to recieve that advantages arising therefrom, and that Mr. Baber proposed his continuing in the Mehal; and that he shoud give him a teep for 10,000 Rupees, which he declined, but to which he afterwards consented.

52. The orders of your Board on the occasion were that a copy of Mookerjee's petition should be transmitted to Mr. Bateman, and so much of it to Mr. Baber as had relation to that gentleman, and that his answer thereto should be required; but, to our astonishment, we find Mr. Barwell objects to this mode of admitting on the records matter of a tendency foreign to the public business etc.—Extract from the Court of Director's letter, dated the 30th January, 1778.

परिशिष्ट २.

मनोहर मुकर्जी उर्फ़ खड़गपूर और मुँगेर के पदच्युत काश्तकार की अर्ज़ी, जिस पर कि हमने आपके मालगुज़ारी वाले खलीते के अनुसार विचार किया था, हमारे कर्मचारी की चाल तथा धोखेबाज़ी का दूसरा उदाहरण है, जिनका उपयोग, पिछले हुकूमत में बंगाल में ज़मीन के, पट्टे पर देने और लेने में, खूब हुआ था।

मुकर्जी के दरख्वास्त देने का कारण यह था—राय-रायाँ ने मुकर्जी पर इस बात की नालिश की थी कि इन पर खड्गपूर और मुँगेर के पदच्युत काश्तकार को हैसियत से रु० १३,००० बकाया था और खालसा सिपाही जो यह रकम वसूल करने गये थे, उन्हें मि० वर्डस्वर्थ ने उनके काम में बाधा पहुँचाई थी। इस आरोप के बचाव में मि० वर्डस्वर्थ ने यह उत्तर दिया कि खड्ग-पूर और मुंगेर के काश्तकार मनोहर मुकर्जी नहीं थे, बल्कि इनके काश्तकार होने का किसी ने मिथ्या समाचार रायरायाँ को दिया था, क्योंकि यहाँ के काश्तकारों में दुंधूबहादुर और कृपाराम थे और ये बातें लोगों से छिपी नहीं थीं। मुकर्जी की जाँच होने पर उन्होंने भी यों कहा—"मैं इस (खड्गपुर व मुँगेर) ज़िले का काश्तकार नहीं हूँ। मैं तो इस ज़िले के कलक्टर बेटमैन का नौकर हूँ, इस ज़िले के एक परगने का काश्तकार दुंधूबहादुर है, व दूसरे का कृपाराम है। बेटमैन के कहने पर मैं इनका ज़ामिन हुआ था, मैंने दुंधूबहादुर को कभी नहीं देखा है। कृपाराम तो मेरे परिचित हैं, मुझे विश्वास है कि बंगाल भर में दुंधूबहादुर नाम का कोई आदमी नहीं है। मैं बेटमैन का ज़ामिन हूँ, बेटमैन ही ने दुधूबहादुर और कृपाराम के नामों की मोहर लगाकर यह बात की थी, पूर्वोक्त आदमियों के ही नाम मोहरों में खुदे थे। बेटमैन के मुन्शी ही ने क़बूलियत लिखी थी, उसीने इन मोहरों को उस क़बूलियत पर लगाया था, इन मोहरों को वही हमेशा अपने पास रखता था। दरअसल इन परगनों के काश्तकार बेटमैन ही थे और इनकी आमदनी भी वे ही लेते थे, मुतसद्दी की हैसियत से मुझे २००) माहवार देते थे। बेटमैन ने मुझ से कहा था कि दुंधूबहादुर और

कृपाराम तो सिर्फ़ बराये नाम के काश्तकार हैं। यह पूछे जाने पर कि क्या ये दोनों परगने तुम्हारे ही हैं, बेटमैन ने कहा—"मुँगेर में एक हिस्सा मेरा है तथा दो हिस्से वेन्सिटार्ट के हैं और खड्ग-पुर मुसल्लम मेरा ही है, लेकिन महाल या जिला मुरशिदाबाद की कौंसिल के अधीन है।" मि० बेवर ने मुकर्जी से कहा कि इस साल को आमद बेटमैन को नहीं मिलेगी, बल्कि कौंसिल को मिलेगी। फिर बेवर ने मुकर्जी से महाल में क़ायम रहने के लिये अनुरोध किया और १००००) की ज़मानत देने को कहा। पहिले तो मुकर्जी ने इससे इनकार किया, लेकिन बाद को इस पर राज़ी हो गये।

इस समय पर आपके बोर्ड ने यह आज्ञा दी थी कि मुकर्जी की अर्ज़ी की एक नक़ल बेटमैन के पास भेज दी जाय और नक़ल कर, वह हिस्सा जो बेवर से सम्बन्ध रखता है, उनके पास भेज दिया जाय और बेवर से इस पर जवाब तलब किया जाय! पर बड़े आश्चर्य की बात है कि मि० बारवेल इस तरह के आम मामले की लिखा-पढ़ी में उज्र करते हैं। (उद्धृत—कोर्ट आफ़ डाइरेक्टरर्स का खलीता—ता० ३० जनवरी, १७७८.

NOTE 3.

37. A further instance, in which the conduct of the Governor-General and Mr. Barwell, as a majority of the Board, appears to us not only improper, but highly reprehensible, is that of rejecting the advice of our standing council, and refusing to concur in filing a bill of discovery to oblige Mr. Thackeray to declare who were

the persons concerned with him in furnishing the company with elephants.

We observe that our late president states to the council, in consultation of the 6th September 1774, that the farmers of Sylhet had made a tender to him of about 66 elephants at 1,000 Rupees each, that the board esteemed it an advantageous offer and accepted the elephants under certain conditions.

39. We find that the farm of sylhet was granted by the committee of circuit, that the company's advance to the farmers of sylhet of 33,000 Rupees for elephants was received by one of the members of that committee. It has however since appeared, that the ostensible farmers or persons named in the committee's setllement, never existed; and that Mr. Thackeray the company's Resident at Sylhet, was the real farmer under fictitous names. —Extract from Company's General Letter to Bengal, dated the 28th November 1777.

परिशिष्ट ३.

एक दूसरा उदाहरण—जिसमें हमारी समझ में गवर्नर जनरल व मि० बारवेल—की कारवाई न केवल अनुचित ही, बल्कि अत्यन्त निंदनीय है—वह यह है कि इन्होंने हमारी सलाह को नहीं माना और मि० थेकरे से दबाव डाल कर यह पूछने से इनकार किया कि वे कौन २ आदमी हैं, जिन्होंने कंपनीको हाथी दिये थे।

हमारे भूतपूर्व प्रेसिडेंट ६ सेप्टेंबर, १७७४ के परामर्श के अनुसार कौंसिल से कहते हैं कि सिलहट के काश्तकारों ने ६६ हाथी १०००) प्रति हाथी के हिसाब से देने का वादा किया था और चूँकि यह सौदा बोर्ड को लाभदायक मालूम पड़ा, इसलिए

बोर्ड ने कुछ शर्तों के साथ हाथियों का लेना स्वीकार किया। अब हमको ऐसा मालूम हुआ है कि सिलहट की ज़मीन सरकुट की कमेटी ने ठेके पर उठाई थी और सिलहट के काश्तकारों को हाथियों के लिये कंपनी का ३३०००) पेशगी दिया हुआ रुपया कमेटी के एक मेम्बर ने ही लिया था। अब यह और मालूम पड़ा है कि कमेटी के ठहराव में लिखे हुए आदमियों के नाम बनावटी व काल्पनिक हैं, और इस नाम के आदमी वहाँ हैं ही नहीं और असल काश्तकार कंपनी के सिलहट के रेजिडेंट मि० थेकरे हैं और ये सब बनावटी नाम इन्हीं के हैं–उद्धृत। कंपनी का बंगाल सरकार को लिखा खलीता—ता० २८ नवंबर, १७७७.

NOTE 4.

36. In our letter of the 5th February, 1777, we expressed our apprehensions that a sudden transition from one mode to another, in the investigation and collection of our revenues, might have alarmed the inhabitants, lessened confidence in our proceedings, and been attended with other evils; yet as we were led to hope that such information had been obtained as would enable us to ascertain, with sufficient degree of precicion what revenues might be collected from the country without oppressing the natives, we felt some satisfaction in considering those evils as at an end and proceeded to give such instructions as appeared to us necessary to your guidance in a future settlement of the lands.

37. In this state of the business our surprise and concern were great, on finding, by our Governor-General's minute of 1st November, 1776, that, after more than seven

years investigation, information is still so incomplete, as to render another innovation, still more extraordinary than any of the former, absolutely necessary, in order to the formation of a new settlement—Extract from Company's general letter to Bengal, dated 4th July, 1777.

परिशिष्ट ४.

५ फरवरी १७७७ के खलीते में हमने इस बात का भय प्रकट किया था कि जाँच व मालगुजारी इकट्ठा करने के नये तरीके का एकाएक अवलंबन करने से लोगों में भय तथा हमारी कार्यवाही में उनका अविश्वास उत्पन्न हो जायगा और इससे और भी खराबियाँ पैदा होंगी, तथापि हमको विश्वास दिलाया गया था कि देशवासियों पर बिना अत्याचार किये हुए ही ऐसी सूचनायें एकत्रित की गई हैं, जिनसे यह ठीक २ पता चल जायगा कि देश से कितनी मालगुजारी वसूल की जा सकती है। इस तरह से बुराइयों का अंत होते हुए देख कर हमें अत्यंत हर्ष हुआ और हम लोगों ने तुम्हें भविष्य में जमीन के बंदोबस्त होने में हिदायतें व सलाहें दी थीं।

गवर्नर जनरल के १ नवम्बर, १७७७ के पत्र से यह देख कर हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि सात वर्ष बराबर जाँच करने के बाद भी जो कुछ समाचार व मसाले एकत्रित हुए हैं, वे इतने अधूरे हैं कि उनसे और एक नयी रीति का अवलम्बन करना आवश्यक होता है और यह रीति अत्यंत विचित्र है और नये बन्दोबस्त में इसका अवलंबन करना अत्यंत आवश्यक है। उद्धृत—कंपनी का बंगाल सरकार को लिखा खलीता—ता० ४ जुलाई, १७७७.

NOTE 5.

"In the late proceedings of the Revenue Board," observes the majority of the council "there is no species of peculation from which the Hon'ble Governor-General has thought it right to abstain."—Biveridge's History of India page 383.

परिशिष्ट ५.

कौंसिल के अधिकांश मेम्बर कहते हैं कि "रेवेन्यू बोर्ड की पिछली कार्यवाहियों में ऐसी एक भी चाल माननीय गवर्नर जनरल से न बची, जिसका उपयोग उन्होंने सौंपे हुए धन को विश्वास-घात पूर्वक उड़ाने में न किया हो।" बिवरिज का हिन्दुस्तान का इतिहास—पृष्ठ, ३८३।

NOTE 6.

45. We observe that our attorney was served with notice of trial of 14th November, about 20 days after death of colonel Monson, and to our cost we find, that the majority of the council consisting then of the Governor-General and Mr. Barwell, instead of preparing for a proper defence, deserted the cause, and thereby subjected the company to the payment of the money claimed by Thackeray.

48. Upon the whole of this transaction, as we fully approve the conduct of General Clavering and Mr. Francis, because it has been, in our opinion, highly meritorious, so we are compelled to declare, that the behaviour of our Governor-General and Mr. Barwell has, in this instance, been highly improper, and inconcistent with their duty. —Extract from the Company's general letter to Bengal, dated the 20th November, 1777.

परिशिष्ट ६.

मानसन के मरने के क़रीब बीस दिन बाद १४ नवम्बर को हमारे मुख्तियार को जाँच के लिये नोटिस दी गई। बहुमत से गवर्नर जनरल और मि० बारवेल ने हमारे मुक़दमे की पैरवी कुछ भी न की, जिसका नतीजा यह हुआ की कंपनी को थेकरे को रुपये देने पड़े।

*　　*　　*　　*

इस मामले में हमारी समझ में जनरल क्लेवरिंग और मि० फ्रान्सिस के व्यवहार अत्यंत प्रशंसनीय थे, इसलिये हमको बाधित होकर कहना पड़ता है कि इस मामले में गवर्नर जनरल और मि० बारवेल के व्यवहार अत्यन्त अनुचित व कर्तव्य-घातक थे। उद्धृत—कंपनी का बंगाल सरकार को खलीता—ता० २८ नवम्बर, १७७७.

NOTE, 7.

131. From a view of your conduct towards the Ranny of Burdwan, and the Ranny of Rajshahy, and her adopted son Raja Ram Kishan, and from your interesting debates concerning those persons, we have already been induced in the 92nd paragraph of our letter of the 4th March, to express our disapprobation of every mode of vexations interference in the private concerns of the Zamindar and of the idea of disturbing them in the quite enjoyment of their possessions; and as the Rannies above-mentioned appeared to have suffered an unusual degree of inconvenience and distress since, by the death of colonel Monson, the Governor-General and Mr. Barwell became

a majority of the Board, we now direct as the most eligible mode of doing justice to all parties,, that as soon as conveniently may be after the number of our council shall be complete, and consist of five members, the whole of the proceedings of our council relative to the Ranny ot Burdwan and to the Ranny of Rajshahy, be taken into your most serious consideration, and that to the utmost of your power the most impartial justice be rendered to the Zemindars above-mentioned, and if it shall appear to the three members of the Board, that the requsitions and injunctions of the Governor-General and Mr. Barwell, respecting the Ranny of Burdwan, were improper, and the re-establishment of Bridje Kishore Ray who had been removed by the late majority, and the placing of a military force upon the Rajah's house; were acts of oppression, or that the dispossession of Ranny of Rajshahy and her adopted son, and the distinction in her disfavour, respecting out-standing balances were un-warrantable proceedings; we direct that you make such reparation to those Zemindars as their respective cases shall require.—Extract from Company's general letter, dated the 23rd December, 1778.

"The Ranny of Burdwan" says Mr. Richard Barwell, the most dishonest and unscrupulous member of the council "is a vile prostitute."—Extract from Barwell's letter to Mrs. Mary Barwell.

परिशिष्ट ७.

बर्दवान और राजशाही की रानियों के प्रति तथा पिछली रानी के गोद लिये हुए लड़के राजा रामकिशन के प्रति आपके व्यवहार पर विचार करने से, वैसे ही इनके सम्बंध में आपके

भाषणों पर विचार करने से, हमने अपने चार मार्च के खलीते के ९२ पैरा में ज़मींदारों के घरेलू मामलों में त्रास-जनक हस्त-क्षेप करने के विषय में असम्मति प्रगट ही कर दी थी। चूंकि कर्नल मानसन की मृत्यु के बाद से गवर्नर जनरल व मि. बारवेल के बहुमत होने के कारण पूर्वोक्त रानियों ने बहुत सी असुविधायें तथा कष्ट सहे हैं, अतः जैसे ही कौंसिल के मेम्बरों की संख्या पूरी २ होजाय, यानी पाँच हो जाय वैसे ही उक्त रानियों के सम्बंध में हमार कौंसिल की सब कार्यवाहियों पर गंभीरता-पूर्वक विचार किया जाय और यथाशक्ति व पक्षपात-रहित उनके साथ न्याय किया जाय, ऐसी हम हिदायत देते हैं। यदि बोर्ड के तीन मेम्बरों की राय में बर्दवान की रानी से की हुई मांगें व उन पर निकाले हुए हुकुम गवर्नर जनरल व मि० बारवल की अध्यक्षता में अनुचित ठहरें, ब्रजकिशोर की, जो पिछले बार बहुमत से निकाला गया था, पुनः नियुक्ति व राजा के मकान पर सैनिकों का रखना अत्याचार-पूर्ण समझा जाय तथा राजशाही की रानी और उनके गोद लिये हुए लड़के का ज़मींदारी से अलग करना और उनके विरुद्ध बकाया निकालने के काम अनुचित ठहरे, तब ऐसी हालत में हम हिदायत करते हैं कि उन ज़मींदारों को इतना हरजाना दिया जाय जितना कि उनके मामले में ठीक समझा जाय। उद्धृत—कंपनी का साधारण खलीता—ता: २३ दिसम्बर, १७७८.

मि० रिचर्ड बारवेल, जो कि सबसे अधिक बेइमान व अविवेकी कौंसिल के मेम्बर हैं, कहते हैं कि—"बर्दवान की रानी एक नीच वेश्या है।" उद्धृत—बारवेल की अपनी स्त्री को चिट्ठी।

NOTE 8.

But to pursue this melancholly but necessary detail, I am next to open to your lordships, what I am here-after to prove, that the most substantial and leading yeomen, the responsible farmers, the parochial Magistrates and chiefs of villages were tied two and two by legs together; and their tormentors, throwing them with their heads downwards over a bar, beat them on the soles of the feet with ratans, until the nails fell from the toes; and then attaching at their heads, as they hung downwards, as before at their feet, they beat them with sticks and other instruments of blind fury; until the blood gushed out at their eyes, mouths and noses.

Not thinking that the ordinary whips and cudgels, even so administered, were sufficient, to others (and often also to the same who had suffered as I have stated) they applied instead ratan and bamboo, whips made of the branches of the Bale tree—a tree full of sharpened strong thorns, which tear the skin and lacerate the flesh far worse than ordinary scourages.—Edmund Burke, P. 188.

परिशिष्ट ८.

महाशय, अब मैं आपके सामने उन खेद-जनक परंतु आवश्यक बातों को पेश करता हूँ, जिन्हें मैं अब सिद्ध करूंगा। धनाढ्य व मुखिया किसानों के, उत्तरदायी काश्तकारों के, धर्माध्यक्षों के व प्रतिष्ठित गाँव वालों के, दो दो करके पैर बाँध दिये जाते थे, उनके अत्याचारी उन्हें सिर के बल डंडे पर गिरा देते थे और उनके पैर के तलवे पर इतने डंडे लगाते थे कि उनके नाखून चोट से नीचे गिर जाते थे और फिर उसी तरह उनके सिर नीचे करके

डंडे तथा दूसरे उत्पीडक शस्त्रों से उनके सिरों पर इतनी मार लगाते थे कि उनकी आँखों, मुँह और नाक से खून बहने लगता था।

कोड़ों और डंडों की मार काफ़ी न समझ कर दूसरों को (और प्रायः उन्हीं को जो कि पहिले मार खा चुके थे) वे अत्याचारी बाँस और डंडों के बजाय बेल की डालियों से बने हुए कोड़ों से मारते थे। बेल की डालियों में तेज़ और मज़बूत काँटे होते हैं जो कि मामूली कोड़ों से कहीं अधिक चमड़े को काटते हैं और मांस को निकाल लेते हैं—एडमंड बर्क—पृष्ठ १८८.

NOTE 9.

Your deliberations on the inland trade have laid open to us a scene of the most cruel oppressions, which is indeed exhibited at one view of the 13th article of the Nabab's complaints mentioned thus in your consultation of the 17th October, 1764......We shall, for the present, observe to you, that everyone of our servants concerned in this trade, has been guilty of a breach of these covenants and disobedience to our orders. In your consultations of the 3rd May, we find among the various extortionate practices, that most extraordinary one of "Barjaut" or forcing the natives to buy the goods beyond the market price, which they acknowledge to have been frequently practiced.

In your resolution to prevent this practice, you determine to forbid it, but with such care and discretion, as not to affect Company's investment, as you do not mean to invalidate the right drived to the company from the Firman which they have always held over their

weavers. As the company are known to purchase their investment by ready money only, we require a full explanation how this can affect them or how it could ever have been practiced in the purchase of their investment, which the latter part of Mr. Johnstone's minute entered in consultation of the 21st July, 1764, insinuates; for it would almost justify a suspicion, that the goods of our servants have been put off to the weavers in part payment of Company's investment.

Therefore we direct you to make a rigid scrutiny into the affairs, that we may know that any of our servants or those employed under them, have been guilty of such breach of trust, that their names and all the circumstances may be known to us.—Extract of a letter from the Court of Director's to the president and council at Fort William in Bengal, dated the 28th December, 1765.

परिशिष्ट ६.

देशी व्यापार के सम्बन्ध में तुम्हारे विचारों ने एक ऐसे बेरहमी के ज़ुल्म को सामने लाया है, जिसको कि तुमने अपने १७ अक्टूबर, १७७४ वाले नवाब को शिकायत के १३ वें अध्याय में प्रदर्शित किया था......वर्तमान के लिये हमें तुमसे इतना ही कहना है कि हमारा हर एक कर्मचारी, जो कि व्यापार से अपना सम्बन्ध रखता है, अपनी नौकरी की शर्त तोड़ने का तथा हमारी आज्ञाओं के उल्लंघन का दोषी है। तुम्हारे तीन मई वाले खरीते में जो कि नाना प्रकार के ज़ुल्मी कामों को बताता है, हमें मालूम होता है उनमें सबसे अनोखा 'बारज़ौथ' है। यानी देशी आदमी पर इस बातका दबाव डालना कि बाज़ार के भाव से ज्यादा महँगे भाव पर

वस्तुयें खरीदे और तुम अपने खरीते में स्वीकार भी करते हो कि ऐसी हरकतें वहाँ जारी हैं।

तुम अपने प्रस्ताव में ऐसी हरकतों को रोकने के लिये प्रतिज्ञा भी करते हो, लेकिन इतनी होशियारी और बुद्धिमत्ता के अनुसार जिससे कम्पनी के स्वार्थ के लगे हुए रुपयों में बाधा न पड़े, क्योंकि तुम उस फ़रमान के हक़ को, जिससे कि कम्पनी को जुलाहों पर अधिकार मिला है, नाजायज़ करना नहीं चाहते। चूँकि कम्पनी नग़द रुपयों से अपने व्यवसाय के वस्तुओं को खरीदती है तो हम इस बात का पूरा पूरा जवाब चाहते हैं कि किस तरह से इसका उन पर असर पड़ता है या किस तरह से इसका उपयोग उनके व्यवसाय की वस्तुओं के खरीदने में किया गया है, इसका ज़िक्र मि० जानसन ने अपने २१ जुलाई, १७६४ वाली चिट्ठी में किया है। क्योंकि यह शंका का स्थान है कि हमारे कर्मचारियों के व्यापार की वस्तुयें, कम्पनी के व्यवसाय के देने के अंशों में, जुलाहों को देने के लिये अलग खरीदी गई हैं। इसीलिये हम तुम्हें आज्ञा देते हैं कि बारीकी के साथ तुम इस मामले की जाँच करो, ताकि यह हमें मालूम पड़े कि हमारे किन २ कर्मचारियों ने तथा उनके खुद नौकरों ने नौकरी की शर्तों को तोड़कर अपने को दोषी बनाया है। उनके नाम तथा पूरी २ सब हालतें लिखने के लिये हम तुम्हें हिदायतें देते हैं। उद्धृत—कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर का प्रेसीडेन्ट को तथा बंगाल के फोर्ट विलियम कौंसिल को लिखा हुआ खलीता, २८ दिसम्बर, १७६५।

NOTE 10.

The following is the translation of a letter addressed

to Sher Ally Khan, Phowzdar of Purniah by Mssrs. Johnstone, Hay and Bolts recorded at Fort William consultation, dated the 17th December, 1762.

Our Gumasta, Ramcharan Das, being gone into those parts, meets with obstruction from you, in whatever business he undertakes, moreover you have published a prohibition to his effect, that whoever shall have any dealing with the English, you shall seize his house and lay a fine upon him.

In this manner, you have prohibited the people under your jurisdiction. We were surprised at hearing this affair, because that the Royal Firman which the English nation is possessed of, is violated by this proceeding but the English by no means suffer with patience their Firman to be broken through. We therefore expect that, upon the receipt of this letter you will take off the order you have given to the Rayots, and in case of your not doing this, we will certainly write to the Nabab, in the name of the English, and send for such an order from him, that you shall fully and entirely restore whatever loss the English have sustained or shall sustain, by this obstruction and that you shall repent having thus interrupted our business, in despite of Royal Firman. After reading this letter, we are persuaded, you will desist from interrupting it, will act agreeably to the rules of Friendship, and so that your amity may appear and by no means stop the Company's Dustuck.

परिशिष्ट १०.

हमारा गुमाश्ता रामचरनदास जब कभी उन हिस्सों में जाता है, या जो कुछ वह काम करता है, उसमें तुम बाधा डालते हो

और तुमने इसके अलावा इन मामलों के सम्बन्ध में इस तरह की मनाही कर दी है कि उन सब आदमियों का तुम मकान छीन लोगे और उन पर जुर्माना करोगे, जो अँगरेज़ों के साथ अपना सम्बन्ध रक्खेंगे। इस तरह से तुमने अपने अधीनस्थ लोगों में मनाही करा दी है। इन बातों को सुनकर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि इसके कारण वह शाही फरमान, जो कि अँगरेज़ों के पास है, नाजायज़ ठहरता है, लेकिन अँगरेज़ लोग सब के साथ फरमान का तोड़ना नहीं देख सकते। इसलिये हम उम्मेद करते हैं कि इसी चिट्ठी के पाने पर तुम अपना रुकावट का हुक्म, जो कि तुमने रैय्यतों को दिया है, वापस ले लोगे। अगर तुम ऐसा न करोगे तो हम अँग्रेज़ों के नाम से नवाब को लिखेंगे और उनसे ऐसा हुक्म मँगवावेंगे जिससे कि तुम्हें उस नुक़सान को पूरा करना पड़ेगा जो कि अँग्रेज़ों को तुम्हारे इस रुकावट के हुक्म के कारण उठाना पड़ा है, या आगे उठाना पड़ेगा। और तुम्हें हमारे व्यवसाय में बाधा डालने के कारण पछताना पड़ेगा और जिस वाधा को फरमान रहते हुए तुमने हमारे व्यवसाय में डाला है। हमें आशा है कि इस चिट्ठी के पढ़ने के बाद ऐसी रुकावटें तुम फिर न डालोगे और मित्र-भाव से काम करोगे, जिससे कि तुम्हारा मित्रभाव प्रकट होगा और कम्पनी के दस्तक के काम में रुकावट न पड़ेगी।—मि० जानस्टन हे और वोल्ट की पूर्णिया के फौजदार शेरअली खाँ को लिखी हुई चिट्ठी-ता० १७ दिसम्बर, १७६२.

NOTE 11.

......Upon Ramnant's going out of the Governor's chamber, and coming into the Hall, he was suddenly

met by a party of sepoys with fixed bayonets, commanded two black officers named Sontose and Dilmohammad, who in that instant seized him; and not permitting him to ride in palanqueen, marched him on foot through the town, from the Governer's to his own house, where they kept him in strict confinement, with guards upon his doors, and even into his innermost apartment, not permitting any person but his own menial servants, to have access to him. ......He remained in that situation until Sunday the 3rd May, 1667; in the evening of which he sent to inform the writer (Mr. Bolts) he had just received private intelligence that order had been received from Governer Veralst, then with the Nawab at Murshidabad to Mr. Cartier then at Calcutta to deliver him (Ramnand) up to the Nawab for confinement.........By letter afterwards received from him (Ramnant) it appeared, that he was actually transfered to the Nawab at Murshidabad for confinement, during which time his family at Maldah was put to the greatest hardship and distrees.—Bolt, on India affairs, Pages 101, 102 and 103.

परिशिष्ट ११.

रामनाथ के गवर्नर के कमरे के बाहर जाने बाद और बड़े हाल में आने पर, वह सिपाहियों से मिला, जो संगीन लिए हुए थे। वह ज़बरदस्ती दो देशी अफ़सरों के पास लाया गया, जिनका नाम संतोष और दिल मुहम्मद था। इन्होंने उसे तुरन्त पकड़ लिया और उसे पालकी पर चढ़ने को इजाज़त नहीं दी और इसे गवर्नर के मकान से इसके मकान तक बाजार से होते हुए पैदल ले गए। इसको इसके घर में इन्होंने बन्द कर दिया और वहाँ पर सिपा-

हियों की तैनाती कर दी। जनान खाने में भी सिपाही रक्खे गए और उनको यह आज्ञा दी गई कि इसके पास नीच दर्जे के नौकरों को छोड़ कर और कोई भी न जाने पावे।......यह इस हालत में रविवार तीन मई, सन् १६६७ तक रहा। उसी दिन शाम को उसने लेखक को (बोल्ट) यह लिखा कि मुझे खास तौर से यह पता चला है कि गवर्नर वेरेलेस्ट ने, जो कि इस समय मुर्शिदाबाद के नवाब के साथ हैं, मि० कॉर्टियर को जो कलकत्ते में हैं, यह आज्ञा दी है कि मुझे क़ैद के लिए नवाब को दे दिया जाय। रामनाथ के बाद की चिट्ठियों से ऐसा मालूम हुआ कि दरअसल वह क़ैद के लिए मुर्शिदाबाद के नवाब के पास भेज दिया गया। उसकी क़ैद के समय में, मालदा में उसके घर वालों को बहुत ही ज्यादा तकलीफ़ें और मुसीबतें उठानी पड़ीं—हिन्दुस्तान के मामलों पर बोल्ट के पत्र—१०१, १०२ और १०३.

NOTE 12.

Accordingly in plain terms, he (Devi Singh) opened a local brothel, out of which he reserved very flower of his collection for the entertainment; ladies recommended not only by personal merit, but according to the Eastern customs, by sweet and enticing names which he had given them. For, if they were to be translated, they would sound,—riches of my life,—wealth of my soul,—treasure of perfection,—diamond of splendour,—pearl of price,—Ruby of Pure Blood and other metaphorical descriptions, that calling up dissonent passions to enhance the value of general harmony, heightened the attraction of love with all allurements of avarice. A

moving Seragle's of these ladies always attended his progress, and were always brought to the splendid and multiplied entertainments with which he regained his council.—E. Burke, pages 177—78.

परिशिष्ट १२

देवीसिंह ने खुले आम एक स्थानीय चकला खोला जिसमें उसने चुन २ कर अच्छो २ वेश्यायें अपने नौजवान अफ़सरों के विनोद के लिये, अलग नियत कर दी थीं—औरतें केवल सुन्दरता ही के लिये नहीं अच्छी समझी जाती थीं, बल्कि अपने मीठे और मनोहर नामों के लिये भी, जो कि उसने रक्खे थे। अगर उनके नाम अनूदित किये जाँय तो वे इस तरह से होंगे—मेरी ज़िंदगी की दौलत, मेरे प्राण का धन, पूर्णता का खज़ाना, चमक का हीरा, मूल्य का मोती, असली नीलम और इसी तरह के और भी अलंकारिक नाम, जो कि हमसाज़ी को बढ़ाने के लिये कामवासनावर्धक थे और धन की लालच से प्रेम की शक्ति को बढ़ाते थे। जहाँ कहीं वह जाता था, उसके साथ यह वेश्या-गृह हमेशा बना रहता था और इन वेश्याओं को बड़े २ जलसों में लाता था और इस तरह से कौंसिल को आनन्द और प्रमोद में रखता था—ई. बर्क पत्र—१७७, १७८.

NOTE 13

Even in these days, instances are not wanting, which will show that when the estate of any minor Zamindar, or any minor independant native chief, is placed under the management of any stranger or foreignor the nearest relations of such minor experience great hardship where as the Manager's friends and rela-

tions are well provided at the expense of such estate or state.

परिशिष्ट १३

आजकल भी ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है, जिनसे कि यह साफ़ प्रगट होता है कि जब कभी किसी नाबालिग़ की ज़मींदारी या किसी स्वतंत्र नाबालक रजवाड़े की रियासत का इन्तज़ाम किसी अजनबी या परदेशी के सुपुर्द कर दी जाती है, तब नाबालक के सब से पास वाले रिश्तेदारों को तकलीफ़ें उठानी पड़ती हैं, इसके एवज़ में इन्तज़ाम करने वाले के दोस्त व रिश्तेदार इन रियासतों और ज़मींदारियों के बदौलत मज़ा उड़ाते हैं।

NOTE 14.

On the same principle, and for the same ends, virgins who had never seen the sun, were dragged from the inmost sanctuaries of their houses; and in the open court of justice, in the very place where security was to be sought against all wrong and all violence (but where no judge or lawful Magistrate has long sat, but in their place the ruffians and hanged men of Waren Hastings occupied the bench) these virgins, vainly invoking heaven and earth in the presence of their parents, and whilst there shikes were mingled with indignant cries and groans of all the people, publicly were violatedly the lowest and wickedest of the human race. Wives were torn from the arms of their husbands and suffered the same flagitious wrongs which were indeed hidden in the bottoms of the dungeons in which their honour and their liberty were burried together. Often they were taken out of the refuge of this consoling gloom,

stripped naked, and thus exposed to the world and then cruelly scouraged; and in order that cruelty might riot in all the circumstances that melt into tenderness the fearest nature, the nipples of their breasts were put between the sharp and elastic sides of cleft bamboos. Here, in my hand, is my authority; for otherwise one would think it incredible. Edmond Burke's speech, page 189—90.

Children were scouraged almost to death in the presence of their parents. This was not enough. The son and father were bound closed together, face to face, and body to body and in that situation cruelly lashed together so that the blow which escaped the fathar fell upon the son and blow which missed the son wound over the back of their parent.—Ibid.

परिशिष्ट १४

उसी वसूल पर और उसी काम के लिये कुँआरी स्त्रियाँ जिन्होंने कि कभी सूर्य्य की रोशनी भी न देखी थी, अपने घर के पवित्र स्थानों से घसीट लाई जाती थीं और खुली आदालत में—यही जगहें जहाँ पर कि उन्हें अत्याचार व जुलमों से बचने के लिये शरण की आवश्यकता थी (लेकिन जहाँ पर न कोई जज या न्यायाधीश बहुत देर तक बैठता था। लेकिन इनकी जगहों पर वारेन हेस्टिंस के गुर्गे और जल्लाद बैठते थे) वहीं पर ये बिचारी अपने माँ-बाप के सामने ईश्वर की दोहाई देते हुए तथा दूसरों की चिल्लाहट व दुःखों में अपनी चिल्लाहट और दुःख मिलाते हुए, नीच से नीच और दुष्ट से दुष्ट मनुष्यों से भ्रष्ट की जाती थीं। औरतें अपने पतियों के बाजुओं से अलग कर दी जाती थीं और

इनकी भी वही दुर्दशायें होती थीं। ये सब अत्याचार, जिनमें कि उनकी प्रतिष्ठा तथा स्वातंत्र्य का नाश होता था, तहखानों में किये जाने की वजह से छिपे रहत थे। अक्सर ये इस सुखदायी दुःख-प्रद तहखानों से निकाल ली जाती थीं। वह सब के सामने नंगी की जाती थीं और फिर उन पर बेरहमी के साथ कोड़े लगाये जाते थे। कठिन से कठिन मुसीबतें, समय निकल जाने पर इतनी दुखःप्रद नहीं मालूम पड़तीं, इसीलिये जिससे कि उन औरतों को दुखः का स्मरण हमेशा रहे, उनके स्तन के अग्रभाग तेज़ और लचीले बाँस की कमाचियों से दबाये जाते थे। मेरे हाथों में यहाँ इनका सुबूत है, वरना इस पर लोग विश्वास न करेंगे—ई वर्क पत्र-१८९, १९०.

माँ-बाप के सामने बच्चों को इतने कोड़े लगाये जाते थे कि वे बेचारे अधमरे हो जाते थे। इतना ही काफ़ी न था; पिता और पुत्र को आमने सामने करके उनके शरीर मज़बूती से बाँध दिये जाते थे और फिर उन पर कोड़ों की बौछार पड़ती थी, जिससे कि जो चोट पिता को लग जाने से बच जाती थी, वह लड़के पर पड़ती थी और लड़के को लगने से जो बच जाती थी, वह पिता पर पड़ती थी।

NOTE 15.

The peasants were left little else than their families and their bodies. The families were disposed. It is a known observation, that those to oblige Mr. Thackeray to declare who were the persons concerned with him in furnishing the company with elephants.

38. We observe that our late president states to the

council, in consultations of the 6th September 1774, that the farmers sylht had made tender to him of about 66 elephants at 1000 Rupees per each, that the Board esteemed it an advantageous offer, and accepted the elephants under certain conditions.

We find that the farm of sylht was granted by the committe of circuit, that the company's advance to the farmers of sylht, of 33000 Rupees for elephants was recieved by one of the members of that committee. It has however since appeared, that the ostensible farmers, or persons named in the committee's settlement, never existed; and that Mr. Thackeray, the company's Resident at Sylhat was the real farmers under who have the fewest of all other worldly enjoyments are the most tenderly attached to their children and wives. The most tender parents sold their children at market. The most fondly jealous of husband sold their wives. The tyranny of Mr. Hastings entinguished every sent liments of father, son, and husbands !

I come now to the last stage of their miseries everything visible and vendible and was siezed and sold. Nothing but the bodies remained.—Edmond Burke's speech page 186.

परिशिष्ट १५.

बालबच्चों और शरीर को छोड़ कर के किसानों से सब कुछ ले लिया जाता था। बालबच्चों से भी सब छीन लिया जाता था। यह देखने में हमेशा आता है कि जिनके पास दुनियादारी के सुख की वस्तुयें जितनी ही कम रहती हैं, उन्हें उतना ही ज्यादा अपनी औरतों और बच्चों का लाड़-प्यार रहता है। प्रेम

की मूर्ति पिता अपने बच्चों को बाज़ार में बेचते थे। प्रेमी पति अपनी स्त्रियों को बेचते थे। मि० वारेन हेस्टिंग के ज़ुल्मों ने पिता, पति और भ्राताओं के सम्बन्धों का ख़ातमा ही कर दिया था।

अब मैं उनके दुःखों की आख़िरी स्थिति पर आता हूँ—हर एक चीज़, जो कि देखने लायक़ और बेचने लायक रहती थीं, छीन ली जाती थीं और बेच दी जाती थीं। शरीर के सिवाय कुछ भी नहीं बचने पाता था। ई बर्क पत्र—१८६.

NOTE 16.

The variety and frequent changes of those employed in the collections may be included in the causes of this content. In 1788 Kishan Prasad was appointed Diwan and Collector of Rungpur by Raja Devi Singh. In Bhadon he was turned out and Hur Ram was appointed in his stead and continued to the end of that year. In 1789 after three months Hur Ram refused to take upon him the responsibility for revenues of the District, and in Assar he was succeeded by Suraj Narain. In Aghan the Raja's brother Bekedre Singh (the name is unintelligible in the original papers found by the author by the Board of Revenue) arrived and was invested with the management of the collections in which he exercised every kind severity and rigour, Suraj Narain continued to act as Diwan. The Zamindars of Kakina and Tepah fled from the country and both their Zamidaris were given in form to Suraj Narain—Extract from peterson's report 1783.

परिशिष्ट १६.

संतोष के कारणों में से एक यह भी कारण है कि भिन्न २ स्वभाव वाले मनुष्य, इनमें भी बार २ परिवर्तन होते थे—मालगुज़ारी को एकत्रित करने में रक्खे जाते थे। १७८८ में राजा देवीसिंह ने किशनप्रसाद को रंगपूर का दीवान और कलक्टर नियुक्त किया था। भादों में वह निकाल दिया गया और उसकी जगह हरेराम रखा गया और यह साल के आख़ीर तक रहा। १७८९ में तीन महीने के बाद ज़िले की मालगुज़ारी की ज़िम्मेवारी लेने से इस्तीफ़ा दिया और असाढ़ में उसकी जगह पर सूर्य्यनारायण की नियुक्ति हुई। अगहन में राजा के भाई विकदार सिंह (ग्रंथकार को बोल्ट के प्राचीन कागज़ों में अशुद्ध मिला) आये और मालगुज़ारी का काम इनके ज़िम्मे दिया गया। इस हैसियत से इन्होंने बहुत सख़्ती के साथ काम लिया। सूर्य्यनारायण दीवान का काम करते रहे। काकीना और तेपा के ज़मींदार देश से भाग गये और इन दोनों की ज़मींदारियाँ ठेके पर सूर्य्यनारायण को दी गईं। उद्धृत—पेटर्सन की रिपोर्ट—मई, १७८३.

Note 17.

His (Ganga Govinda's) conduct then was licentions and unwarrantable oppressive and extraordinary. He was stationed under us to be an humble and submissive servant. His conduct was everything the reserve.

In one attempt to release 15 persons illegally confined by him, we were dismissed our officers, a different

pretence was held out for our dismission, but it was only a pretence.—Evedence in the trial of Hastings.

परिशिष्ट १७.

गंगा गोविंदसिंह का आचरण भ्रष्ट, ज़ुल्मी, अनुत्तरदायी व अत्याचारी था। वह हम लोगों के मातहत में एक साधारण और आज्ञापालक नौकर की हैसियत से रक्खा गया था। उसका आचरण इसके बिलकुल विरुद्ध था।

पन्द्रह मनुष्य को छुड़ाने के यत्न में, जो कि अन्याय पूर्वक क़ैद किये गये थे, हम लोग अपने पदों से हटा दिए गए। हम लोगों के हटाने का एक दूसरा ही कारण बतलाया गया, लेकिन वह सिर्फ़ बहाना था।—वारेन हेस्टिंग्स के मोक़द्मे में गवाही।

NOTE 18.

It was then I was under the necessity of sending lieutenant Macdonal the order No. 5. The asuming a power that affects life and death is never to be justified, but on the greatest emergencies. My situation, as I observed to you before, was the most critical that ever a collector was placed in the state of the country required the most active and vigorous exertions in order to quiet it. I had no time to want for orders from my superiors; and I have ever given the insurgents an idea that I was deficient in authority to punish them, I never could have got better of the insurrection.—Extract from Mr. Richard Goodlad's report dated Rangpur, March 1783.

Mr. E. G. Glazier in his report on the District of Rangpur observes.—"Whatever Devi Singh's enormities may have been, nothing is clearer from the history of the transactions than that Mr. Goodlad knew nothing of

them." I think Mr. Glazier is sadly mistaken in thinking that there was nothing to show that Mr. Goodlad know anything about the oppression exercised by Devi Singh. It is quite evident from Mr. Peterson's report that both Devi Singh as well Mr. Goodlad tried to suppress evidence during the enquiry held by him.

Mr. Peterson observes:—"Upon my first arrival the Ryots of Fatehpur complained against the article of Batta and Dureevilia. I refered then to Mr. Goodlad's I had none of my people with me; and he referred them back to the Rajah (Devi Singh) who immediately put the Zamindar Seeb Chandra Chaudhry in irons, charging him with exciting the Ryots to complain to the Ameens. This was my reason when I requested your orders what measure I should take if any one was punished for complaining to me."

Elsewhere he (Mr. Peterson) observes "I had entrusted these accounts to Mr. Goodlad who promised to return them after taking copies."

But Mr. Goodlad went away without returning them, I now find they are with the Rajah (Devi Singh) in Calcutta.

[Rajah filed) "different accounts at various times differing very materially in the Jama and Wassil with an idea I presume to perplex me to delay my reports"

These facts clearly prove that Mr. Goodlad also tried to suppress evidence during the enquiry.

Mr. Galazier for reasons best known to himself in Page 71 (Appendix A) of his report on Rangpur says "that enclosures 1,3,4,5,7 and 9 omitted." These en-

closures were the successive orders (Hookun Nanah) issued by Mr. Goodlad during the insurrection. And the order or Hookun Nanah No. 5 would speak very much against Mr. Goodlad as he himself admitted it.

परिशिष्ट १८.

मुझे आर्डर नं० ५ को लेफ्टिनेन्ट मेकडानल्ड को भेजना पड़ा। ज़िन्दगी और मौत से संबंध रखने वाली शक्ति का इस्तेमाल में लाना, अत्यन्त आवश्यक समयों को छोड़ करके कभी भी न्याययुक्त नहीं समझा जाता। मेरी हालत जैसी कि मैंने तुम से पहिले कहा है कि ख़तरनाक थी, और शायद ही कोई कलेक्टर इस हालत में रहा हो। देश में शान्ति स्थापन करने के लिये अविरल परिश्रम की आवश्यकता थी! अफ़सरों की आज्ञा की इन्तज़ारी के लिये मेरे पास समय न था। बाग़ियों को मैंने यह कभी भी नहीं जानने दिया था कि उन्हें दण्ड देने में मेरी शक्ति की कमी थी। अगर ऐसा होता तो मैं बाग़ियों को कभी भी न दबा सकता। उद्धृत—मि० रिचर्ड गुडलैंड की रिपोर्ट—रंगपुर, मार्च. १७८३.

मि० ई० जी० ग्लैज़ियर रंगपूर के ज़िले की अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं—"देवीसिंह की ज़्यादतियाँ कितनी भी अधिक क्यों न हों, लेकिन घटना के पूर्व इतिहास से कुछ भी नहीं साफ़ तौर से पता चलता कि मि० गुडलैंड को इनके बारे में कुछ भी नहीं मालूम था।"

मैं सोचता हूँ कि मि० ग्लैज़ियर यह सोचने में भूल करते हैं कि देवीसिंह के ज़ुल्मों के बारे में मि० गुडलैंड को कुछ नहीं मालूम था। पेटर्सन की रिपोर्ट से यह बिलकुल साफ़ है कि दोनों

देवीसिंह और गुडलैड ने, जाँच होने के समय में सुबूतों को दबा दिया था।

मि॰ पेटर्सन कहते हैं—"मेरे प्रथम आने पर फतेपुर के रैय्यत ने भत्ता तथा दुरेविलिया के विरुद्ध मेरे पास शिकायत की। मैंने उनसे मि॰ गुडलैड के पास जाकर कहने के लिये कहा; क्योंकि मेरे पास आदमी न थे। गुडलैड ने उनको राजा देवीसिंह के पास जा कर कहने के लिये कहा। इस पर देवीसिंह ने शिवचन्द्र चौधरी को हथकड़ी भर दी और उसपर यह आरोप लगाया कि वह रैय्यत को भड़काता है और अमीन के पास लोगों को शिकायत करने के लिये सिखलाता है। यही कारण था, जिसकी वजह से मैंने आप से आज्ञा माँगी थी कि उनके साथ किस तरह से पेश आया जाय, जो मेरे पास शिकायत करने वालों को दण्ड देते हैं।"

दूसरी जगह पर पेटर्सन साहब लिखते हैं कि मैंने ये हिसाब मि॰ गुडलैड के सिपुर्द किये थे और उन्होंने वादा किया था कि नक़ल लेनेके बाद वह लौटा दिये जायँगे। लेकिन उनको बिना लौटाये हुए ही मि॰ गुडलैड चले गये और अब मैं देखता हूँ कि वे हिसाब-किताब कलकत्ते में राजा देवीसिंह के पास हैं।

भिन्न २ हिसाब भिन्न २ समय पर जो कि जमा और वसूल से बिलकुल नहीं मिलते, राजा ने पेश किया। मैं इसका कारण यही समझता हूँ कि वे इसीसे ऐसा करते हैं कि मैं उन्हें न समझूँ, और मेरी रिपोर्ट में देर हो।

ये बातें साफ़ तौर पर ज़ाहिर करती हैं कि मि॰ गुडलैड ने भी जाँच के समय में सबूतों को दबा दिया था।

मि॰ ग्लैज़ियर पत्र, ७१ (टिप्पणी ए) रंगपूर की अपनी रिपोर्ट

में कहते हैं कि पिछले काग़ज़ १. ३. ४. ५. ७ और ९ लापता हैं। इसका कारण ग्लेज़ियर ही को ठीक मालूम होगा। ये काग़ज़, वे हुक्मनामे थे, जिनको कि गुडलैड ने दंगे के समय में निकाले थे। मि० गुडलैड ने खुद क़बूल किया था कि हुक्मनामा न० ५ मेरे विरुद्ध था।

NOTE 19.

A party of sepoys, under lieutenant Macdonald, marched to the north against the principal body of insurgents, a spycaught by the Lieutenant was hung in open market, and a Jamadar was despatched against the retreating enemy. The decisive battle of the campaign was fought near Patgram on the 22nd February, the sepoys disguised themselves as Burkundazes by wearing white cloth over their uniform, and by that means got close to the insurgents who were utterly defeated, sixty were left dead on the field, and many were wounded, and taken prisoners.—Glazier's Report on Rungpur, Page 22.

परिशिष्ट १६.

बाग़ियों के ख़ास गिरोह पर, लेफ्टिनेन्ट मैकडानल्ड के आधिपत्य में एक सिपाहियों का गिरोह उत्तर की तरफ़ गया। एक जासूस को, जिसको कि मैकडानल्ड ने पकड़ा था, प्राण-दण्ड दिया गया और एक जमादार शत्रु के सामने से भाग जाने के कारण मार डाला गया। २२ फरवरी को पट्टग्राम के पास एक घमासान लड़ाई हुई। सिपाहियों ने अपनी वर्दी के ऊपर सफ़ेद कपड़े पहन कर अपने को बरकन्दाज़ प्रसिद्ध किया और इस तरह से बिलकुल बाग़ियों के पास पहुँच गये—और उनको अच्छी तरह

से हरा दिया। ६० तो रणक्षेत्र में ही मर गये, बहुत से घायल हुए और बहुत से क़ैद कर लिये गये—रंगपूर पर ग्लैज़ियर की रिपोर्ट. पत्र २२.

NOTE 20.

It was recommended to me in my instruction to call upon the prisoners taken in the insurrection to account for their conduct, and in case they complained of oppression, to enquire into the truth of it by an examination of both parties.

Mr. Goodlad accordingly delivered over to me 22 prisoners. As, understand that many had been taken, I naturally concluded that there would appear against these men some circumstances of guilt, particularly glaring which had occasioned their being mingled out from the rest. But to my surprise, I found upon examination, that they were neither ring-leaders nor taken in any act or situation that could be construed against them. They were for the most part coolies, the lowest of mankind, taken many of them out of their own houses or at plough, this appears from the declaration of Telukchand who apprehended some of them and of Shaik Mahommed Mollah who likewise took several.

The Burkundazes and horsemen who were detached in parties to desperse the insurgents, made an universal plunder and trade of the people that fall into their hands. Those who could pay were set free, those who had it not were detained as proof of their deligence. Upon my expressing my surprise to Shaik Mahommed Mollah that

he should seize people against whom he could bring no charge of guilt; he explained himself in this manner.

That the insurgents assembled in many parts and went from place to place leaving contributions and obliging the Ryots to join them. That upon information of their appearing in any village, detached a party against them, that upon approach of such party the insurgents always fled and that his people seized inhabitants of the place when insurgents had disappeared, that he was not to judge of their innocence or delinquency, that in general confusion like this no distinction could be made at the time—Extract from Mr. Paterson's Report (A) dated Rungpur 18th May, 1783.

परिशिष्ट २०.

मुझे यह कहा गया था कि उपद्रव में पकड़े हुए क़ैदियों से मैं यह पूछूँ कि तुमने उपद्रव क्यों मचाया और यदि वे इस पर अत्याचार की शिकायत करें, तब दोनों दलों की जाँच करके सत्य का निर्णय करूँ।

इसीलिये मि० गुडलैड ने मेरे हवाले २२ क़ैदी कर दिये। चूँकि मुझे मालूम था कि बहुत से लोग पकड़े गये थे, इसलिये मैंने यह नतीजा निकाला कि उन क़ैदियों में से, ये २२ क़ैदी किसी ख़ास ज़ुल्म के लिये चुन कर निकाल लिये गये हैं। मुझे यह जान कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि न तो ये उपद्रवियों के सरदार ही थे, और न ये किसी ख़ास ज़ुल्म को करते हुये पकड़े ही गये थे। इनमें से बहुत से नीच क़ौम के कुली थे, जो कि या तो अपने घर से या खेतों पर से पकड़ कर लाये गये थे, यह

बात तेलुकचंद और शेख मुहम्मद मुल्ला के बयानों से पुष्ट होती हैं, क्योंकि इन्हीं लोगों ने ही उनको पकड़ा था।

बरकन्दाज़ और घोड़सवारों ने, जो कि उपद्रवियों को भगाने के लिये भेजे गये थे, बड़ी लूट-मार मचाई, जो लोग पैसा दे सकते थे, छोड़ दिये गये और जो नहीं दे सकते थे, पकड़ लिये गये। जब मैंने यह कहते हुये अपना आश्चर्य शेख़ मुहम्मद से प्रकट किया कि इन बे क़सूरों को तुमने क्यों पकड़ा, तब उस पर शेख मुहम्मद ने इस तरह से उत्तर दिया।

जब कि उपद्रवी बहुत से हिस्सों में इकट्ठा हो गये, तब वे एक जगह से दूसरी जगह को रुपया वसूल करने लगे और लोगों को बलात् उपद्रव में शामिल होने के लिये कहने लगे। जब मुझे यह पता लगा कि अब वे फला गाँव में हैं, तब मैंने अपने सिपाहियों को उनके विरुद्ध वहाँ भेजा। सिपाहियों के पहुँचते ही उपद्रवी भाग जाते थे और सिपाही उपद्रवियों के भाग जाने पर वहीं के निवासियों को पकड़ लेते थे और उनका निर्दोष होना अथवा न होना, इस गड़बड़ी के समय में, मैं नहीं निर्णय कर सकता था—उद्धृत पेटर्सन की रिपोर्ट (ए) रंगपूर—ता० १८ मई, १७८३.

NOTE 21.

Two commissions sat on this insurrection, and in February 1789, in the time of Lord Cornwallis, the final order of Government were passed. Devi Singh got off scot free, with the exception of the loss of his money. Hur Ram, a native of Rungpur, who had been the sub-farmer under him, and whose oppression had brought

about the rising, was sentenced to one year's imprisonment, after that time to be banished from the District of of Rungpore and Dinagepore. Five Ryots the ringleaders, (they were not ring-leaders, but Mr. Glazier says so) of the insurgents, were also banished; two of them men of Dimla, had apparently been in confinement since the time of the insurrection.—Glazier's Report on the District of Rungpur Page 22.

परिशिष्ट २१.

इस उपद्रव की जाँच के लिये दो कमिशन बैठे थे, और फरवरी, १७८९ में कार्नवालिस के समय में सरकार का हुक्म निकला। देवीसिंह बिलकुल साफ़ छूट गया, यद्यपि उसको थोड़े रुपयों का नुक्सान हुआ। हरेराम एक रंगपूर का निवासी था। वह देवी सिंह का काश्तकार था और इसी के अत्याचार से उपद्रव हुआ था, इसलिए इसको एक साल की सज़ा हुई और रंगपूर और दिनाजपूर से इसको देश निकाला हो गया। उपद्रवियों के पाँच सरदारों को (ये सर्दार नहीं थे, लेकिन ग्लैज़ियर ऐसा ही कहते हैं) भी देश निकाला हुआ, इनमें से दो, जो कि दिमला के निवासी थे, उपद्रव के शुरू ही से क़ैद में थे।—रंगपूर ज़िले पर ग्लैज़ियर की रिपोर्ट—पत्र, ८२.

लागत मूल्य पर हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली
एक मात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर

उद्देश्य—हिंदी-साहित्य-संसार में उच्च और शुद्ध साहित्य के प्रचार के उद्देश्य से इस मण्डल का जन्म हुआ है। विविध विषयों पर सवसाधारण और शिक्षित-समुदाय, स्त्री और बालक सबके लिए उपयोगी, अच्छी और सस्ती पुस्तकें इस मण्डल के द्वारा प्रकाशित होंगी।

विषय—धर्म (रामायण, महाभारत, दर्शन, वेदान्तादि) राजनीति, विज्ञान, कलाकौशल, शिल्प, स्वास्थ्य, समाजशास्त्र, इतिहास, शिक्षाप्रद उपन्यास, नाटक, जीवनचरित्र, स्त्रियोपयोगी और बालोपयोगी आदि विषयों की पुस्तकें तथा स्वामी रामतीर्थ, विवेकानन्द, टाल्सटाय, तुलसीदास, सूरदास, कबीर, बिहारी, भूषण आदि की रचनाएँ प्रकाशित होंगी।

इस मण्डल के सदुद्देश्य, महत्व और भविष्य का अन्दाज़ पाठकों को होने के लिए हम सिर्फ़ उसके संस्थापकों के नाम यहाँ दे देते हैं—

मंडल के संस्थापक—(१) सेठ जमनालालजी बजाज, वर्धा (२) सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला कलकत्ता (सभापति) (३) स्वामी आनन्दानंदजी (४) बाबू महावीर प्रसादजी पोद्दार (५) डा० अम्बालालजी दधीच (६) पं० हरिभाऊ उपाध्याय (७) श्री जीतमल लूणिया, अजमेर (मन्त्री)

पुस्तकों का मूल्य—लगभग लागतमात्र रहेगा। अर्थात् बाजार में जिन पुस्तकों का मूल्य व्यापाराना ढंग से १) रखा जाता है उनका मूल्य हमारे यहाँ केवल ।=) या ।≡) रहेगा। इस तरह से हमारे यहाँ १) में ५०० से ६०० पृष्ठ तक की पुस्तकें तो अवश्य ही दी जावेंगी। सचित्र पुस्तकों में खर्च अधिक होने से मूल्य अधिक रहेगा। यह मूल्य स्थायी ग्राहकों के लिए है। सर्व साधारण के लिये थोड़ा सा मूल्य अधिक रहेगा।

हिन्दी-प्रेमियों का स्पष्ट कर्तव्य

यदि आप चाहते हैं कि हिंदी का—यह 'सस्ता मण्डल' फलेफूले तो आपका कर्तव्य है कि आजही न केवल आपही इसके ग्राहक बनें, बल्कि अपने परिचित मित्रों को भी बनाकर इसकी सहायता करें।

हमारे यहाँ से निकलनेवाली दो मालाएँ और
स्थायी ग्राहक हो ने के दोनियम

खूब ध्यान से सब नियमों को पढ़ लीजिये

(१) हमारे यहाँ से 'सस्ती विविध पुस्तक-माला' नामक माला निकलती है जिसमें वर्ष भर में ३२०० पृष्ठों की कोई अठारह बीस पुस्तकें निकलती हैं और वार्षिक मूल्य पोस्ट खर्च सहित केवल ८) है। अर्थात् छः रुपया ३२०० पृष्ठों का मूल्य और २) डाकखर्च। इस विविध पुस्तक-माला के दो विभाग हैं। एक 'सस्ती-साहित्य-माला' और दूसरी 'सस्ती-प्रकीर्ण पुस्तकमाला'। दो विभाग इसलिये कर दिये गये हैं कि जो सज्जन वर्ष भर में आठ रुपया खर्च न कर सकें, वे एक ही माला के ग्राहक बन जावें। प्रत्येक माला में १६०० पृष्ठों की पुस्तकें निकलती हैं और पोस्ट खर्च सहित ४) वार्षिक मूल्य है। माला से ज्यों ज्यों पुस्तके निकलती जावेंगी, वैसे वैसे पुस्तकें वार्षिक ग्राहकों के पास मण्डल अपना पोस्टेज लगाकर पहुँचाता जायगा। जब १६०० या ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें ग्राहकों के पास पहुँच जावेंगी, तब उनका वार्षिक मूल्य समाप्त हो जायगा।

(२) वार्षिक ग्राहकों को उस वर्ष की–जिस वर्ष में वे ग्राहक बनें– सब पुस्तकें लेनी होती हैं। यदि उन्होंने उस वर्ष की कुछ पुस्तकें पहले से ले रखी हों तो अगले वर्ष की ग्राहक-श्रेणी का पूरा रुपया यानि ४) या ८) दे देने पर या कम से कम १) या २) जमा करा देने तथा अगला वर्ष शुरू होने पर शेष मूल्य भेज देने का वचन देने पर, पिछले वर्षों की पुस्तकें जो वे चाहें, एक एक कापी लागत मूल्य पर ले सकते हैं।

(३) दूसरा नियम—प्रत्येक माला की आठ आना प्रवेश फ़ीस या दोनों मालाओं की १) प्रवेश फीस देकर भी आप ग्राहक बन सकते हैं। इस तरह जैसे जैसे पुस्तकें निकलती जावगी, उनका लागत मूल्य और पोष्ट खर्च जोड़ कर वी. पी. से भेज दी जाया करेंगी। प्रत्येक वी. पी. में =) रजिस्ट्री खर्च व =) वी. पी. खर्च तथा पोस्टेज खर्च अलग लगता है। इस तरह वर्ष भर में प्रवेश फीसवाले ग्राहकों को प्रति माला पीछे क़रीब ढाई रुपया पोस्टेज पड़ जाता है। वार्षिक ग्राहकों को केवल १) हा पास्ट खर्च लगता है।

हमारी सलाह है कि आप वार्षिक ग्राहक ही बनें

क्योंकि इससे आपको पोस्ट खर्च में भी क़िफ़ायत रहेगी और प्रवेश फीस के ॥) या १) भी आपसे नहीं लिये जावेंगे।

(४) दोनों तरह के ग्राहकों को—एक एक कापी ही लागत मूल्य पर मिलती है। अधिक प्रतियाँ मँगाने पर सर्वसाधारण के मूल्य पर दो आना रुपया कमीशन काट कर भेजी जाती हैं। हाँ, बीस रुपये से ऊपर की पुस्तकें मँगाने पर २५) सैंकड़ा कमीशन काट कर भेजी जा सकती हैं। किसी एक माला के ग्राहक होने पर यदि वे दूसरी माला की पुस्तकें या मंडल से निकलने वाली फुटकर पुस्तकें मँगावेंगे तो दो आना रुपया कमीशन काट कर भेजी जावेंगी। पर अपना ग्राहक नंबर ज़रूर लिखना चाहिये।

(५) दोनों मालाओं का वर्ष—सस्ता साहित्य-माला का वर्ष जनवरी मास से शुरू होकर दिसम्बर मास में समाप्त होता है और प्रकीर्ण-माला का वर्ष अप्रेल मास से शुरू होकर दूसरे वर्ष के अप्रेल मास में समाप्त होता है। मालाओं की पुस्तकें दूसरे तीसरे महीने इकट्ठी निकलती हैं और तब ग्राहकों के पास भेज दी जाती हैं। इस तरह वर्ष भर में कुल १६०० या ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें ग्राहकों के पास पहुँचा दी जाती हैं।

(६) जो वार्षिक ग्राहक माला की सब पुस्तकें सजिल्द मँगाना चाहें, उन्हें प्रत्येक माला के पीछे दो रुपया अधिक भेजना चाहिये, अर्थात् साहित्य माला के ६) वार्षिक और इसी तरह प्रकीर्ण माला के ६) वार्षिक भेजना चाहिये।

हमारे यहाँ से निकलनेवाली फुटकर पुस्तकें

उपरोक्त दोनों मालाओं के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें भी हमारे यहाँ से निकलती हैं। परन्तु जैसे दोनों मालाओं में वर्ष भर में ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें निकालने का निश्चित नियम है वैसा इनका कोई खास नियम नहीं है। सुविधा और आवश्यकतानुसार पुस्तकें निकलती हैं।

स्थाई ग्राहकों के जानने योग्य बातें

(१) जो ग्राहक जिस माला के ग्राहक बनते हैं, उन्हें उसी माला की एक एक पुस्तक लागत मूल्य पर मिल सकती है। अन्य पुस्तकें मँगाने के लिये उन्हें आर्डर भेजना चाहिये। जिन पर उपरोक्त नियमानुसार कमीशन काट कर वी० पी० द्वारा पुस्तकें भेज दी जावेंगी।

(२) ग्राहकों को पत्र देते समय अपना ग्राहक नम्बर ज़रूर लिखना चाहिये। इसमें भूल न रहे।

(३) मंडल से निकलने वाली फुटकर पुस्तकों के भी यदि आप स्थाई ग्राहक बनना चाहें तो ।।) प्रवेश फ़ीस भेज कर बन सकते हैं। जब जब पुस्तकें निकलेंगी उनको लागत मूल्य से वी० पी० करके भेज दी जावेंगी।

सस्ती-साहित्य-माला की पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह—प्रथम भाग (ले०—महात्मा गांधी)

(१) पृष्ठ सं० २७२, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ।≶) सर्वसाधारण से ।।।)

म० गांधीजी लिखते हैं—"बहुत समय से मैं सोच रहा था कि इस सत्याग्रह-संग्राम का इतिहास लिखूँ, क्योंकि इसका कितना ही अंश मैं ही लिख सकता हूँ। कौनसी बात किस हेतु से की गई है, यह तो युद्ध का सचालक ही जान सकता है। सत्याग्रह के सिद्धांत का सच्चा ज्ञान लोगों में हो, इसलिये यह पुस्तक लिखी गई है।" सरस्वती, कर्मवीर, प्रताप आदि पत्रों ने इस पुस्तक के दिव्य विचारों की प्रशंसा की है।

(२) **शिवाजी की योग्यता**—(ले० गोपाल दामोदर तामस्कर एम० ए०, एल० टी०) पृष्ठ-संख्या १३२, मूल्य स्थायी ग्राहकों से केवल ।) सर्वसाधारण से ।=) प्रत्येक इतिहास प्रेमी को इसे पढ़ना चाहिए।

(३) **दिव्य जीवन**—अर्थात् उत्तम विचारों का जीवन पर प्रभाव। संसार प्रसिद्ध स्विट् मार्सडन के The Miracles of Right Thoughts का हिंदी अनुवाद। पृष्ठ-संख्या १३६, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ।) सर्व साधारण से ।=) चौथी बार छपी है।

(४) **भारत के स्त्री-रत्न**—(पाँच भाग) इस ग्रंथ में वैदिक काल से लगाकर आजतक की प्रायः सब धर्मों की आदर्श, पातिव्रत्य-परायण, विद्वान् और भक्त कोई ५०० स्त्रियों का जीवन-वृत्तान्त होगा। हिंदी में इतना बड़ा ग्रन्थ आज तक नहीं निकला। प्रथम भाग पृष्ठ ४१० मूल्य स्थायी ग्राहकों से केवल ।।।≶ सर्वसाधारण से १) आगे के भाग शीघ्र छपेंगे।

(५) **व्यावहारिक सभ्यता**—यह पुस्तक बालक, वायु, पुरुष, स्त्री

सभी को उपयोगी है, परस्पर बड़ों व छोटों के प्रति तथा संसार में किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, ऐसे ही अनेक उपयोगी उपदेश भरे हुए हैं। पृष्ठ १०८, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ≥) सर्वसाधारण से ।)॥ दूसरी बार छपी है

(६) आत्मोपदेश—(यूनान के प्रसिद्ध तत्वज्ञानी महात्मा एपिक्टेटस के विचार) पृष्ठ १०४, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ≥) सर्वसाधारण से ।)

(७) क्या करें ?—(ले०—महात्मा टाल्सटाय) इसमें मनुष्य जाति के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक प्रश्नों पर बहुत ही सुंदर और मार्मिक विवेचन किया गया है। महात्मा गांधी जी लिखते हैं—"इस पुस्तक ने मेरे मन पर बड़ी गहरी छाप डाली है। विश्व-प्रेम मनुष्य को कहाँ तक ले जा सकता है, यह मैं अधिकाधिक समझने लगा" प्रथम भाग पृष्ठ २१६ मूल्य केवल ॥=) स्थाई ग्राहकों से ।≥) दूसरा भाग भी छप रहा है इसका मूल्य भी लगभग यही रहेगा।

(८) कलवार की करतूत—(ले०—महात्मा टाल्सटाय) इस नाटक में शराब पीने के दुष्परिणाम बड़ी सुंदर रीति से दिखलाये गये हैं। पृष्ठ ४० मूल्य -)॥ स्थाई ग्राहकों से -)।

(९) जीवन-साहित्य—म० गांधी के सत्याग्रह आश्रम के प्रसिद्ध विचारक और लेखक काका कालेलकर के धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर मौलिक और मननीय लेख—प्रथम भाग पृष्ठ २१८ मूल्य ॥) स्थाई ग्राहकों से ।=) इसका दूसरा भाग भी छप रहा है।

इस प्रकार उपरोक्त नौ पुस्तकें १६=६ पृष्ठों की इस माला के प्रथम वर्ष में प्रकाशित हुई हैं अब दूसरे वर्ष अर्थात् सन् १९२७ में जो जो पुस्तकें प्रकाशित होंगी उनका नोटिस कवर के चौथे पृष्ठ पर छपा है।

सस्ती-प्रकीर्ण-माला की पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

(१) कर्मयोग—(ले० अध्यात्म योगी श्री अश्विनीकुमार दत्त। इसमें निष्काम कर्म किस प्रकार किये जाते हैं—सचा कर्मवीर किसे कहते हैं—आदि बातें बड़ी खूबी से बताई गई हैं। पृष्ठ सं० १५२, मूल्य केवल ।=) स्थायी ग्राहकों से ।)

(२) सीताजी की अग्नि-परीक्षा—सीता जी की 'अग्नि-परीक्षा'

इतिहास से, विज्ञान से तथा अनेक विदेशी उदाहरणों द्वारा सिद्ध की गई है। पृष्ठ सं० १२४, मूल्य ।-) स्थायी ग्राहकों से ≡)॥

(३) कन्या-शिक्षा-सास, ससुर आदि कुटुंबी के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये, वर की व्यवस्था कैसी करनी चाहिये आदि बातें, कथा-रूप में बतलाई गई हैं। पृष्ठ सं० ९४, मूल्य केवल ।) स्थायी ग्राहकों से ≡)

(४) यथार्थ आदर्श जीवन—हमारा प्राचीन जीवन कैसा उच्च था, पर अब पाश्चात्य आडम्बरमय जीवन की नक़ल कर हमारी अवस्था कैसी शोचनीय हो गई है। अब हम फिर किस प्रकार उच्च बन सकते हैं-आदि बातें इस पुस्तक में बताई गई हैं। पृष्ठ सं० २६४, मूल्य केवल ॥-) स्थायी ग्राहकों से ।=)॥

(५) स्वाधीनता के सिद्धान्त—प्रसिद्ध आयरिश वीर टैरेंस मेक्स-वीनीकी Principles of Freedom का अनुवाद—प्रत्येक स्वतंत्रता-प्रेमी को इसे पढ़ना चाहिये। पृष्ठ सं० २०८ मूल्य ॥), स्थायी ग्राहकों से ।-)॥

(६) तरंगित हृदय—(ले० पं० देवशर्मा विद्यालंकार) भू० ले० पद्म सिंहजी शर्मा—इसमें अनेक ग्रन्थों को मनन करके एकांत हृदय के सामाजिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक विषयों पर बड़े ही सुन्दर, हृदयस्पर्शी मौलिक विचार लिखे गये हैं। किसी का अनुवाद नहीं है। पृष्ठ सं० १७६, मूल्य ।≡) स्थायी ग्राहकों से ।-)

(७) गंगा गोविंदसिंह—(ले० बंगाल के प्रसिद्ध लेखक श्री चण्डीचरण सेन) इस उपन्यास में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन-काल में भारत के लोगों पर अँग्रेज़ों ने कैसे कैसे भीषण अत्याचार किये और यहाँ का व्यापार नष्ट किया उसका रोमांचकारी वर्णन तथा कुछ देश-भक्तों ने किस प्रकार मुसीबतें सहकर इनका मुक़ाबला किया उसका गौरव-पूर्ण इतिहास वर्णित है। रोचक इतना है कि शुरू करने पर समाप्त किये बिना नहीं रहा जा सकता। पृष्ठ २९६ मूल्य केवल ॥=) स्थायी ग्राहकों से ।≡)॥

(८) यूरोप का इतिहास—(प्रथम भाग) छप रहा है। पृष्ठ लगभग ३५० मार्च सन् १९२७ तक छप जायगा। इस माला में एकाध पुस्तक और निकलेगी तब वर्ष समाप्त हो जायगा।

☞ हमारे यहाँ हिंदी की सब प्रकार की उत्तम पुस्तकें भी मिलती हैं—बड़ा सूचीपत्र मँगाकर देखिये !

पता—सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर।

तामिल वेद

(दक्षिणात्य ऋषि तिरुवल्लुवर जो अछूत जाति के थे उनके मनुष्य जीवन पर धर्म और अर्थ विषयों के अमृतमय उपदेश)

(भूमिका लेखक—श्रीमान् राजगोपालाचार्यजी)

भूमिका में वे लिखते हैं—"यदि कोई समस्त भारतीय साहित्य का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हो तो उसकी पूर्णता के लिये इस ग्रंथ का अध्ययन करना ज़रूरी है। यह पुस्तक विवेक, शुभसंस्कार और मानव प्रकृति के व्यावहारिक ज्ञान की खान है। कला की दृष्टि से भी संसार के साहित्य में इसका स्थान ऊँचा है।" संसार की प्रायः सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हो गया है। मि० गोवर नाम के अंग्रेज़ लिखते हैं:—"तामिल देश के विचार और आचार की उत्तमता का यह (पुस्तक) वैसा ही सर्वोत्तम आदर्श है जैसे यूनानियों में होमर है।" पृष्ठ संख्या २४८ मूल्य राज संस्करण का ॥=) साधारण का ॥) स्थाई ग्राहकों से लागत मूल्य |≡)॥ व |=)।

स्त्री और पुरुष

(लेखक—महात्मा टॉल्स्टॉय)

यह तो अपने ढंग की एक ही चीज़ है। टॉल्स्टॉय के हृदय का यह एक आईना है। स्त्री और पुरुषों के पारस्परिक सम्बन्ध पर इसमें स्पष्ट से स्पष्ट और हृदय की भाषा में प्रकाश डाला गया है। इन विचारों का संकलन टॉल्स्टॉय के निजी पत्रों और रोजनामचे से किया गया है। स्त्री-पुरुषों के पारस्परिक सम्बन्ध तथा वैवाहिक आदर्श के विषय में टॉल्स्टॉय तथा भारतीय आदर्श के बीच आश्चर्यजनक साम्य है। ऐसा कोई पहलू नहीं छूटने पाया जिसपर टॉल्स्टॉय ने अपने विचार प्रकट न किये हों। यह नवविवाहितों का मार्ग दर्शक और प्रौढ़ों का सच्चा मित्र है। वैवाहिक जीवन की जिम्मेदारी, स्त्री स्वातंत्र्य, पिता का कर्तव्य, विकार-मुक्ति के उपाय और संतति निरोध पर टॉल्स्टॉय के अप्रतिम विचार पढ़िए। अपने

विकार के गुलाम बने हुए न जाने कितने स्त्री पुरुषों को टॉल्स्टॉय ने अभय देकर उस भेड़िये से मुक्त कर दिया है। पुस्तक स्त्री और पुरुष दोनों के लिए एक सी उपयोगी है। पृष्ठ १५६ मूल्य ।=) स्थाई ग्राहकों से ।)

प्रकीर्णमाला में यह पुस्तक छप गई है

स्वामी जी का बलिदान और हमारा कर्त्तव्य

अर्थात् हिन्दू-मुस्लिम-समस्या

(लेखक—पं० हरिभाऊ उपाध्याय)

हिन्दू-मुसलमानों का संबंध कैसे शुरू हुआ? हिन्दू-मुस्लिम-समस्या स्वराज्य की समस्या कैसे हुई? अब तक उसे हल करने में क्या क्या उद्योग हुए? उनमें किस तरह सफलता या विफलता हुई और वह क्यों हुई? तबलीग-तनजीम-शुद्धि-संगठन का फल और वर्तमान स्वरूप क्या है? धर्म और संस्कृति क्या वस्तु है? एकता कैसे हो सकती है? उसमें क्या क्या कठिनाइयाँ हैं? अब स्वामी श्रीश्रद्धानंदजी के बलिदान के बाद हमारा क्या कर्तव्य है—स्वामी जी का सजीव स्मारक क्या हो सकता है? इन प्रश्नों की सविस्तर छानबीन इस पुस्तक में की गई है। इसका निचोड़ आज की ज़रूरत के अनुसार यह है कि हिन्दू-मुसलमान की एकता होकर रहेगी—स्वराज्य मिलेगा और अब शुद्धि-संगठन को दुनिया की कोई दुर्घटना नहीं रोक सकती। पृष्ठ १२८ मूल्य ।=) ग्राहकों से ।)॥

हिन्दू-समाज क्रान्ति के पथ पर

(लेखक—पं० हरिभाऊ उपाध्याय)

हिन्दू-धर्म, हिन्दू-समाज, हिन्दू-राष्ट्र को एक नये ही रूप में उपस्थित करनेवाली, हिन्दू-धर्म और समाज के संशोधन तथा पुनरुद्धार से संबंध रखनेवाली प्रत्येक समस्या पर गहरा प्रकाश डालनेवाली, हिन्दू-समाज को क्रान्ति और नवयुग का संदेश सुननेवाली तथा हिन्धू-समाज के मनोरम भविष्य की कल्पना देनेवाली अपने ढंग की अनोखी पुस्तक—पृष्ठ-संख्या लगभग ४०० यह छप रही है।

पता—सस्ता साहित्य मण्डल, अजमेर।